दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र
जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू

स्व–शिक्षण सामग्री

एम. ए. हिन्दी

2025

सत्रक–प्रथम	**रीतिकालीन काव्य**	**कोर्स कोडः HIN-104**
इकाई–एक से चार	**कोर्स क्रेडिट–6**	**अध्याय संख्याः 1 से 20 तक**

प्रो. अंजु शर्मा
समन्वयक, एम.ए. हिन्दी

डॉ. पूजा शर्मा
प्रभारी शिक्षक, एम.ए.हिन्दी

इस स्व–शिक्षण सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180006 के पास सुरक्षित है।

http:/www.distanceeducation.in

Printed and published on behalf of the Centre for Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, CDOE, University of Jammu, Jammu

एम. ए. हिन्दी	कोर्स क्रेडिट–6	कोर्स कोड–**HIN-104**

अध्याय लेखक	अध्याय संख्या
1. **डॉ अशोक कुमार** सह प्रोफेसर (सेवा निवृत्त), हिंदी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	**7,9,10**
2. **प्रो. पुष्पपाल सिंह** प्रोफेसर (सेवा निवृत्त), हिंदी विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, पटियाला,	**11,12,13,14**
3. **प्रो. परमेश्वरी शर्मा** प्रोफेसर (सेवा निवृत्त), हिंदी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	**8,15,16,17**
4. **डॉ. पूजा शर्मा** प्रभारी शिक्षक दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	**1–6,18,19,20**

कार्यक्रम समन्वयक प्रो. अंजू शर्मा दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	प्रभारी शिक्षक डॉ. पूजा शर्मा दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र जम्मू विश्वविद्यालय,जम्मू

सामग्री समीक्षा, सम्पादन एवं मुद्रित शोधन

डॉ. पूजा शर्मा

प्रभारी शिक्षक

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

* All rights reserve. No Part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the CDOE, University of Jammu.

* The Script writer shall be responsible for the lesson / script submitted to the CDOE and any plagiarism shall be his/her entire responsbility.

संदेश

दूसरे सत्रक में आपका स्वागत है !

एम.ए हिंदी के पहले सत्रक में आपका स्वागत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। एम.ए हिंदी कोर्स के लिए नामांकन करने के उपरांत आपकी यात्रा हमारे साथ प्रारम्भ होती है। एम.ए हिंदी में अच्छे अंक लाने के लिए कड़ी मेहनत करें और आंतरिक मूल्यांकन अर्थात असाइनमेंट तैयार करने के लिए थोड़ा अतिरिक्त प्रयास करें। असाइनमेंट बनाते हुए यह ध्यान में रखे कि यह अंक आपके हाथ में हैं। जितनी मेहनत बाहरी परीक्षा के लिए करनी है उतनी ही मेहनत आंतरिक मूल्यांकन अर्थात असाइनमेंट बनाने में करें।

आपको सलाह दी जाती है कि आप नियमित रूप से दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र के पुस्तकालय में जाएँ और नोट्स बनाने के लिए उपलब्ध पुस्तकों का अधिक से अधिक अध्ययन करें। आप अपनी NET/JRF/SET/ SLET या हिंदी से संबधित किसी भी प्रतियोगी परीक्षा के लिए भी एक साथ तैयारी कर सकते हैं और कोर्स कोडः HIN-104 की अध्ययन सामग्री आपके पाठ्यक्रम और NET/SET परीक्षा की तैयारी को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है। कड़ी मेहनत करें। कुल मिलाकर यह चिंतनपरक और बौद्धिक जागरूकता जगाने वाली पाठ्य सामग्री है इसका अध्ययन और मनन करने से आपका साहित्यिक विवेक पुष्ट होगा,ऐसी हमारी धारणा है।

शुभकामना सहित

प्रोफेसर अंजू शर्मा

पाठ्यक्रम समन्वयक

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester & 1st

Course Code: HIN-104 **Title: Reetikaleen Kavya**

Credits: 6 **Maximum Marks: 100**

Duration of Exam.: 3 Hrs. **a) Internal = 30**

b) External = 70

Syllabus for the Examination to be held in Dec. 2025, 2026 & 2027

इकाई–एक

क) सम्पादकः जगन्नाथ तिवारी – केशव 'रामचन्द्रिका' (मंगलाचरण, सीता स्वयंवर, परशुराम संवाद)।

ख) सम्पादकः ओम प्रकाश – बिहारी सार्धशती (1, 4, 8, से 16,19, 24, 25, 26, 30, 31, 34, 35, 46, 48, 50, 60, 68, 77, 84, 91, 93, 94, 97, कुल 30 पद)।

ग) सम्पादकः विश्वनाथ मिश्र– घनानंद कवित्त (व्याख्या के लिए पहले 25 पद)

घ) सम्पादकः डॉ.जनार्दन राव चेलेर – वृन्द ग्रन्थावली (वृन्द सतसई, पहले 25 पद)।

इकाई–दो

केशव का आचार्यत्व।

केशव का कवित्व।

'रामचन्द्रिका' का महाकाव्यत्व।

'रामचन्द्रिका' की संवाद योजना।

इकाई–तीन

सतसई परम्परा में बिहारी।

बिहारी की रस योजना।

बिहारी की बहुज्ञता।

बिहारी की काव्यकला।

इकाई–चार

घनानंद की भक्ति–भावना।

घनानंद की शृंगार व्यंजना।

घनानंद की काव्यकला।

रीति काव्य और वृन्द।

वृन्द की रस योजना।

वृन्द की काव्यकला।

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester & 1st

Course Code: HIN-104 | **Title: Reetikaleen Kavya**

Credits: 6 | **Maximum Marks: 100**

Duration of Exam.: 3 Hrs. | **a) Internal = 30**

b) External = 70

Syllabus for the Examination to be held in Dec. 2025, 2026 & 2027

रीतिकालीन काव्य

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड HIN–104 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

आंतरिक मूल्यांकन — **कुल अंक : 30**

(Internal Assessment Assignment)

(क)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ एक दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न।	10 x 1 = 10
(ख)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ दो लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	5 x 2 = 10
(ग)	विकल्प रहित चार अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	2½ x 4 = 10

मुख्य परीक्षा (External Exam) — **कुल अंक = 70**

समय = तीन घण्टा

(क)	इकाई एक में निर्धारित प्रत्येक पुस्तक में से एक–एक सप्रसंग व्याख्या पूछी जायेगी। विद्यार्थी को कोई तीन सप्रसंग व्याख्याएँ करनी होंगी।	6 x 3 = 18
(ख)	इकाई 2,3,4 में से शत–प्रतिशत विकल्प के साथ एक–एक दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न पूछा जाएगा।	11 x 3 = 33
(ग)	इकाई 2,3,4 में से शत–प्रतिशत विकल्प के साथ एक–एक लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न पूछा जाएगा।	5 x 3 = 15
(घ)	सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर आधारित चार वस्तुनिष्ठ विकल्प रहित प्रश्न पूछे जायेंगे।	1 x 4 = 4

विषय सूची

संख्या	अध्याय शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	रामचन्द्रिका के 'मंगलाचरण' का व्याख्या–भाग	1
2.	रामचन्द्रिका के 'सीता स्वयंवर' का व्याख्या–भाग	5
3.	रामचन्द्रिका के 'परशुराम–संवाद' का व्याख्या भाग	10
4.	'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों की व्याख्या	13
5.	'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों की व्याख्या	25
6.	'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों की व्याख्या	39
7.	केशव का आचार्यत्व	44
8.	केशव का कवित्व	56
9.	'रामचन्द्रिका' का महाकाव्यत्व	64
10.	केशव की संवाद योजना	72
11.	सतसई परम्परा में बिहारी का स्थान	81
12.	बिहारी की रस योजना	89
13.	बिहारी की बहुज्ञता	98
14.	बिहारी की काव्य कला	107
15.	घनानन्द की भक्ति भावना	117
16.	घनानन्द का शृंगार वर्णन	128
17.	घनानन्द की काव्य कला	139
18.	रीति काव्य और वृन्द	148
19.	वृन्द की रस योजना	156
20.	वृन्द की काव्यकला	165

रामचन्द्रिका के 'मंगलाचरण' का व्याख्या–भाग

रूपरेखा

1.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
1.2 प्रस्तावना
1.3 केशव द्वारा रचित रामचन्द्रिका के 'मंगलाचरण' का व्याख्या भाग
- स्व–मूल्यांकनः (क) रिक्त स्थान
- स्व–मूल्यांकनः (ख) सही या गलत

1.4 उत्तर कुंजी
1.5 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'मंगलाचरण' भाग का भावार्थ समझाना है।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन करने के उपरांत आप केशव की 'रामचन्द्रिका' के 'मंगलाचरण' भाग का भावार्थ समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'मंगलाचरण' भाग की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या की गयी है।

1.3 केशव द्वारा रचित रामचन्द्रिका के 'मंगलाचरण' का व्याख्या भाग

गणेश वन्दना

(मनहरण) बालक मृणालनिज्पों तोरि डाटै सबै काल,
कठिन कराल पों अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि कै कलंक–अंक भव–सीस–ससि सम,
राखत हैं, केशोदास दास – के बपुख को।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै,
दशमुख मुख जोवै गजमुख मुख करों।

शब्दार्थः बालक = यहाँ हाथी के बच्चे से अभिप्राय है। मृणालनि = कमल नाल कमल की डण्डी जो बहुत कोमल होती है। दीह = दीर्घ, बड़ा। कलुख = पाप। बपुख = शरीर। साँकरे = संकट में पड़ा हुआ। साँकरनि शृंखलाएँ, बन्धन। दसमुख = दसों दिशाएँ (दसों दिशाओं के लोग) तथा ब्रह्मा। गजमुख = गणेश।

प्रसंगः केशवदास जी 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ करते हुए विपत्तियों का विनाश करने वाले गणेशजी की वन्दना कर रहे हैं। गणेश 'गजवंदन' हैं, इसलिए उनके सभी कापों को कवि ने हाथी के बच्चे के कार्यों के समान दिखाने की चेष्टा की है। दसों दिशाओं के मनुष्य उनके कृपाकांक्षी रहते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि इसी तथ्य को प्रकट कर रहा है।

व्याख्याः जैसे हाथी का बच्चा सभी कालों में कमल–नाल को तोड़ डालता है, वैसे ही गणेश जी असमय आने वाले बड़े–बड़े व कठिन, भयंकर दुखों को नष्ट कर देते हैं। वे विपत्तियो को दूर करके कमलिनी के पत्रों के समान तोड़ डालते हैं तथा पाप को कीचड़ की तरह दबाकर पाताल में भेज देते हैं। वे दास के शरीर से कलंक का चिन्ह दूर करके उसे शिव के मस्तक समान (कलंक रहित) बना देते है तथा उसकी (सदा) रक्षा करते हैं। वे सामने आते ही संकट में पड़े अपने भक्त के बन्धनों को तोड़ डालते हैं। दसों दिशाओं के लोग अथवा दस–मुख (त्रिदेव = ब्रह्म, विष्णु, महेश, ब्रह्मा के चार मुख, विष्णु का एक मुख शिव पाँच मुख = दस मुख) श्रीगणेश जी का मुख देखते रहते हैं अर्थात् गणेश जी से सहायता की आशा करते हैं।

विशेषः

1. अलंकारः– बालक मृणालिनी–दुख को में उदाहरण, कठिन कराल में 'क' की अनेक बार आवृति, 'दहीय दुख में 'द' वर्ण की अनेक बार आवृति, हरत–हठि में 'ह' वर्ण की आवृति 'पताल पठवै में 'प' वर्ग की एक से अधिक बार आवृति, सॉकरे... सन्मुख में 'स' की आवृति में 'पद्मिनी के पात सम' तथा 'भव–सीस ससि सम' में उपमा, कराल, अकाल कलक अंक में ध्वनिसाम्य और गजमुख–मुख में यमक तथा गजमुख का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांनकुर अलंकार है।
2. गणेश जी को 'गजमुख कहने के कारण उनके सब कार्यों का हाथी के बच्चे के समान वर्णन किया गया है। गणेश जी के शाप से ही चंद्रमा कलंकित है और गणेश जी के अनुसार ही द्वितीया का चन्द्रमा निष्कलंक है। इस छन्द के 'दशमुख' शब्द का अर्थ कुछ विद्वान ब्रह्मा, विष्णु और महेश लगाते हैं, क्योंकि वे त्रिदेव मिलकर दसमुख है– अर्थात् ब्रह्मा = चार मुख, विष्णु = एक मुख, शिव–पंचमुख। ग्रन्थ की निर्विहन समाप्ति के लिए गणेश वन्दना की गई है।
3. गणेश जी का मुख हाथी के बच्चे के समान है, अतः केशवदास जी ने उनकी तुलना हाथी के बच्चे से करके अपने चातुर्य का प्रदर्शन किया है।
4. छन्द – 15–16 पर यति एवं 31 वर्ण होने से मनहरण अथवा दण्डक कवित्त है। 26 से अधिक वर्ण के छन्द दण्डक कहे जाते हैं।

स्व मूल्यांकनः क

प्रिय विद्यार्थियों ! आगे बढ़ने से पहले अपने अध्ययन को थोड़ा विश्राम दें और इस अध्याय में केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'मंगलाचरण' के अंतर्गत 'गणेश वन्दना' का अभी तक आपने जो अध्ययन किया है उसका निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा।

1. केशवदास जी 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ करते हुए विपत्तियों का विनाश करने वाले .....की वन्दना कर रहे हैं।
2. .....का बच्चा सभी कालों में कमल–नाल को तोड़ डालता है।
3. गणेशजी दास के शरीर से कलंक का चिन्ह दूर करके उसे .....के मस्तक समान (कलंक रहित) बना देते है।
4. गणेश जी को ..... कहने के कारण उनके सब कार्यों का हाथी के बच्चे के समान वर्णन किया गया है।
5. गणेश जी के शाप से ही .....कलंकित है।

सरस्वती वन्दना

(मनहरण) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध रिषिराज तपहद्ध
कहि–कहि हारे सब, कहि ने काह लई।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
'केशोदास' क्यों हू ना बखानी काहू पै गई।
वर्णे पति चारि मुख पूत वर्णों पाँच मुख,
नाती, वर्णों पर मुख, तदपि नई नई।।2।।

शब्दार्थः– बानी = वाणी, सरस्वती। उदारता = महिमा। बखानी जाइ = वर्णन की जाये। भावी = भविष्य। पति = ब्रह्म जी से अभिप्राय है। पूत = यहाँ पर महादेव जी से अभिप्राय है। नाती = महादेव जी के पुत्र षडानन (स्वामी कार्तिकेय) से अभिप्राय है।

प्रसंगः– प्रस्तुत छन्द में सरस्वती की वन्दना करते हुए कवि केशव ने कहा है कि उनकी उदारता का बखान देवता भी नहीं कर सके तो मैं कैसे कर सकता हूँ। माँ सरस्वती की महिमा अनिवर्चनीय है। वे अनन्त महिमाशालिनी हैं।

व्याख्याः– किसकी मति इतनी विशाल एवं प्रखर है कि जो संसार की रानी सरस्वती की उदारता का वर्णन कर सके अर्थात् इस जगतीतल पर किसी की भी बुद्धि इतनी उदार नहीं है जो विश्व की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की उदारता का वर्णन कर सके। देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, बड़े–बड़े ऋषि–महर्षि और तपोवृद्ध तपस्वी सबके सब कहते–कहते थक गये, किन्तु किसी से भी देवी सरस्वती की उदारता पूर्णतः कही न जा सकी। भूतकाल के लोग सरस्वती की उदारता (विशाल गुणवता) का बखान करके चले गये, वर्तमान के लोग कर रहे हैं तथा भविष्य वाले करेंगें। केशवदास कहते हैं कि फिर भी किसी से सरस्वती जी का वर्णन नहीं हो सका और न किसी से हो सकेगा। औरों की तो बात ही क्या है वे तो उनके अति निकट रहने वाले देवता हैं, वे भी उनकी उदारता का वर्णन नहीं कर सका। उनके प्रति बह्मा ने अपने चार मुखों से पुत्र महादेव ने पाँच मुखों से और षडनन मुख से वर्णन किया, फिर भी उनकी उदारता नित्य नयी–नयी बनी रहती है। तात्पर्य यह है कि उनकी उदारता शेष ही रह जाती है और उसमें नित्य नवीनता आती रहती है।

विशेषः–

1. अलंकार – कहि–कहि, नई नई में पुनरुक्तिप्रकाश तथा 'भावी–भूत' में अनुप्रास अलंकार है।
2. गुण प्रसाद और माधुर्य, शब्द–शक्ति–अभिधा और लक्षणा तथा भाषा ब्रज
3. जिस प्रकार महाकवि बिहारी की नायिका का रूप–सौन्दर्य प्रति–क्षण नवीन होता रहता है और चित्रकार की तूलिका में आबद्ध नहीं हो पाता, उसी प्रकार केशव की वन्दनीया माँ वीणा–पाणि सरस्वती की नित नवीन होती 'उदारता' का किसी से भी पूर्णतः वर्णन करते नहीं बनता। वे सतत अवर्णनीय एवं अनिवचनीय ही बनी रहती है।

''लिखनि बैठी जाकी सिवहि गहि गहि गरब गरुर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।''

स्व मूल्यांकनः– ख

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'मंगलाचरण' के अंतर्गत 'सरस्वती वन्दना' का आपने जो अध्ययन किया है उस ज्ञान का स्व मूल्यांकन निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर करें। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. सरस्वती की वन्दना करते हुए केशव ने कहा है कि उनकी उदारता का बखान देवता भी नहीं कर सके तो मैं कैसे कर सकता हूँ। ( )
2. माँ सरस्वती की महिमा निवर्चनीय है। ( )
3. भूतकाल के लोग सरस्वती की उदारता का बखान नहीं कर सके। ( )
4. केशव के अनुसार सरस्वती की उदारता नित्य नयी–नयी बनी रहती है। ( )
5. 'भावी–भूत' में अनुप्रास अलंकार है। ( )

1.5 उत्तर कुंजी

स्वमूल्यांकनः– (क) रिक्त स्थान

1. गणेशजी 2. हाथी 3. शिव 4. 'गजमुख' 5. चंद्रमा

स्वमूल्यांकनः– (ख) सही या गलत

1. सही 2. गलत 3. गलत 4. सही 5. सही

1.6 पठनीय पुस्तकें

सं. जगन्नाथ तिवारी, केशव 'रामचन्द्रिका'

रामचन्द्रिका के 'सीता स्वयंवर' का व्याख्या भाग

रूपरेखा

2.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
2.2 प्रस्तावना
2.3 केशव द्वारा रचित रामचन्द्रिका के 'सीता स्वयंवर' का व्याख्या भाग
2.4 स्व–मूल्यांकन
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

2.5 उत्तर कुंजी
2.6 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'सीता स्वयंवर' भाग का भावार्थ समझाना है।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन करने के उपरांत आप केशव की 'रामचन्द्रिका' के 'सीता स्वयंवर' भाग का भावार्थ समझ सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'सीता स्वयंवर' भाग की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या की गयी है।

2.3 केशव द्वारा रचित रामचन्द्रिका के 'सीता स्वयंवर' का व्याख्या–भाग

(1)

खंड–परसु को सौभिजै, सभा मध्य कोदंड।
मानहुँ शेष अशेषधर, धरनहार बखिंड।।

शब्दार्थः– खण्ड परस = शिवजी, महादेव। सौभिजै = शोभा पाता है। कोदंड = धनुष। अशेष = समस्त। शेष = शेषनाग। धर = पृथ्वी। बखिण्ड = बलवान।

प्रसंगः– प्रस्तुत छन्द में जनकपुरी से लौटा हुआ ब्राह्मण महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में रहने वाले ऋषि–मुनियों को जनकपुरी में होने वाले धनुषयज्ञ की कथा सुनाता है।

व्याख्याः– राजा जनक की सभा में शिवजी के धनुष का वर्णन करता हुआ ब्राह्मण कह रहा है कि शिवजी का धनुष सभा के बीच में रखा हुआ शोभा पा रहा था। वह ऐसा जान पड़ता था मानो सम्पूर्ण पृथ्वी का भार धारण करने वाले बलवान शेषनाग हों।

विशेषः–

1. अलंकार = सोमिजै– सभा, बरिबंड में अनुप्रास तथा मानहु शेष में उत्प्रेक्षा अलंकार है, शेष– अशेष में सभंग पर यमक है।
2. शिवधनुष के जनक जी के पास होने से उनके शिवभक्त होने का संकेत है।

(2)

(सवैया) सोभित मंचन की अवली गजदंतमई छवि उज्जवल छाई।
ईस मनो वसुधा में सुधारि सुधार–मंडल मंडि जोन्हाई।।
तामहँ 'केशवदास' विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्पौं जनु देवसभा सुभ सीपस्वयंवर देखन आई।।

शब्दार्थः– ईश = ब्रह्मा। सुधाधर–मुडल = चन्द्रमा का गोला। स्यौ = सहित, समेत।

प्रसंगः– जनक पुरी से आया ब्राह्मण सीता–स्वयंवर वाले मण्डप का वर्णन कर रहा है।

व्याख्याः– हाथी दाँत की बनी हुई सुन्दर और उज्ज्वल छवि वाले मंचों की पंक्तियाँ ऐसी शोभा दे रही हैं, मानो ब्रह्मा ने चन्द्र मंडल के बीच में बिजली को सुशोभित किया है, उसी पर सब सुन्दर राजकुमार बैठे हुए हैं। वह समाज ऐसा शोभित होता है, मानो देवताओं सहित देवसभा भी सीता के स्वयंवर को देखने आई हो।

विशेषः–

1. अलंकार – सुधारि–सुधा, मंडल–मंडि, सवै–सुखदाई, सुभ–सीय स्वयंवर में अनुप्रास। ईस मनो... जुन्हाई तथा देवन स्यौं.... देखने आई में वस्तुप्रेक्षा अलंकार है।
2. स्वयंवर की अपार शोभा और मांगलिकता को व्यक्त करने के लिए उचित उपमानों के प्रयोग ने वक्तव्य को यथेष्ट भावपूर्ण बना दिया है।
3. भाषा– ब्रजभाषा तथा सवैया छन्द है।

(3)

पावक, पावन, मनि पत्रग, पतंग, पितृ,
जेते ज्योतिवतं जग ज्योतिषिन गाए हैं।
असुर–प्रसिद्ध सिद्ध, तीरथ सहित सिंधु,
'केसव' चराचर जे वेदन बताए हैं।
अजर अमर अज अंजी औ–अनंगी सब,
नरनि सुनावै ऐसे कौन गुन पाए हैं।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिने को,
भूपन को रूप घरि विस्वरूप आए हैं।

शब्दार्थः– मनि पत्रग = मणिधारी सर्प। पतंग = सूर्य। पितृ = पूर्वज। ज्योतिवतं = प्रकाशवान। अंजी = शरीरधारी। अनंगी = शरीरधारी। अज = जन्म न लेने वाले। अवलोकिवेको = देखने के लिए। विस्वरूप = भगवान। अजर = जो कभी वृद्ध न हो।

प्रसंगः– महाकवि केशवदास अपने महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' में सीता के स्वयंवर के अवसर पर मण्डप में उपस्थित सुर–असुर, सिद्ध आदि का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्याः– ज्योतिषियों ने संसार में अग्नि, वायु, मणिधारी सर्प, सूर्य, पितर आदि जितने भी तेजस्वी बताये हैं। वेदों ने असुर, प्रसिद्ध सिद्ध, सागर सहित सभी तीर्थ तथा जितने चर और अचर प्राणियों का वर्णन किया है। सीता के स्वयंवर में सम्मिलित सभी अजर–अमर, निराकार और साकार प्राणियों का वर्णन कर सके, ऐसे गुण किसे प्राप्त हुए हैं। अर्थात् किसी को नहीं, ये सभी सीता जी के स्वयंवर में उपस्थित हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान विष्णु स्वयं ही राजाओं का रूप बनाकर सीता जी का स्वयंवर देखने को पधारे हैं।

विशेषः–

1. अलंकार – पावक–पवन, पतंग–पित, जेते–ज्योतिक्त–जग ज्योतिषिन, सहित–सिन्धु, वेदन–बताये में अनुप्रास, 'वरनि सुनावै ऐसे कौन गुन पाये है, में वक्रोक्ति में पुष्ट सम्बन्ध–तिशपोक्ति तथा भूपन को रूप धरि विस्वरूप आये हैं में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
2. शब्द चयन में उत्पन्न लाघव और कौशल का प्रदर्शन है।
3. शान्त रस, ब्रजभाषा एवं धनाक्षरी छन्द है।

(4)

(दोहा) काहू को न भयो कहूँ, ऐसा सगुन न होत।
पुर पेठत श्रीराम के, भजो मित्र उघोत।।

शब्दार्थः– सगुन = शुभसूयक घटना। मित्र = सूर्य। उघोत = प्रकाश।

प्रसंगः– इस छन्द में उस स्थल का वर्णन है, जब रामचन्द्र जी विश्वामित्र मुनि के साथ जनकपुरी में प्रवेश कर रहे थे, केशवदासजी उस समय के सूर्योदय का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्याः– राम के जनकपुरी में प्रवेश करते ही सूर्य उदय हो गया। यह ऐसा मंगल शकुन था जो अन्य किसी को न हुआ और न होता है। विश्वामित्र मुनि के साथ ज्यों ही रामचन्द्र जी ने जनकपुर की सभा में प्रवेश किया, त्यों ही सूर्योदय हुआ। नगर प्रवेश करते समय सूर्योदय अत्यधिक शुभ माना जाता है।

विशेषः–

1. अलंकार – 'काहे–को पुर–पैठत में अनुप्रास अलंकार है।
2. इस छन्द से स्पष्ट होता है कि केशव जी शकुनों में विश्वास करते थे।

(5)

(चौपाई) कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे।
चितवत चित कुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चितासी लसै।।

शब्दार्थः– अरुन = अरूण, लाल। खरे = अच्छी तरह। अरुण खरे = अधिक लाल। अनुराग = प्रेम। त्रसै = भयभीत है, डर रही है, लसै = सुशोभित है, दिखाई दे रही है।

प्रसंगः– महर्षि विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण के जनकपुरी में प्रवेश करते ही सुर्योदय हुआ है। राम उसी सर्योदय का वर्णन करते हैं।

व्याख्याः– (श्री राम जी कहने लगे) अधिक लाल सूर्य अत्यधिक शोभा देते हैं, कुछ ऐसा ज्ञान पड़ता है कि सूर्य लक्ष्मण के अनुराग से भरे हुए हैं, सूर्य को देते ही कुमुदिनी अपने चित्त में डर रही है कि कहीं यह सूर्य अपने कर से मुझे छू न ले। चोरों और चकोरों के लिए तो यह सूर्य चिंता के ही समान है क्योंकि चोर सूर्योदय होते ही भाग जाते हैं और चकोर को चन्द्र–दर्शन नहीं हो पाता। इस कारण उदित सूर्य का अरुण बिम्ब इन दोनों को चिता जैसा दाहक प्रतीत होता है।

विशेषः–

1. अलंकार– 'चितवन–चित, चोर– चकोर–चिता में अनुप्रास और चोर–चकोर में ध्वनिसाम्य है, 'जनु लक्ष्मण के अनुराग भटे में उत्प्रेक्षा और 'चिता–सी लसै' में उपमा अलंकार है।
2. 'चोर चकोर'– सूर्य का प्रकार चोरों के लिए सुखनाशक ही है, चकोर पक्षी भी चन्द्रमा से ही प्रेम करता है और सूर्योदय होने पर दुखित हो जाता है।
3. ब्रजभाषा और चौपाई छन्द है तीसरे और चौथे चरण का छन्द दोषपूर्ण है।

2.4 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में आपने केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'सीता स्वयंवर' भाग की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर तथा प्रश्नों के उत्तर सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर इस प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

(क) रिक्त स्थान भरें

1. राजा जनक की सभा में शिवजी के धनुष का वर्णन करता हुआ .....कह रहा है कि शिवजी का धनुष सभा के बीच में रखा हुआ शोभा पा रहा था।
2. .....के जनक जी के पास होने से उनके शिवभक्त होने का संकेत है।
3. .....से आया ब्राह्मण सीता–स्वयंवर वाले मण्डप का वर्णन कर रहा है।
4. मानो देवताओं सहित .....भी सीता के स्वयंवर को देखने आई।
5. ईस मनो... जुन्हाई तथा देवन स्यौं.... देखने आई में .....अलंकार है।

(ख) सही या गलत

1. केशव ने 'रामचन्द्रिका' में सीता–स्वयंवर के अवसर पर मण्डप में उपस्थित सुर–असुर, सिद्ध आदि का वर्णन किया हैं। ( )
2. सीता के स्वयंवर में सम्मिलित सभी अजर–अमर, निराकार और साकार प्राणियों का वर्णन करने का गुण सबको प्राप्त हुआ हैं। ( )
3. ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान विष्णु स्वयं ही राजाओं का रूप बनाकर सीता जी का स्वयंवर देखने को पधारे हैं। ( )
4. नगर प्रवेश करते समय सूर्योदय अत्यधिक अशुभ माना जाता है। ( )
5. चोरों और चकोरों को उदित सूर्य का अरुण बिम्ब चिता जैसा दाहक प्रतीत होता है। ( )
6. सूर्य का प्रकार चोरों के लिए सुखनाशक ही है।( )

2.5 उत्तर कुंजी

स्वमूल्यांकनः– (क) रिक्त स्थान

1. ब्राह्मण 2. शिवधनुष 3. जनक पुरी 4. देवसभा 5. वस्तुप्रेक्षा

स्वमूल्यांकनः (ख) सही या गलत

1. सही 2. गलत 3. सही 4. गलत 5. सही 6. सही

2.6 पठनीय पुस्तकें

सं. जगन्नाथ तिवारी, केशव 'रामचन्द्रिका'

रामचन्द्रिका के 'परशुराम–संवाद' का व्याख्या भाग

रूपरेखा

3.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
3.2 प्रस्तावना
3.3 केशव द्वारा रचित रामचन्द्रिका के 'परशुराम–संवाद' का व्याख्या भाग
3.4 स्व–मूल्यांकन
(क) रिक्त स्थान
(ख) शब्दार्थ सुमेलित
3.5 उत्तर कुंजी
3.6 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'परशुराम–संवाद' भाग का भावार्थ समझाना है।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन करने के उपरांत आप केशव की 'रामचन्द्रिका' के 'परशुराम–संवाद' भाग का भावार्थ समझ सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'परशुराम–संवाद' भाग की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या की गयी है।

(दोहा)
(1)
विश्वामित्र विदा भए, जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज को, परशुराम अकुलाइ।।

शब्दार्थः– अकुलाइ = व्याकुल होकर।

प्रसंगः– राम द्वारा धनुष तोड़ दिये जाने पर विश्वामित्र के परामर्श से अवधपुर को लग्न–पत्रिका भेजी गई। दशरथ जी बरात के साथ जनकपुर पधारे। राम के साथ अन्य सभी भाइयों का भी विवाह हुआ। विवाहोपरान्त बरात जनकपुर से विदा हुई। तभी लौटते हुए मार्ग से परशुराम जी मिले।

व्याख्याः– कवि का कहना है कि विश्वामित्र राम का विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात् जनकपुरी से विदा हुए। जनक जी उन्हें कुछ दूर पहुँचाने आये। जब जनक जी उन्हें विदा करके लौट गये, तब आगे की सेना को मार्ग में परशुराम जी मिले।

विशेषः–

1. अलंकार – विदा ऊपे– फिरे–पहुँचाई में अनुप्रास अलंकार है।
2. पिनाक परशुराम जी के गुरु भगवान शंकर का धनुष था। उसके टूटने से परशुराम जी का व्याकुल होना स्वाभाविक है।

(2)

(चंचरी छन्द)

मत्त दंति अमत्त है, गये देखि–देखि न गज्जहीं।
ठौर–ठौर सुदेश केशव दुदभी नहिं वज्जही।
डारि–डारि ध्य्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकै नारि वेषन सज्जहीन।।

शब्दार्थः– मत्त–दंति = मस्त हाथी। अमत्त = मदहीन। सुदेश = सुन्दर देश। सूरज = शूरों के पुत्र। तनत्राण = कवच।

प्रसंगः = जनकपुर ने विवाह होने के बाद राम आदि चारों भाइयों की बरात अयोध्या लौट रही थी। इस बरात के लोगों को मार्ग में परशुराम जी के मिलने से उनकी जो दशा हुई, उसका वर्णन केशवदास जी कर रहे हैं।

व्याख्याः– कवि का कहना है कि परशुराम जी के आते ही मस्त हाथियों का मद उतर गया। आंतक से भयभीत उन सबने परशुराम जी को देखकर गरजना छोड़ दिया। स्थान–स्थान पर सुन्दर गम्भीर ध्वनि करने वाले नगाड़े बजने बंद हो गये। शूरवीरों के पुत्र अर्थात् जन्मजात वीर अस्त्र शस्त्र फेंक–फेंककर अपने–अपने जीव लेकर भागने लगे। कोई–कोई कवचादि काट–काटकर स्त्री का वेश धारण करने लगे।

विशेषः–

1. अलंकार – 'तन–त्राण' से अनुप्रास, 'मत्त–अमत्त' सभंगपद यमक तथा 'ठौर–ठोर, 'देखि–देखि, 'डाटि–डाटि' से पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।
2. परशुराम जी के आतंक का प्रभावपूर्ण एवं चित्रमय वर्णन है।
3. संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा और चंचरी छन्द है।

(3)

(दोहा) वामदेव ऋषि सौ कहनो, परशुराम रणधीर।
महादेव को धनुष यह, को तोरेड बलबीर।

शब्दार्थः– वामदेव = राजा दशरथ के एक मन्त्री।

प्रसंगः– परशुराम जी ने शिव–धनुष तोड़ने वाले का नाम पूछा। केशवदास जी उसी का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्याः– श्रेष्ठ योद्धा परशुराम जी ने वामदेव ऋषि से पूछा कि वह श्रेष्ठ वीर कौन–सा है, जिसने शिवजी के धनुष को तोड़ा है।

विशेषः–

1) अलंकार 'बल–वीर' में अनुप्रास और विशेषण साभिप्राय प्रयोग होने से 'रणधीर' में परिकर अलंकार है।

2) संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा और दोहा छन्द है।

3.4 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में आपने केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के 'परसुराम–संवाद' की महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर तथा शब्दार्थ सुमेलित कर इस प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा।

(क) रिक्त स्थान भरें

1. .....के परामर्श से अवधपुर को लग्न–पत्रिका भेजी गई।
2. बरात जनकपुर से विदा हुई तभी लौटते हुए मार्ग में .....मिले।
3. विश्वामित्र राम का विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात् .....से विदा हुए।
4. आंतक से भयभीत .....ने परशुराम जी को देखकर गरजना छोड़ दिया।
5. परशुराम को देखकर कोई–कोई कवचादि काट–काटकर..... का वेश धारण करने लगे।
6. परशुराम ने .....ऋषि से पूछा कि वह श्रेष्ठ वीर कौन–सा है, जिसने शिवजी के धनुष को तोड़ा है।

(ख) शब्दार्थ सुमेलित कीजिए

1. अकुलाइ – सुन्दर देश
2. मत्त–दंति – कवच
3. अमत्त – राजा दशरथ के एक मन्त्री
4. सुदेश – व्याकुल होकर
5. सूरज – शूरों के पुत्र
6. तनत्राण – मस्त हाथी
7. वामदेव – मदहीन

3.5 उत्तर कुंजी

स्वमूल्यांकनः– (क) रिक्त स्थान

1. विश्वामित्र 2. परशुराम 3. जनकपुरी 4. हाथियों 5. स्त्री 6. वामदेव

स्वमूल्यांकनः– (ख) शब्दार्थ सुम्मेलन

1. व्याकुल होकर 2. मस्त हाथी 3. मदहीन 4. सुन्दर देश 5. शूरों के पुत्र 6. कवच 7. राजा दशरथ के एक मन्त्री

3.6 पठनीय पुस्तकें

सं. जगन्नाथ तिवारी, केशव 'रामचन्द्रिका'

'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों की व्याख्या

रूपरेखा

4.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
4.2 प्रस्तावना
4.3 ओम प्रकाश द्वारा सम्पादित 'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों की व्याख्या
• स्व–मूल्यांकन
(क) रिक्त स्थान
(ख) सही या गलत
4.4 उत्तर कुंजी
4.5 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको पाठ्यक्रम में निर्धारित ओम प्रकाश द्वारा सम्पादित 'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों के भावार्थ से अवगत करवाना है।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन करने के उपरांत आप पाठ्यक्रम में निर्धारित ओम प्रकाश द्वारा सम्पादित 'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों के भावार्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में ओम प्रकाश द्वारा सम्पादित 'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों की व्याख्या की गयी है।

4.3 ओम प्रकाश द्वारा सम्पादित 'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों की व्याख्या

(1)

मेरी भव–बाधा हरौ, राधा–नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परैं, स्याम हरित–दुति होई।।

शब्दार्थः– भव–बाथा = सांसारिक कष्ट। सोइ = वह ही, वही। झाँई = छाया, परछाई। परै = दूर, उस ओर। हरित = हरा रंग, दुति = कागद या दावात

प्रसंगः– सतसई का यह प्रथम दोहा है, इसको मंगलाचरण समझना चाहिए। कवि ने इष्ट–देवता के रूप में 'राधा–नागरी' की स्तुति की है।

व्याख्याः– वही राधा–नागरी मेरी भव–बाधा को दूर करे जिनके शरीर की झाँई पड़ने से श्याम हरित–घुति हो जाते हैं।

पूर्वार्द्ध में तीन पदों पर ध्यान जाता है। 'भव – बाधा' के कम से कम दो अर्थ स्पष्ट हैं। एक तो आवागमन अथवा जन्म–मरण का कष्ट, जो मुक्ति अथवा भक्ति द्वारा दूर हो सकता है, यहाँ 'भव' का अर्थ 'जन्म' है, तुलसी ने दोनों अर्थों (संसार तथा जन्म) में एक ही चौपाई में किया है।

भव भव, विभव, पराभव कारिनि।
विस्व–विमोहनि, स्वबस बिहारिनि।।

(यहाँ प्रथम 'भव' का अर्थ 'जगत' तथा दूसरे का 'उत्पति' है)

जो कार्य तुलसी ने यमक की सहायता से किया था वह बिहारी ने श्लेष द्वारा कर लिया है। 'भव' का दूसरा अर्थ 'जगत' होने से 'भव–बाधा का अर्थ 'संसार का कष्ट' अथवा 'आपत्तियां' है। कवि अपनी इष्टदेवता से सुख–सम्पति की याचना करता है (एक अर्थ) और साथ ही जीवनोपरान्त मुक्ति अथवा जन्म–जन्मान्तर में भक्ति की कामना (दूसरा अर्थ) भी करता है।

'मेरी' तथा 'हरौ' पदों पर खड़ीबोली का प्रभाव है। ब्रज–भाषा में 'मेरी' के स्थान पर 'मोरी' का प्रयोग होता है 'हरौ' का ब्रजभाषा रूप 'हरहु' होगा। 'मेरी भव – बाधा हरौ', यह पूरा वाक्य ही ब्रजभाषा का 'नागर' प्रयोग है।

सूरदास तक कुब्जा 'नागरि नारि' थी और राधा–सहित समस्त गोपियाँ 'ग्वालिनी' थीं, परन्तु बिहारी में आकर 'राधा', 'नागरी' बन गई और उस युग के सांस्कृतिक परिवेश की केन्द्र सिद्ध हुई। कवि नागर संस्कृति का सबसे बड़ा प्रतिष्ठापक है, उसने 'गंवार' तथा 'गवेलनि' को फूहड़ मानकर, अनेक दोहों में उनका निर्मम परिहास किया है।

'राधा, बिहारी की इष्टदेवता हैं। यद्यपि 'बाधा–हरण' हरि का कर्तव्य था, परन्तु यहां 'राधा' को 'हरण' का दायित्व दिया है और राधा को हरि से भी उच्च भूमि पर रखा गया है। तीसरे चरण में 'साई' शब्द का अर्थ 'छाया' अथवा 'झलक' है।

चौथे चरण में 'हरित–दुति' के दो अर्थ हैं– 'हरी धुति से युक्त' तथा 'हरी गई है धुति जिसकी अर्थात, धुतिहीन, ये दोनों अर्थ परस्पर विरोधी हैं।

इस दोहे के सामान्यतः तीन अलग–अलग अर्थ दिए गए हैं। ध्यान – परक अर्थ इस प्रकार होगा भक्त जब राधा–नागरी के स्वरुप का ध्यान (साँई) करता है तो उसके मन का कलुष (स्यामु) धुत (हरित–दुति) जाता है। 'लालचन्द्रिका' में यह अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है –

जा तन की झाई परै, नेकु ध्यान में आय।
दूरि होत स्यामत्व–तम, धुति जो सत्व अधिकाय।।

लीलापरक अर्थ यह हैरू वृन्धवन में रास करते हुए युगल मूर्ति (राधा–कृष्ण) जब एकत्र होते हैं तो कृष्ण की नीली झलक तथा राधा की कनकवर्णी (=पीली) झलक के मिलने से एक हरे रंग का आभास मिलता है, जिसको पाकर भक्तों के हृदय हरे–भरे हो जाते हैं।

श्रृंगार– परक अर्थ ध्वनि जीवी है। राधा और कृष्ण की लीला के लिए मंच सुसज्जित है, श्याम ने राधा नागरी की एक झलक प्राप्त की और वे मुग्ध (हरे–भरे) हो गए, पर्दा गिर गया, शेष लीलाएँ नेपथ्य में हुई। संभोग श्रृंगार का इतना नागर वर्णन हिन्दी–साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध है। बिहारी में मांसलता, स्थूलता अथवा अनावृत वर्णन नहीं है। घोर श्रृंगार का वर्णन वे केवल व्यंजना द्वारा करते हैं।

इस दोहे के भिन्न–भिन्न प्रकार के अर्थ तो हैं ही, कवि का रंग–विषयक ज्ञान भी पाठक को विदित होता है। 'नीला' और 'पीला' रंग मिलाने से 'हरा' रंग बन जाता है।

उत्तरार्द्ध का अर्थ इस प्रकार भी किया गया है– राधा की छाया से भी श्याम फीके पड़ जाते (हरित–द्युति) हैं अर्थात, राधा का सौन्दर्य अथवा वैभव श्याम की विभूति को फीका कर देता है। भक्तों की दृष्टि में भी 'झांई' 'स्यामु' तथा 'हरित–दुति' पदों में श्लेष अलंकार है। समस्त दोहे में काव्यलिंग है क्योंकि समर्थनीय अर्थ का समर्पन हो रहा है– समर्थनीपस्पार्यस्य काव्यलिंग समर्थनम्।

(2)

खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।
आक–कली न रली करै अली, अली जिय जानि।।

शब्दार्थः– बहाऊ = निर्लज्ज, बेशर्म। बानि = वचन। कली = फूल का प्रारंभिक रूप। जानि = उत्पति

व्याख्याः– चुगलखोर पड़ौसिनों ने नायिका को बताया कि उसकी अनुपस्थिति में उसका पति किसी अन्य साधारण नायिका के साथ आनन्द–विलास करता है। अनेक पडोसिनों से एक ही बात सुनकर नायिका ने विश्वास कर लिया और वह मान करके घट में बवंडर पैदा कर बैठी। उस समय एक समझदार एवं हितैषिणी सखी उसको समझा–बुझाकर घर में शान्ति स्थापित करना चाहती है। रुपस्तुति नारी की सबसे बड़ी दुर्वलता है, सखी ने उसी की व्यंजना का सहारा लिया, रूप के साथ गुण, संस्कृति आदि को जोड़कर अपने पक्ष को और बलशाली बना दिया।

हे भोली–भाली भावुक सखी, तू तो कान की बड़ी पतली है– जो सुनती है उस पर विश्वास कर लेती है, यह भी नहीं सोचती कि जो व्यक्ति कुछ सूचना दे रहा है वह तेरा हितैषी है भी अथवा नहीं, और वह अपना काम निकालने अथवा तुम्हारे घर को अव्यवस्थित करने के लिए ही तो वैसा नहीं कह रहा। तेरी यह आदत अच्छी नहीं है प्रत्युत हानिकारक है, यह तेरा स्थायी स्वभाव नहीं है, अनुभवहीन प्रतिक्रिया है– तू इसको सुधार ले, अन्यथा तेरा परिवार चौपट हो जायगा।

तनिक तटस्थ होकर, विवेकपूर्वक विश्लेषण करके यह सोचो कि जो भ्रमर स्वभावत कमल–कली के साथ आनन्द–भोग का अभ्यासी है वह अपने नैसर्गिक गुण को त्यागकर क्या कभी आक की कली के साथ सुख भोग करता है। यो तो दोनों ही कलियाँ हैं और दोनों का रंग भी एक–सा होता है, परन्तु कमल और आक का अन्तर भ्रमर के स्वभाव में है– वह सहज अन्तःप्रेरणा से कमल के पास जाएगा, आक के पास क्षण भर भी नहीं टिकेगा। इसी प्रकार तेरा गुणवान् पति खरा पारखी है, रूप–गुण की ओर स्वभावतः आकृष्ट होकर उसने तुझ जैसी पद्मिनी को अपनी अद्धोगिनी बना लिया है– प्रत्येक पुण्य के जीवन में अनेक स्त्रियाँ आती हैं परन्तु धीर–गम्भीर व्यक्ति अन्तः प्रेरणा के कारण किसी एक की ओर ही आकृष्ट होता है। यह कल्पना ही व्यर्थ है कि ऐसा व्यक्ति मनोरजंन के लिए भी किसी अन्य को अपनी प्रेयसी बना सकता है।

कमल और आक दोनों की कलियाँ होती हैं, रंग में भी लगभग एक–सी, (किशोरी नायिकाओं के समान सहज विकास के कारण आकर्षक लगने वाली), परन्तु कमल का गुण नागर–जन ही समझते है गंवारों के लिए आक को कली ही रूप की राशि है, बिहारी आक को गंवारपन का प्रतीक समझते हैं, वह धतूरे का साथी है, और 'आक–धतूरा' ब्रज संस्कृति में जंगली वनस्पति का सामान्य प्रतिनिधि है, बिहारी के दोहो में धतूरा (कनक) पर व्यंग्य है और आक (अर्क) पर भी :

कहत धतूरे सौ कनक, गहनौ गढ़यौ न जाय।
सुन्यौ कहूं तरू अर्क तें, अर्क समान उद्योतु।।

'अली अली' में यमक है, संपूर्ण दोहे में अनुप्रास। 'सेविका' जैसी साधारण नायिका को 'आक–कली' कहने से नायिका के 'कमल–कली' (पधिन) होने की व्यंजना है। 'खरी पातरी कान की' लोकोक्ति है। 'बहाऊ बानि' लक्षणा का चमत्कार है। सखी ने इस बात का प्रमाण नहीं दिया कि नायक के विषय में वह अपवाद निराधार है, प्रत्युत नायिका की भावुकता का लाभ उठाकर उसके ह्रदय को गुदगुदाने में सफलता प्राप्त की है। कुछ टीकाकार नायिका को स्वकीया मानने की आवश्यकता नहीं समझते इसी प्रसंग का इसी विषय का एक दोहा और भी है।

तो रस–राच्चों आव–बस, कहौ कुटिल जाति, कूर।
जीभ निबौरी क्यों लगे, बौरी, चखि अंगूर।।

(3)

अजौं तरयौना हो रह यौ, श्रुति सेवक इक रंग।
नाक–बास बेसरि लह्यौ, बसि कुतनु कै संग।।

शब्दार्थः– तरयौना = कर्ण आभूषण (कान में पहना जाने वाला आभूषण)।

श्रुति = सुनना। बेसरि = नाक का आभूषण जिसमें मोती लटकता है। बसि = बसने वाला या रहने वाला। मुकुतन = मोतीः जीवनमुक्त लोग।

व्याख्याः– अलंकृत सौन्दर्य के प्रसंग में कवि नायिका के कर्णाभरण का वर्णन कर रहा है, उसकी दृष्टि नायिका के नासिका–भूषण पर भी गई है।

यह आभूषण जो (ठोस सोने का बना हुआ है और) निरन्तर कान में पहना जाता है 'तरौना' नाम से प्रसिद्ध है– कितना बहुमूल्य आभूषण और उसका कैसा साधारण सा नाम तथा स्थान। दूसरी ओर नाक की ओर देखें तो पतली–सी नाली जिसकी शोभा मोतियों के संयोग के कारण है, (सदा पहनी भी नहीं जाती और मूल्य में भी कम है), कितनी महत्वपूर्ण–सी लगती है।

श्लेष के द्वारा यह दोहा ज्ञानी और भक्तों के प्रति भी संकेत करता है। जो ज्ञानी निरन्तर (इक रंग) साधना करते हुए वेद–शास्त्र (श्रुति) का चिन्तन करता रहा वह इतने समय बाद भी (संसार–सागर से) तर नहीं सका (तर्‌यौना)। दूसरी ओर जो भक्त परमहंस (मुक्त) लोगों की संगति करता रहा वह यद्यपि अत्यन्त (वेसरि) था फिर भी उसको स्वर्ग प्राप्त (नाक–वास) हो गया।

श्लेष का चमत्कार प्रशंसनीय है।

कवि का प्रतिपाद्य आभूषण है, कोई विचारधारा नहीं। श्रुति–सेवन अर्थात वेद–पाठ मात्र किसी का कल्याण नहीं कर सकता, उससे तो सुगम एवं सहज सत्संगति है जिसके द्वारा साधारण व्यक्ति भी स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है। उपनिषद में आत्मलाभ के लिए शास्त्र–ज्ञान आवश्यक नहीं माना गया– ''तायमात्या बलहीनेन लम्यः न मेधया न बहुशः श्रुतेन।'' बिहारी भी श्रुति–मात्र को पर्याप्त नहीं समझते। श्लेष का चमत्कार कवि का मुख्य ध्येय है।

तरयौना नायिका का कर्णभरण है (जिस प्रकार कि कुण्डल पुरुष का)। तरयौना का वर्णन अन्यत्र भी हैः

लसतु सेतसारी ढप्यौ, तरल तर्यौना कान।
पपौ मनौ सुरसरि–सलिल, रवि–प्रतिबिंबु विहान।।

संगति–सम्बन्धी बिहारी के दो दोहे हैं। एक में सत्संगति से सुमति नहीं प्राप्त होती, दूसरे में कुसंगति के दोष अवश्यम्भावी हैः

संगति सुमति न पावही, परे कुमति के धंध।
संगति–दोषु लगे सबनु, कहेति सांचे बैन।।

(4)

खेलन सिखए, अलि भलैं चतुर अहेरी–मार।
कानन–चारी नैन–मृग, नागर तरन सिकार।।

शब्दार्थः– मार = कामदेव। अहेरी = आखेटक = व्याध अथवा शिकारी। 'सिकार' शब्द फारसी भाषा का है।

व्याख्याः– नख–शिख के प्रसंग में कवि ने नायिका के नेत्रों का वर्णन, सखी–मुख से किया है। प्रौढ़ा सखी मुग्धा किशोरी के नेत्रों के सौन्दर्य को सराहती हुई चमत्कारिक शैली पर कह रही है,

जब कोई आखेट–प्रेमी नगर निवासी किसी कुशल शिकारी से आखेट का प्रशिक्षण ले लेता है तो वह कानन में जाकर मृगों का शिकार करने में मनोविनोद प्राप्त करता है। (यह अप्रस्तुत अर्थ है)

यहां आज उलटा ही दिखाई पड़ रहा है। कामदेव रुपी शिकारी का प्रशिक्षण अद्‌भुत है। इससे सीखकर कानन में भ्रमण करने वाले मृग (= नैन) नगर के भीतर घुसकर नागरिकों का शिकार कर रहे हैं। (प्रस्तुत अर्थ)

समस्त चमत्कार उत्तरार्द्ध में है। सामान्यतः नगर के लोग वन में जाकर मृगों का शिकार करते हैं, परन्तु आज वन के मृग नगर में आकर नगर में रहने वाले लोगों का शिकार कर रहे हैं।

'कानन–चारी' में श्लेष है, मृग पक्ष में अर्थ है 'कानन में रहने वाले'। नख–शिख वर्णन में, नेत्र पक्ष में, अर्थ होगा 'कानों तक विस्तीर्ण'। 'कानन' तत्सम शब्द है, अर्थ है 'वन' 'कर्ण' तत्सम का तद्‌भव रूप कान है, बहुवचन 'कानन' होगा। प्रत्यप 'चार' संस्कृत का ही शब्द है– दोनों पक्षों में।

'नैन–मृग' तथा 'अहेरी–मार' में रूपक है, परन्तु इन दोनों में प्रस्तुत–अप्रस्तुत का क्रम अलग–अलग है। 'नैन–मृग' में नैन प्रस्तुत है, परन्तु 'अहेरी–मार' में 'मार' प्रस्तुत है, 'मार' का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार है। 'नागरता' सतसई का एक विशेष गुण है। कवि केवल नागर–जनों के शृंगार का, लम्पटता का वर्णन करता है. सामान्य जन का नहीं, बिहारी में सामन्तीपता कूट–कूट कर भरी हुई है। इस दोहे में 'मार' भी नागर (चतुर) है और जिनका शिकार होता है। वे भी 'नागर' है। शृंगार में नेत्र–वर्णन बिहारी की इसी नागरता का प्रतीक है, उन्होंने जिस 'चितवन' का वर्णन किया है उसके नस में केवल सुजान ही होते हैं– ''वह चितवन और नहीं, जेहि बस होट सुजान''।

रत्नाकर के अनुसार यह कथन अन्तरंग सखी का नायिका के प्रति है। भगवान दीन के अनुसार "नायिका कुल्टा व गणिका है" (क्योंकि नागर– नररीन बहुवचन है। कृष्ण कवि के अनुसार नायिका परकीया कुलटा है– ''नागर तरनु शिकार या पदतें बहुत नापकन की प्रतीति भई''।

यह मानने में संकोच नहीं कि कथन सखी का है नायिका के प्रति, परन्तु इस कथन को सामान्य मानना अधिक उचित है। मुग्धा नायिका को ज्ञात ही नहीं कि उसके नेत्रों में क्या जादू है, सखी चामत्कारिक शैली से नायिका को उसके इस गुण की सूचना दे रही है– उसको उसकें कैशोर के प्रति सचेत कर रही है।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'भले' का अर्थ 'भले प्रकार से' लिया है। वस्तुतः 'भले', 'भले ही' तथा 'भले' तीनों अलग–अलग हैं। 'भले' का अर्थ 'वाह' है। यह विस्मय एवं हर्ष प्रकट करता है। पंजाबी लोक गीतों में, 'बल्ले बल्ले' बहुलता से आता है, प्रस्तुत दोहे में भी विस्मय–हर्ष बोधक प्रयोग है, भलै की स्थिति क्रिया के पास न होकर 'अलि' के पास है. 'अलि, भलै'।

(5)

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन–तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की, छांहौ चाहति छाँह।।

शब्दार्थः– अति = बहुत। सघन = धना, गसिन, ठोस। माँह = मास, महीना। दुपहरी = दोपहर का समय। छाँह = ऊपर से छाई या ढकी हुई जगह।

व्याख्याः– 'षड़ऋतु वर्णन' तथा बारहमासा वर्णन ये दोनों ही परंपराएं हमारे साहित्य में रही हैं। प्रायः बारहमासा लोक–साहित्य में अधिक अपनाया गया है।

बिहारी में दोनों है– ऋतुओं के दोहे भी हैं तथा मासों के भी। अगहन, पूस, माघ, चैत्र, आदि के साथ–साथ कवि ने जेठ का भी वर्णन किया है। प्रस्तुत दोहे में जेठ की दुपहरी का चित्रण है, उसकी समस्त तीक्ष्णता को व्यक्त करते हुए, भगवानदीन ने इसको सखी की उक्ति माना है, मानवती नायिका के प्रति, उन दोनों को मिलाने के उद्देश्य हो। रत्नाकार के अनुसार यह स्वयंदूतिका नायिका का वचन नायक के प्रति है। अधिक सौन्दर्य स्वयंदूतिका का कथन मानने में ही है। जेठ मास की इस भयानक दोपहरी को देखो (जीव–जन्तु एवं वनस्पतियां ही नहीं) जड़ छाया भी इसकी तीक्ष्णता से व्याकुल है और स्वयं किसी छाया की खोज कर रही है।

ग्रीष्म के ताप से व्याकुल होकर वह छाया भागी और सघन वन में छिपकर बैठ गई, परन्तु वहां भी आतप ने उसका पीछा किया तो अब (किसी भवन के अभाव में) अपने शरीर के भीतर ही (घर = आश्रय समझकर) प्रवेश कर गई है– सूर्य के ठीक ऊपर आने पर छाया शरीर नितान्त विलीन हो गया।

'सदन–तन' मे रूपक है 'सदनरूपी तन'। 'बैठि रही', 'चाहति' आदि कियाओं के द्वारा समासोक्ति व्यंजित है (आजकल इसको 'मानवीकरण' कहते है):

समासोक्तिः समैचौत्र कार्य–लिंग विशेषणैः।
व्यवहार–समारोपः प्रस्तुतेडन्यस्य वस्तुनः।।

(कार्य, लिंग अथवा विशेषण के द्वारा जिस वर्णन में प्रस्तुत पर किसी अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप हो।

एक अन्य दोहे में बिहारी ने जेठ मास में छाया को 'जिन की जीवनि' बतलाया है।

जिप की जीवनि जेठ, सो माह न छाँह सुहाइ।।

स्त्री पुरुष की छाया है, जेठ मास (यौवन) में सब छाया को खोजते हैं और उसके आलिंगन में शीतलता प्राप्त करते हैं। नायिका संकेत द्वारा नायक के मन में भी यह भाव जगाना चाहती है, इसीलिए उसे स्वयंदूतिका कहा गया है। पुरुष ही नहीं स्त्री (छाया) भी किसी अन्य शीतलदायिनी स्थिति से लिपटना चाहती है, तव तुम (पुरुष) मुझसे अवश्य ही आलिंगन– बद्ध होना चाहते होंगे।

'सदन–तन' का रूपक कुछ श्रम–साध्य लगता है। एक और दोहे में यही चमत्कार है।

पैठति–सी तन मैं सकुचि, बैठी चितै लजाइ।।

'छाही चाहति छाँह' एक लोकोक्ति बन गई है।

छेकानुप्रास का चमत्कार सर्वत्र है। अत्युक्ति प्रभावशालिनी है।

स्व मूल्यांकन : क – रिक्त स्थान भरो

प्रिय विद्यार्थियों ! आगे बढने से पहले अपने अध्ययन को थोडा विश्राम दे और निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर इस प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा।

1. कवि ने इष्ट–देवता के रूप में ———————————— की स्तुति की है।
2. 'भव – बाधा' के कम से कम दो अर्थ स्पष्ट हैं। प्रथम 'भव' का अर्थ ———————————— तथा दूसरे का 'उत्पति' है
3. सूरदास तक कुब्जा ———————————— थी ।
4. ————————————बिहारी की इष्टदेवता हैं।
5. ————————————स्वभावत कमल–कली के साथ आनन्द–भोग का अभ्यासी है ।
6. बिहारी ————————को गंवारपन का प्रतीक समझते हैं ।
7. नख–शिख के प्रसंग में कवि ने नायिका के नेत्रों का वर्णन ————————मुख से किया है।
8. प्रायः बारहमासा ————————————————साहित्य में अधिक अपनाया गया है।

(6)

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तै, हरि नीके ए नैन।

शब्दार्थः– हरि = भगवान, ईश्वर। नीके= अच्छी तरह, भली–भांति। आँख = नयन ।

व्याख्याः– नायिका के रूप वर्णन–प्रसंग में बिहारी का मन नेत्रों के चित्रण में सबसे अधिक लगा है। नेत्रों की क्रियाएं नागर है, नेत्र जो संकेत देते हैं। वे सर्वसामान्य के स्तर से अधिक परिष्कृत होते हैं, प्रस्तुत दोहे में दूती नायक से मिली और नायिका के साथ जोड़ने के लिए उसने नायिका के नेत्रों की प्रशंसा नायक से की। दूती ने नेत्रों के दो गुणों पर विशेष ध्यान दिया है– नुकीलापन (अनियारे) तथा चंचलता = भोलापन।

मैं सारे संसार में घूमती हूँ और सहस्त्रों सुन्दरियां मैने देखी है, परन्तु अपने पूरे व्यावसायिक जीवन में मैंने ऐसे क्षेत्र किसी नायिका के नहीं देखे (अन्यथा मैं उन नेत्रों की चर्चा आपसे क्यों करती। मैं शपथपूर्वक यह कह सकती हूँ। (जब मैंने ही नहीं देखे तो किसी दूसरे व्यक्ति ने इन नेत्रों की समता कहीं देखी हो– यह असम्भव है।)

कामदेव के पांच बाण है (जिससे वह 'पंचशर' कहलाता है) उनमें से एक–एक बाण वह एक–एक करके तीनों लोकों को जीतने के लिए छोड़ चुका है, शेष जो दो बाण रह गए हैं वे नायिका के दोनों नेत्र है अथवा नायिका के नेत्र उन बाणों से भी अधिक प्रखर हैं। इस विश्लेषण का सकेंत विद्यापति में इस प्रकार है:

तिन बान मदन तेजल तिन भुवने, अवधि रहल दओ नाने ।
विधि वड़ दारुन, नथए रसिकजन, सौपल तोहर नयाने।।

कवि–जन हरिणी के नेत्रों को भोलेपन एवं चंचलता के लिए सुन्दरी नायिका के नेत्रों का उपमान बनाया करते हैं। परन्तु हे हरि तुम मेरे ऊपर विश्वास करो, ये नेत्र निश्चय ही हरिणी के नेत्रों से भी सुन्दर हैं। एक बार तुम उन नेत्रों को देखोगे तो स्वयं जान जाओगे क्योंकि तुम भी तो पारखी हो।

'मैन', 'मै न' तथा 'हरिनी के', 'हरि नीके' में यमक का चमत्कार है। उपमान को पराजित करने (काम–बाणों को जीतने) में प्रतीप है। उपमान से भी अधिक सुन्दर (हरिणी के नेत्रों से नीके) होने में व्यतिरेक है, समस्त दोहे में काव्यलिंग है, क्योंकि समर्थणीय अर्थ का समर्थन होता है– 'समर्थनीयस्पापर्यस्य काव्यलिंग समर्थनम्।'

'बर' के दोनों अर्थ हो सकते हैं– श्रेष्ठ (शर का विश्लेषण), तथा 'बंलात' = बलपूर्वक जीतना ।

(7)

पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कै चहुँ पास।
नितंप्रति पून्यौई रहे आनन–ओप–उजास।।

शब्दार्थः– पत्रा = तिथिपत्रक, पून्यौ = पूर्णमासी, उजास = उजाला।

व्याख्याः मध्यकालीन साहित्य के दरबारी वातावरण में अत्युक्ति का बोलवाला या कदाचित् विदेशी प्रभाव से भी। सूफियों ने तो अत्युक्ति को हास्यास्पद बना दिया है। अत्युक्तियां प्रेम, विरह, रूप आदि की, विषप के अनुसार हो सकती हैं। बिहारी में विरह तथा रूप को अत्युक्तियां अधिक आकर्षक हैं। नायिका का आनन राकाशशि के समान अथवा उससे आगे बढ़कर बताया जाता है। तुलसी जैसे भक्त कवि ने भी सीता के मुख से तुलना करने पर यह ठहराया कि 'अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।' बिहारी ने तो कई दोहों में मुख को साक्षात् चन्द्रमा सिद्ध कर दिया है–

जन–मानस पर उसके प्रभाव को चित्रित करके। प्रस्तुत दोहा दूती का अत्युक्तिपूर्ण कथन है कदाचित आकृष्ट करने के लिए, नायक के प्रति। विशेषता यह है कि मुख को चन्द्र से न ही कम दिखलाया है और न अधिक, नितान्त एकरूप है वह, और ऐसी एकरूपता उसके प्रभाव से लक्षित है।

यदि यह जानना होता है कि आज कौन–सी तिथि है तो सामान्यतः चन्द्रमा को देखकर पता लगता है क्योंकि चन्द्रमा अमावस्या से लेकर पूर्णमासी तक प्रतिदिन एक–एक कला बढ़ता जाता है और फिर पूर्णमासी से अमावस्या तक एक कला घटता जाता है। परन्तु जिस मुहल्ले में नायिका का घर है वहां चन्द्र तो निस्तेज है, चन्द्रमा के नाम पर मुख प्रकाशित रहता है और इसीलिए प्रत्येक रात्रि को पूर्णचन्द्र (=मुख) का सब दर्शन करते हैं और प्रत्येक को पूर्णमासी समझते हैं। तिथि जानने के लिए विधि–पत्रक देखकर ही निर्णय किया जाता है।

'पत्रा ही' कहने से तिथि–सूचना को पत्रा तक सीमित कर दिया है, इसलिए 'परिसंख्या' अलंकार है, तिथि पाने का कारण देकर समर्थनीय अर्थ का समर्थन है, इसलिए 'काव्यलिंग' का चमत्कार है, 'नितप्रति' बिहारी का प्रिय पद है, अन्पत्र की इसका प्रयोग मिलता है 'नित–प्रति एकत ही रहत, बैस–नस–मन एक', रूपात्युक्ति ऊहात्मक हो गई है, हिसाब लगाकर तर्क द्वारा सौन्दर्य का चित्रण 'ऊहा' है। विरह में भी बिहारी की अत्युक्तियां ऊहात्मक हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने जापसी से तुलना करते हुए बिहारी की अत्युक्तियों को ऊहात्मक अतः प्रभावहीन सिद्ध किया है।

(8)

तंत्री–नाद, कवित–रस, सरस राग, रति–रंग।।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।।

शब्दार्थः– तंत्री = तारों की सहायता से बजने वाला वाद्य, वीणा, ताँत। नाद = शब्द, ध्वनि, आवाज। सरस = जो रस या जल से प्रकट हो। राग = किसी खास धुन में बैठाये हुए स्वर का ढाँया ।

व्याख्याः– विरोधाभास अलंकार के चमत्कार की सहायता से बिहारी ने इस दोहे में अपने युग की 'नागरता' को चित्रित किया है। इसका सम्बन्ध नायक–नायिका मात्र से नहीं है। भतृहरि के अनुसार जो मनुष्य साहित्य, संगीत तथा कला से विहीन है, वह बिना सींग और पूंछ का साक्षात पशु है।

साहित्य–संगीत–कला–विहीनः।
साक्षात् पशुः पुच्छ–विषाण–हीनः।।

बिहारी के युग में भी साहित्य तथा संगीत को संस्कृति का चिन्ह समझा जाता था, उनका महत्व स्थापत्य आदि स्थूल कलाओं से अधिक था और वे विलास में निमग्न हो चुके थे।

तन्त्री–नाद अर्थात् वीणा आदि का स्वर (यह 'वाघ संगीत' मात्र का प्रतिनिधि) काव्य का आस्वाद, सरग राग 'यह वाद्य से भिन्न गेय संगीत का प्रतिनिधि है, तथा रति–क्रीड़ा– इन चार में जो पूर्णतः (सब अंग) डूब गए उनका जीवन सफल हो गया– वे संसार में सार्थक जीवन बिता रहे हैं। इसके विपरीत जो इस चार प्रकार के व्यजनों से बचे हुए हैं, अलग है, अथवा जो इनको थोड़ा–सा ही यख सके हैं, वे संसार–सागर में डूबकर नष्ट हो गए।

कवित्तः– कवित्व अर्थात् कविता या काव्य। तुलसी ने भी लिखा है– ''निज कवित्त केहि लाग न नीका।'' पूर्वार्द्ध में सभी शब्द तत्सम हैं, 'कवित्त' का छोड़कर। उत्तरार्द्ध में विरोधाभास अलंकार तथा 'बूड़े' शब्द का चमत्कार है।

कवि ने 'साहित्य' के साथ–साथ दोनों प्रकार के संगीत को अलग–अलग रखा है, 'रति–रंग' को इनका सहयोगी माना है। ललित कला की श्रेष्ठता इस बात में है कि उसमें बाह्य उपकरणों का कम से कम उपयोग है। प्रस्तुत दोहे में इसी श्रेण्ठता–कम का निर्वाह है। तन्त्री–नाद में उपकरण अनिवार्य है। कवित्त–रस में स्थूल उपकरण तो नहीं परन्तु शब्द एवं अर्थ की अपेक्षा है। सरस–राग में केवल स्वर चाहिए और कुछ नहीं। युग की प्रवृत्ति के अनुसार यह मानना होगा कि रति–रंग इन सबका प्राण है, साहित्य एवं उभय प्रकार का संगीत स्त्रैण विलास में डूबे हुए थे।

औरंगजेब के शासन में भी अकबर से शाहजहां तक विकसित होने वाली यह प्रवृत्ति नष्ट नहीं हुई थी।

डॉ. त्रिगुणायत के अनुसार रसिक नायक मुग्धा नायिका के प्रति इस सिद्धान्तवाक्य को कहकर उसे यह बतलाना चाहता है कि उसे दूर–दूर से ही प्रेम नहीं करना चाहिए वह प्रेम करती है तो उसे प्रेम में डूबकर संयोग–सुख का भोग करना चाहिए। या तो मनुष्य इनसे अछूता रहे या इनमें पूरा डूब जाए, थोड़ा चखने से तृषा बढ़ती है और सन्तोष नहीं होता।

(9)

केसरि कै सरि क्यौ सकै, चंपक किवक अनूप।
गात–रूप–लखि जातु रि जातरूप कौ रूप।।

शब्दार्थः– सरि = झरना, निर्झर। अनूप = अद्वितीय, प्रतिभा। गात = शरीर, काया। जातु = कदाचित् कमी।

व्याख्याः– नायिका का रूप वर्णन बिहारी ने अत्यन्त नागरता अथवा शालीनता से किया है। वे स्थूल अथवा मांसल वर्णन को कलात्मक रुचि नहीं मानते। कटाक्ष, छवि, ओप का चित्रण कवि को प्रिय है। प्रस्तुत दोहे में रूप–वर्णन के अन्तर्गत नायिका के रूप रंग का चित्रण है नायिका के रंग की समानता केसर क्यों (कैसे) कर सकती है। उसके सामने (प्रसिद्ध उपमान) चंपक कितना सुन्दर रह पाता है? जहां तक स्वर्ग (=जातरूप) का सम्बन्ध है उसका रूप तो नायिका के शारीरिक सौन्दर्य को देखकर (साक्षात) छिप जाता है, रंग के लिए केसर, चंपक तथा स्वर्ण प्रसिद्ध उपमान हैं। यहां तीनों पराजित हो जाते हैं, उनका अनादर हो जाता है। अतः प्रतीप अलंकार का चमत्कार कवि का अभीष्ट है। 'केसरि कै सरि' में निरर्थक आवृत्ति के कारण यमक है। 'तरूप' की भी निरर्थक आवृत्ति में यमक है। 'जात' की आवृति में यमक तथा 'रूप' की आकृत्ति में अनुप्रास है।

'केसर' प्राकृतिक पदार्थ है, 'चंपक' पुष्प है, और 'जातरूप' धातु है। क्रमशः अधिक से अधिक अनादर चित्रित किया गया है। कह सकते हैं कि रंग तथा सुगन्ध के कारण केसर निकटतम है। फिर रंग तथा स्निग्धता के आधार पर चंपक को लिया जा सकता है, परन्तु रंग का साम्य होने पर भी कर्कश स्वर्ण तो कहीं टिकता ही नहीं।

नायिका–भेद में चार जातियां मानी गई हैं– पद्मनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। पद्मिनी नायिका का रंग चंपक–वर्ण होता है और उसके शरीर से पद्म–गंध आती है, इस दोहे में व्यंग्य से यह संकेत है कि नायिका पद्मिनी है।

कतिपय दोहों में ये तीनों उपमान बार–बार आए है।

रंच न लखिपति पहिरि यौं कंचन से तन, बाल।
कुंमिलानै जानी परै उर चंपक की माल।।
कंचन तन धनि बरन बर रह्यौ रंग मिलि रंग।
जानी जाती सुवास ही, के सिर लाई अंग।
डीठि न परत समान–दुति, कनकु कनक से गात।
भूषण कर करकस लगत, परसि पिछाने जात।।

(10)

दृग उरझट, टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति
परति गाँठि दुरजन–हियै, दई, नई यह रीति।।

शब्दार्थः– दृग = आँख, नयन।

कुटुम = कुटुंब। जुरत = जुड़ी, यानी मोटे अनाज जैसा बाजरा, ज्वार, रागी वगैरह। प्रीति = प्यार प्रेम, दुरपन = दुष्ट व्यक्ति।

व्याख्याः– 'कार्य और कारण अलग–अलग स्थानों पर होना असंगति अलंकार का चमत्कार है। बिहारी ने असामाजिक प्रेम का चित्रण इस चमत्कार के आधार पर किया है।

रस्सियों का उदाहरण लें तो हम देखते हैं कि यदि वे उलझ जाती हैं तो टूटती हैं, उनको जोड़ा जाता है, तो उनमें गांठि पड़ जाती है। उलझना, टूटना, जुड़ना और गांठि पड़ना केवल उन्हीं रस्सियों में होता है, परन्तु एक विशेष प्रकार की रस्सियाँ होती हैं जिनको 'दीठि बरत' कहते हैं–

डीठि–बरत बाँची अटन, चढि धावत न डरात।
इतहिं उतहिं चित दुहुन के, नट लौं आवत जात।।

वे उलझती हैं तो स्वयं नही टूटती, प्रत्युत नायक नायिका के अपने–अपने घरों से सम्बन्ध टूट जाते हैं। फिर जोड़ भी रस्सियों में नहीं पड़ता, प्रत्युत उन दोनों चतुर व्यक्तियों (नायक–नायिका) की प्रीति जुड़ जाती है। और गांठि पड़ती है दुर्जन (समाज में उस प्रीति की कटु आलोचना करने वाले) लोगों के हृदय में।

दृष्टि– वर्तों का व्यापार बड़ा विचित्र है, इसका लोक भिन्न है और इसके नियम भिन्न है। इस नवीन रीति को पुराने परम्परावादी जड वर्त के व्यापार के समान नहीं समझना चाहिए। यह उक्ति नायिका की सखी के प्रति अथवा स्वगत मानी जा सकती है। उसको ज्ञान नहीं था कि दृष्टि के उलझने का ऐसा परिणाम होता है।

स्व मूल्यांकन : ख – सही या गलत

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में आपने ओम प्रकाश द्वारा सम्पादित 'बिहारी सार्धशती' के प्रमुख पदों की व्याख्या का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. नायिका के रूप वर्णन–प्रसंग में बिहारी का मन नेत्रों के चित्रण में सबसे अधिक लगा है। ( )
2. नेत्र जो संकेत देते हैं। वे सर्वसामान्य के स्तर से अधिक परिष्कृत नहीं होते हैं। ( )
3. दूती ने नेत्रों के दो गुणों पर विशेष ध्यान दिया है– नुकीलापन (अनियारे) तथा चंचलता = भोलापन। ( )
4. कामदेव के पांच बाण हैं जिससे वह 'पंचशर' कहलाता है। ( )
5. बिहारी ने सीता के मुख से तुलना करने पर यह ठहराया कि 'अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।'( )
6. रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी से तुलना करते हुए बिहारी की अत्युक्तियों को ऊहात्मक अतः प्रभावहीन सिद्ध किया है। ( )
7. 'तंत्री–नाद, कवित–रस, सरस राग, रति–रंग, अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग' में विरोधाभास अलंकार है। ( )
8. नायिका–भेद में चार जातियां मानी गई हैं– पद्मनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। ( )
9. 'कार्य और कारण अलग–अलग स्थानों पर होना असंगति अलंकार का चमत्कार है। ( )

4.4 उत्तर कुंजी

स्व–मूल्यांकन रू (क) रिक्त स्थान

1. 'राधा–नागरी' 2. 'जगत' 3. 'नागरि नारि' 4. राधा 5. भ्रमर 6. आक 7. सखी 8. लोक

स्व–मूल्यांकन रू (ख) सही या गलत

1. सही 2. गलत 3. सही 4. सही 5. गलत 6. गलत 7. सही 8. सही 9. सही

4.5 पठनीय पुस्तकें

1. सं. ओम प्रकाश, बिहारी सार्धशती राजपाल एडं संस, नई दिल्ली, 1963

'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों की व्याख्या

रूपरेखा

5.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
5.2 प्रस्तावना
5.3 विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों की व्याख्या
• स्व–मूल्यांकन
(क) रिक्त स्थान
(ख) सही या गलत
5.4 उत्तर कुंजी
5.5 पठनीय पुस्तकें

5.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों के भावार्थ से अवगत करवाना है।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन करने के उपरांत आप विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों के भावार्थ को समझ सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों की व्याख्या की व्याख्या की गयी है।

5.3 विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों की व्याख्या

(1)

लाजनि लपेटि चितवनि भेद–भाय भरी
लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो भाल बदन, रुधिर,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानी मैं।
दसन दमक फैलि हमें मोती माल होति,
पिय सो लड़कि प्रेम पगी बतरानि में।
आनँद की निधि जगमगति छवीली बाल,
अंगनि अनंग–रंग ढुरि मुरि जानि मैं।।2।।

शब्दार्थः– लाजनि लपेटी = लज्जा से लिपटी हुई। चितवनि = दृष्टि। भेदभाव = रहस्यमय भाव। लगति = सुशोवित। लोल–चख = चंचल नेत्रं। तिरछानि = वंकिम कटाक्ष। छवि = सौंन्दर्य। सदन = घर। निचुरत = विचुरता है। हियें = हृदय। मोती–माल = मोतियों की माला। लड़कि = ललक सहित। प्रेम–पगी = प्रेम से सजी हुई। वतरानि = बातें। निधि = कोष। बाल = प्रेयसी, नायिका। अंगनि = अंगों में। अवंग–रंग = काम में रंग से युक्त। ढुरि = मिलकर। मुटि जानि मैं = सुन जाने से।

प्रसंगः– प्रस्तुत कवित्त में नायिका के रूप–सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों की व्यक्तिगत मान्यताओं के आधार पर इसे हमें नायक का कथ्य मान सकते हैं।

व्याख्याः– लज्जाभाव से लिपटी हुई, रहस्यमय भावों से भरी हुई चंचल नेत्रों के वंकिम कटाक्ष से युक्त, नायिका अत्यन्त रमणीय तथा सुशोभित प्रतीत होती है अर्थात् नायिका में लज्या भाव के साथ–साथ नेत्रों में यौवनजन्य शरारत भी है जिसके कारण उसका सौंदर्य निखर उठता है। उसका मुख तथा भाल और वर्ण का है, वह साक्षात् सौन्दर्य का घर है। उसकी सुकोमल मुसकान से तो रस ही निचुड़ पड़ता है। अर्थात् जब वह मृदु–मृदु मुसकराती है तो उसका माद्युर्य एवं सौन्दर्य अतिरंजित हो उठता है। प्रिय से बातें करती हुई जब वह मुसकराती है तब उसके दाँतों की चमक, उसके हृदय पर पड़कर फैल जाती है और ऐसा लगता है मानो उसने हृदय पर मोतियों की माला का रूप धारण कर लिया हो। इस प्रकार के रूप–सौन्दर्य से युक्त इस छबीली बाला (नायिका) के मुड़ते ही कामजन्य छवि, उस मुड़ने की क्रिया से मिल कर छिटकती है तब वह आनन्द के कोश के समान जगमगा उठती है।

विशेषः–

1. घनानन्द मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। यहाँ 'शिख–नख' पद्धति की कसौटी पर नायिका का 'शिख–नख' वर्णन मुखर हो गया है। नायिका का सौन्दर्य सजीव तथा गतिशील है। विविध भगिकाएँ गतिशील बिम्ब के सौन्दर्य–बोध का वियोग करने में पूर्णतः सक्षम है।
2. 'दसन–दमन फैलि छिपे मोती–माल होति' में कवि ने अमूर्त के लिए मूर्त का प्रयोग करके सुन्दर अप्रस्तुत–नियोजन किया है। यह प्रवृत्ति छायावाद में जाकर खूब पनपी है।
3. समूचे छन्द में अनुप्रास अलंकार की छटा अवलोकनीय है। 'दसन–दमक फैलि छिपे मोटी चाल होति' में गम्योत्प्रेक्षा है।
4. यह 'मनहर' कवित है। इसमें कुल 32 मात्राएँ हैं। 23, 25 पर यति होती है तथा अन्तिम वर्णन (5) होता हें

(2)

झलकै अति सुन्दर आवन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हँसि बोलन में छवि–फूलन की बरघा, उर–ऊपर जाति है है।
लट लाल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावनि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति का, परिहे मनौ रूप अवै घर च्वै।।2।।

शब्दार्थः– झलके = झलकता है। आवन = मुख। छके = यौवन की मस्ती में मस्त। राजत = सुशोभित। कम्ननि छवै = कर्ण पर्यन्त फैलकर, छूकर। जाति है = हो जाती है। लट लोल = चंचल लटें। कलोल करै = हिलती है, कीड़ा करती है। कलकंठ = सुन्दर ग्रीवा पर। जलजावलि द्वै = मोतियों की द्विलड़ी माला। दुति–धुति =शोभा। परिहै = पड़ेगा। रूप = सुषमा। घर च्वै = पृथ्वी पर चू पड़ेगा।

प्रसंगः– प्रस्तुत छन्द में भी नायिका के रूप–सौन्दर्य का ही चित्रण है। इसे भी नायक का कथन माना जा सकता है।

व्याख्याः– नायिका का अत्यन्त सुन्दर गौरवर्ण बदन रूप की छवि से झिलमिला रहा है। यौवन की मस्त कानों को छूते हुए विशाल तृप्त नेत्र सुशोभित हैं, जब नायिका हँस–हँस कुछ बोलती है। तब हृदय के ऊपर छवि के फूलों की मानो वर्षा ही हो जाती है अर्थात् उनकी हँसी क्या है लगता है फूलों की वर्षा है। हँसने तथा बोलने से उसकी दृष्टि ढोलायमान हो उठती है इसलिए उसके कपोलों पर चंचल लटें हिलती हैं, कीड़ा करती है। उसकी सुन्दर ग्रीवा में मोतियों की द्विलड़ी माला विराजित है। उसके अंग अंग से रूप–सौन्दर्य की लहरियाँ उठ रही हैं, ऐसा लगता है मानो रूप–सौन्दर्य अभी–अभी पृथ्वी पर टपक पड़ेगा। भाव यह है कि जैसे किसी पात्र में लबालव द्रव्य भर दिया जाए तो उस पात्र के जरा–सा हिलते ही द्रव्य के धरती पर चू पड़ने का भप बना रहता है, ठीक इसी प्रकार इस नायिका के शरीर स्त्री मात्र में सौन्दर्य लबालब भरा पड़ा है उसमें नित नूतन भाव–लहरियाँ उठ रही हैं। इसलिए सम्भावना है कि यदि यह लहरें और ऊँची उठी तो यह सौन्दर्य शरीर में न समझकर, निश्चय ही भूमि पर चू पड़ेगा।

विशेषः–

1. घनानंद सौंदर्य के पारखी कवि थे। सौन्दर्य की अमूर्त तरंगों को उत्पन्न बारीक रेखाओं में चित्रित कर देने की क्षमता धनआनंद की काव्य–कला में ही थी। सौन्दर्य के ऐसे सजीव शब्दचित्र विरल ही मिलेगी।
2. यहाँ की रूपचित्रण में 'नख–शिख' परम्परा का सुण्ठु पालन सहज ही हो गया है।
3. 'लट लोल कपोल कलोल' तथा 'अंग–अंग तरंग उठै दुति की' में शब्दों का उच्चारण, बालों के हिलने–डुलने तथा लहरों के उठने–गिरने की क्रिया का सहज द्योतन कर रहा है।
4. समूचे छन्द में 'अनुप्रास' अलंकार का अत्यन्त सजीव प्रयोग हुआ है। वर्ण–संगति के कारण संजीतात्मक सौन्दर्य–बोध भनक उठा है, जिससे धनानंद के सांगीतिक व्यक्तित्व का प्रकाश पड़ता है। द्वितीय पंक्ति में 'गम्पोत्प्रेक्षा' अलंकार है।
5. छन्द की दृष्टि से यह 'सुमुखी' सवैया है। इसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं।

तुलनीयः–

1. 'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया (शिशुपाल बध, नरक)
2. अंग प्रः यंगकानां यः सन्निवेशों यशोचितम।

   सुश्लिण्ट संधिभेदः स्पात तत् सौन्दर्यमुदोर्यते।। (रसार्णव सुधाकर, 2/2=2)
3. ज्यों–ज्यों निहारिए तेरे है नैननि, त्यों–त्यों खरी निकटै–सी निकाई। (मतिरामकृत रसराज, 6)
4. 'राबरे रूप की रीति अनूप, नयो–नयो लागत ज्यौ–ज्यौ निहारियै। घनानंद– कवित, 24)
5. जोग जुगति सिखए सबै, मनो महामुनि मैन।

   चाहत पिय अद्वैलता, कानन सेवल नैन।। (बिहारी)
6. 'कानन चारी नैन–मृग, नागर नरन शिकारं' (बिहारी)

(3)

छवि को सदन, मोदमंडित बदन–चंद,
तृष्टि चखनि लाल, कब धौ दिखाय हौ।
चटकीलो करें मटकीली भांति सो ही
मुरली अधर धरे लटकल आप हौ।
लोचन ढुराय कछू मृदु मुसक्याय, नेह
भीनी बतिपानी लड़काय बतराज हौ।
बिरह जटत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि, आनंद को धन बरसाय हों।।[6]

शब्दार्थः– सदज = घर। मोदमंडित = प्रफुल्लता से युक्त। तृषित = प्यासी। चखनि = आँखें। चटकीलो = भड़क बाला। भेख = वेश। मटकीली = चटक–मटक के ढंग से। धरे = रखकर। लटकल = बल खाते हुए, प्रेम की मादकता में झुमते हुए। ढुराय = डुलायमान करके। नेह–भीनी = प्रेम से सनी हुई। बतियानि = बातें। लड़काय = ललक पैदा करके बतरापही = बातें करोगे।

प्रसंगः– नायिका ने पहले नायक को देख रखा है। वह उसके प्रेम में अनुरक्त है। पूर्वराग से प्रेरित वह कृष्ण को विविध वेशों में देखना चाहती है।

व्याख्याः– हे सौन्दर्य के सहन श्रीकृष्ण! अपार प्रफुल्लता से युक्त अपने मुख रूपी चन्द्रमा को मेरे इन प्यासे नेत्रों को आकर कब दिखाओगे? साथ ही भड़कीला वेश करके चटक–मटक के ढंग से विभूषित होकर मुरली को अधर पर रखकर प्रेम की मादकता में घूमते हुए, बल खाते हुए, कब आओगे? फिर आँखें मटकाकर, कुछ मधुर–मधुर मुस्कराकर, प्रेम से सनी हुई बातों से मेरे हृदय में ललक पैदा करके कब बातें करोगे? अभिप्रायः यह है कि नायिका मात्र नायक के दर्शन–लाभ से ही संतुष्ट नहीं होना चाहती। वह 'बतरस' लालची है। इतना ही नहीं, वह आगे कहती है हे प्राणप्रिय! कृपा के सागर!! मेरे हृदय को विरहाग्नि में जलता हुआ जानवर कल, आनन्द के बादलों से जब की दृष्टि करके उसे शान्त करोगे? भाव यह है कि नायिका विरहाग्नि से पीड़ित है। इस अग्नि का शमन मात्र 'संयोग' से ही संभव है अतः वह मिलन की अभिलाषा कर रही है।

विशेषः–

1. यहाँ कवि ने नायक के अप्रतिम सौन्दर्य की व्यंजना की है।
2. यहाँ प्रेमानुरकता नायिका के हृदय की प्रेममयी दशा का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक तथा सूक्ष्म चित्रण है।
3. यह छन्द वियोग शृंगार–प्रधान है, वियोग का एक प्रकार है– पुर्वानुराग

   जो प्रथमहिं देखे सुने, बढ़ै प्रेम की लाग।

   बिन मिलाप जो विकलता, सो पूर्व अनुराग।। (रसराज– उगर)

   उक्त कसौटी पर यह छन्द सटीक उतरता है।
4. यहाँ विप्रलंभ शृंगार की 'स्मृति' तथा 'अभिलाषा' दशा का सुन्दर चित्रण है।
5. समूचे छंद से 'अनुप्रास' तथा 'स्मरण' अलंकार है।

6. तुलनीय

(1) सीस मुकुट कटि काछिनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल।। (बिहारी)

(2) बलरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौह करे भौहनि हँस, दैन कहें नटि जाय।। (बिहारी)

(4)

वहै मुसक्यानि, वहै मृयु वतरानि वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है
वहै गति लैन, औ बजावनि ललित बैन,
वहै हंसि दैन, हिपरा ते न टरति हैं,
वहै चतुराई सो चिताई चाहिवे की छवि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है,
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजानजू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है।।5।।

शब्दार्थः– वहै = वही। बतरानि = बातें। लड़कीली = ललक वाली। बानि = आदत। अरति = अड़ती। गति लैन = हाव–भावमय होकर मस्ती से चलना। बजावनि = बजाना। ललित = सुन्दर। बैन = बाँसुरी। हिपरा = हृदय। टरति = टलती, चिताई = जगाई हुई। चाहिबे = देखने। छैललाई = छैलापन, रंगीलापन। छिनक = क्षणभर के लिए। बिसरति = भुलती। सुधि = स्मृति।

प्रसंगः– प्रेमानुरक्ता नायिका वियोग में तप रही है, उसने कभी प्रिय को देख रखा है, उस समय का प्रिय–रूप उसके मानव में है, वह उन्हीं क्षणों की मुद्राओं को अपनी स्मृति में बनाए हुए है।

व्याख्याः– आनन्द के निधान, प्राणप्रिय सुजान (कृष्ण) का वह मुस्कराना, मृदु–मृदु बातें करना तथा उनकी ललकमयी आदत, हृदय में आकर अड़ती रहती है। उनका हाव–भावमय होकर मस्ती से चलना और सुन्दर मधुर स्वर में बाँसुरी बजाना, फिर हँस देना तो हृदय से टाले टालता नहीं हे, भाव यह है कि उनके रूप के वे स्मृति–चिन्ह स्थायी रूप से मानस में अंकित हो गए हैं। इसी प्रकार चतुरतापूर्वक जगाई हुई देखने की छवि तथा उनका छवीला और छैलापन क्षणभर के लिए भी भूलता नहीं है। इस प्रकार प्रियतम सुजान को (कृष्ण की संयोगकालीन स्मृतियाँ सब प्रकार से बेसुध करती रहती है अर्थात् प्रियतम स्मृति–पटल से हटते नहीं हैं।

विशेषः–

1. यह छंद भी विप्रलंभ शृंगार के पूर्वानुराग का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ विप्रलभ की 'स्मृति' दशा का चित्रण है।
2. प्रेमतत्व की दृष्टि से यहाँ 'तन्मयता' का चित्रण है।
3. समूचे छंद में 'अनुप्रास' तथा 'स्मरण' अलंकार है।
4. तुलनीय

1. 'सुधि बज बासिनी दिवैया सुख–रासिनि की,

   ऊधौ तिन हमकौ बुलावन कौं आवती।। (उद्धवशतक, पृ. 5)

2. 'ऊधौ ब्रज वास के विसासनि कौ ध्यान ध्स्यो,

   निसि दिन काँटे लौ करेजै कसकत है। (उद्धवशतक, पृ. 6)

3. 'ऊधौ सुख–सम्पति–समाज वज–मंग्ल के,

   भूलै हूँ न भूलैं भूलै हमकौ भुलाइवौ।। (उद्धवशतक पृ. 25)

5. इस छन्द में मूलतः नायिका का वियोग प्रधान है, अतः नायक के प्रति कथन स्पष्ट ही है। किंतु 'सुजान' शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण और 'आनंदनिधान' ठहरता है। इस प्रकार वस्तु–व्यंजना की दृष्टि से जहाँ यह एक ओर लौकिक अनुराग को छूता है वहीं दूसरी ओर अलौकिक अनुराग का भी स्पर्श किए बिना नहीं रहता। घनानंद के अधिकांश छन्दों में यह प्रकृति मिलती है।

(5)

जांसो प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसे करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा विरदई, दई कैसे कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिवे को रसना कै होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन दिन चौन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि घी लगाइयै।।2।।

शब्दार्थः– जासों = जिससे। ताहि = उसे। निठुराई = निष्ठुरता। विपट = अत्यधिक। जिय = हृदय। जरनि = जलन। जताइयै = बतलायें। दई = हे दैव। जिवाऊँ = जिआऊँ। बेदन = पीड़ा। बढ़वारि = बाढ़, अधिकता। दुराइयै = छिपायें। बखान = वर्णन। रसना = जिहा। कै = अगर कहीं पर। ऐपै = इतने पर। कहूँ = कहीं। रैन–दिन = रात–दिन। लेस = लेशमात्र। भाग = भाग्या काहि थौं = न जाने किरो।

प्रसंगः– इस छन्द में कवि ने विषम प्रेम का चित्रण किया है। विषम प्रेम घनानन्द की आत्माभिव्यक्ति है। प्रेमी, प्रेम की अनन्य आस्था लिये है और प्रिय निपट निष्ठुर है। वह प्रेमी को उपेक्षित दृष्टि से देखता है। ऐसे प्रिय के प्रति ही यह छन्द है।

व्याख्याः– जिस प्राणप्रिय से मैं नेह करता हूँ उसे निष्ठुरता से अत्यधिक प्रेम है अतः मैं अपने हृदय की प्रेमजन्म जलन को आखिर उसे बताऊँ तो कैसे बतलाऊँ। हे दैव! वह तो बहुत बड़ा निर्दयी है अर्थात् उसने निर्दयता की सामान्य सीमा का भी उल्लंघन कर दिया है। अस्तु! मैं अपने जीव को कैसे सुरक्षित रखूँ। वेदना की निवृत्ति निरन्तर वर्धमान है। यदि इसे कोई गुप्त रखने का भी आदेश दे तो भी इसे कैसे छिपाकर रखूँ! कारण, प्रेम का वेदना–भाव तो छिपाये छिपाता ही नहीं। यह तो मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस वेदना के स्वरूप को मैं कहकर भी बतला नहीं सकता हूँ। कारण, वेदना–भाव की मात्रा इतनी अधिक है कि उसका यथावत् वर्णन करने के लिए जिछा भी असमर्थ है अर्थात् उसमे वह शक्ति ही नहीं रही है कि वेदना–भाव का वर्णन कर सके। इस वेदना को शांत करने का एक ही उपादान 'प्रिय–दर्शन'

है। पर इतना होने पर भी मुझे कहीं प्रिय के दर्शन नहीं होतें परिणामतः दिन–राज में लेशमात्र को भी तो चैन नहीं मिलता। अंत में प्रेमी अपनी ही हार मानकर कहता है इसमें यदि किसी को दोष भी दूँ तो किसे दूँ? अपने ही भाग्य का दोष है। मेरे भाग्य में यह वेदना–भाव ही है तो फिर किसी को दोष देना व्यर्थ है।

विशेषः–

1. यहाँ कवि ने प्रेम की विषमता का स्वरूप चित्रित किया है। यह प्रेम एकांगी है। एकांगी प्रेम रीति–मुक्त काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्ति है और इस प्रवृत्ति को पुष्ट करने वाले तथ्य धनानंद के काव्य में सर्वाधिक उपलब्ध है।
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी–साहित्य का इतिहास' में लिखा है ''विरोध प्रदर्शन की प्रवृत्ति घनआनन्द की सबसे प्रबल विशेषता है।'' यह उक्ति इस छंद पर उतनी ही सटीक बैठती है जितनी पं. विश्वानाथप्रसाद मिश्र की ''विरोधाभास के अधिक प्रयोग से धनआनन्द की सारी रचना भरी है।''
3. यहाँ प्रेमी के हृदय की विवशता तथा उसकी दैन्यता का भी मार्मिक उद्‌घाटन है।
4. तृतीय चरण में 'यमक' तथा समूचे पद में 'अनुप्रास' अलंकार है।
5. अन्तिम चरण में मुहावरे का सुन्दर प्रयोग है।

6. तुलनीयः–

1) बेदन की बढ़वारि कहाँ लौ दुराइयै के भाव से निम्नलिखित साखी तुलनीय है–

प्रेम छिपाये या छिपै, जा घट परगट होय।

जो पै मुख बोलत नहीं, नैन देत है रोय। (कबीर)

स्व मूल्यांकनः क – रिक्त स्थान भरो

प्रिय विद्यार्थियों ! आगे बढ़ने से पहले अपने अध्ययन को थोड़ा विश्राम दे और निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर इस प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा।

नायिका में लज्या भाव के साथ–साथ नेत्रों में.....शरारत भी है।

.....मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं।

पूर्वराग से प्रेरित नायिका.....को विविध वेशों में देखना चाहती है।

नायिका विरहाग्नि से पीड़ित है। इस अग्नि का शमन मात्र ..... से ही संभव है।

'सुजान' शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण और ..... ठहरता है।

विषम प्रेम घनानन्द की .....है।

वेदना की निवृत्ति निरन्तर .....है।

वेदना को शांत करने का एक ही उपादान ..... है।

भार ते साँझ लौ कानन ओर निहारति बाबरी नेकु न हारति।
साँझ ले भोर लौ तारनि ताकिवो तारनि सो इकतार न टारति।
जौ कहूँ भाव दीठि परै धनउ नँद आँसुनि और गारति।
मोहन–सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।।3।।

शब्दार्थः– भोर = प्रातः काल। साँझ = संध्या, लौ = तक। कानन = वन। निहारति = देखती। बाबरी = पगलो। तारनि = तारों की। ताकिनो = देखना। तारनि सो = आँखों की पुतलियों से। इकतार = निरन्तर। टारति = छोड़ती। भावतो = प्रिय। दीठि–दृष्टि से। आँसुनि = आँसुओं से। औसर = अवसर। गारति = खो देती है। जोहन = देखने। आरति = आर्ति, लालसा।

प्रसंगः– इस छंद में 'प्रोषितपतिका' नायिका की अनुरपाजन्य पीड़ा का चित्रण है। यह किसी सखी का सखी से कथन है।

व्याख्याः– प्रिय के अनुराग में रमी हुई नायिका प्रातःकाल से सायंकाल पर्यन्त बन को उसी दिशा में देखती रहती है। पगली क्षणभर के लिए भी तो देखती–देखती नहीं हारती। तात्पर्य यह है कि जिस दिशा में प्रिय ने विदेश के लिए गमन किया था वह सब प्रतिक्षण उसी बार पर पाँवड़े बिछाए रखती है और फिर सांयकाल से लेकर उषाकाल तक आँखों की पुतलियों से तारों को लगातार देखना नहीं छोड़ती। वह तारों पर से आँखों को हटाती ही नहीं, बर–बर करती रहती है। भाव यह है कि रात आँखों में ही व्यतीत कर देती है और यदि कहीं सौभाग्य से आनंद के घनस्वरूप प्रियतम दृष्टिगत होते भी हैं तो आँखें उन्हें देखने में स्वयं ही बाधा बन जाती हैं, वे आंसुओं में ही उस अवसर विशेष से हाथ धो बैठती हैं अर्थात् उस समय हृदय की पीड़ा आँसू बनकर बहने लगती है, नेत्र–ज्योति पर आँसुओं का पर्दा पड़ जाता है और वह अवसर बीत जाता है। मिलनावसर मिलता तो है पर फिर भी संयोग नहीं होता। इस प्रकार नायिका की आँखों के हृदय में मोहन सोहन अर्थात् श्रीकृष्ण के रूप को देखने की लालसा बराबर बनी रहती है।

विशेषः

1. इस पद में विप्रलंभ शृंगार का सुन्दर वर्णन है।
2. 'प्रोषितपतिका' की कसौटी पर यह पद खड़ा उतरता है लक्षण हे–

   जाको पिय परदेस मैं, विरह विकल तिय होय।

   प्रोषितपतिका नायका, ताहि कहत सब कोय। (रसराज 111)

   'कानन' का अर्थ 'कणांवलम्बित नेत्र' की अभीप्सित है। 'बावरी' शहर में सखी के अनन्य सख्यभाव तथा प्रेम की व्यंजना है। 'घनआनंद' से हमें कवि घनआनंद, 'आँसू' तथा 'बादल' अर्थ भी अभिप्रेत है।
3. तुलनीयः–

   1) 'इन दुखिया अखियान को, सुत्र सिरज्पोई नाहिं।

   देखत बने न देखत, बिन देखे अकुलाहिं।। (बिहारी)

   2) 'मनमोहन ते बिछुरी जबसौ तन आंसन सो सदा धोवती है।' (प्रेममाधुरी, 205–भारतेन्दु)

   3) हम ही अपनी सदा जानै सखी निसिसोवती है किथौ रोवती है। (वही, 226)

4) अलंकार– द्वितीय पंक्ति में 'यमक' है, 'कानन' तथा 'घनआनंद' शब्द श्लिष्ट है, मोहन–सोहन जोहन में वृत्यनुप्रास है।

'आँखिन के उर' लाक्षणिक प्रयोग है। यहाँ आँखों का मानवीकरण कर दिया गया है। आँखें कोई प्राणी नहीं है जो उनके हृदय हो। घनआनंद को भी ऐसा अभिप्रेत न था। 'आँखों की बर–आकृति की कल्पना की जाती है। इसीलिए उसके डर की बात कवि ने कही है। छायावाद के मानवीकरण के सूक्ष्म प्रयोगों के अंकुर इस छंद से दृष्टव्य है।

(7)

भए अति निष्ठुर, मिटाय पहियानि डारी
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ नियट निरदई, गई भूमि सुधि,
हमैं सूल–सेलनि सो क्यों हूँ न भुलाय हे,
मीठे–मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहौ घौं कौन–पाप है
सुनी है के नाहीं, यह प्रगट कहावति जू।
काहू कलपा है सु कैसे कल पाय है।।4।।

शब्दार्थः– निठुर = निष्ठुर। डारी = डाली। जक–रट। निपट = अत्यन्त। सूल – सेलनि = प्रेंमजन्य पीड़ा की टीस, कसक। जारत = जलाते हो। कहौ धौं = कहो तो सही। कहावति = कहावत। कलपाय है, पीड़ा पहुँचाएगा कष्ट देगा। सु = वह कलः सुख, चैन।

प्रसंगः– यह तिरहिणी प्रेमिका का निष्ठुर प्रिय के प्रति कथन है, यहाँ तक (संयोग) तथा अब (वियोग) की प्रेमजन्य विविध दशाओं का उल्लेख करके मीठा–सा उपालंभ प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्याः– आप तो बहुत अधिक निष्ठुर हो गये हो। यहाँ तक कि आपने तो, पिछली सारी पहचान ही मिटा डाली। भाव यह है कि पूर्व परिचय को एकदम भुला ही दिया। आपके ऐसे व्यवहार से मुझे बहुत दुःख हुआ है। इस दुःख के कारण प्रतिपल हाय–हाय की रट लगी रहती है। दुखातिरेक में व्यक्ति हाय–हाय रूप में कराहता है जो दुख की अतिरंजना का द्योतक है। यहाँ भी दुख की ऐसी ही अतिशयता अभीष्ट है। आप तो अत्यन्त निर्दयी हैं, आपको हमारी सुध ही विस्मृत हो गई। (मानो आपकी स्मरण–शक्ति हो रही है) परन्तु हमें तो वियोग की पीड़ा की टीस किसी भी प्रकार विस्मृत नहीं होती। (कसक हृदय को बराबर कचोटती रहती है। अतः कसक की दंशता से बार–बार मानस में उभर आते हो) तब संयोग के विशिष्ट क्षणों में तो मीठी–मीठी (ललक–भरी) बातें करके मुझे ठग लिया था। (हृदय को जीत लिया था) और अब मुझसे निपट दूर रहकर उसी हृदय को विरहाग्नि से दग्ध कर रहे हो। भला बाताअे तो सही–यह कहाँ का न्याय है। आपने यह ख्याति–प्राप्त कहावत सुनी है या नहीं कि जो किसी को तरसाता है उसे भी केसे चैन मिल सकता है? अर्थात् जो किसी को अकारण कष्ट देता है वह उसका फल अवश्य पाता है, ऐसा लोक–प्रचलित है। लगता है आपके सुनने में यह कहावत आई ही नहीं और यदि आई भी है तो आपने उसे सुनकर भी अनसुना कर दिया है।

विशेषः–

1. इस छन्द में घनानंद की 'विषम प्रेम व्यंजना' दृष्टव्य है जो कवि की प्रमुख विशेषता है। मूलतः यहाँ विप्रलंभ श्रृंगार का वर्णन है किंतु संयोग एवं वियोग के अवसरों की अच्छी तुलना कर दी गई है। लगता है प्रेमिका

के सामने प्रेमी दोषी रूप में मौन खड़ा है और वह उसे अपनी व्यथा–कथा सुनाती ही चली जा रही है। विशेषतः अन्तिम चरणों में ऐसा ही व्यंजित है।

2. 'कलपाय हे' में यमक, ''हाय–हाय' में वीप्सा तथा 'लोकोक्ति' का साभिप्राय करने से छेकोक्ति अलंकारों की काव्य–छटा दर्शनीय है।

(8)

हीन भएँ जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समाने।
नीर–सनेही को लाय कलंक निरास है कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।।

शब्दार्थः– हीन भएँ जल = पानी से अलग। मीन = मछली। कहा =क्या। मो = मेरी। अकुलानि = वेदना। समानै = प्रमानता करेगी। सनेही = प्रेमी। लाय = लगाकर। निरास = निराश। प्रानै = प्राण। पानि = हाथों में। प्रमानै = प्रमाणित करता है। या = इस। जु = जो। जीव = प्राण, जी। जीवनि = जिलाने वाली। जान = सुजान, प्रेयसी।

प्रसंगः– काव्य– रुढ़ियों में कवियों ने मानव–प्रेम की तुलना मीन तथा जल के प्रेम–सम्बन्ध से की है। इस दृष्टान्त को घनआनन्द ने उपयुक्त नहीं पाया। घनआनन्द का दृढ़ मत है कि मानव–प्रेम मीन के प्रेम से कहीं अधिक गूढ़ एवं विशिष्ट है। घनआनन्द ने इसी बात को इस पद में सिद्ध किया है।

व्याख्याः– मीन का जीवन जल के अधीन है। जल से बिछुड़ा हुआ मीन मेरे मन की व्याकुलता की क्या कुछ समानता करेगा? अर्थात् जो व्याकुलता जल से बिछुड़कर मीन अनुभव करता है, मेरे मन की व्याकुलता उससे कहीं बढ़कर है। साथ ही मीन तो अपने प्रिय जल से जब कोई आशा शेष नहीं रखता तो निराश होकर कायरापूर्वक अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। इस प्रकार अपने प्राण त्यागकर वह अपने प्रिय को कलंकित करता है। भाव यह है कि कवि अपने प्रिय की वियोग–वेदना से निराश होकर प्राण त्यागने का प्रयास ठीक नहीं सकझता, वह विरहाग्नि में जलकर खरा कुन्दन बनता है। वह जानता है कि मीन का प्रिय तो प्रकृति से जड़ है। वह प्रेम की रीति को क्या जाने? मीन तो अपने जड़ प्रिय जल के हाथों में पड़ने का ही प्रमाण देता है। क्योंकि जल की जड़ता मीन के मर्म को समझ नहीं पाती फलतः मीन प्राण त्याग देता है। मेरी प्रिय जल के समान जड़ नहीं है वह सचेतन है, जीव को जिलाने वाला है। घनआनन्द कहते हैं इसलिए मेरे इस मन की जो दशा है उसके मर्म की तो जी को जिलाने वाली सुजान ही जानती है।

विशेषः–

1. मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की बेश्या सुजान घनानन्द की प्रेयसी थी। मूलतः वह छन्द कवि की आत्माभिव्यक्ति है। यहाँ कवि ने वक्रोक्ति का आश्रय लेकर सुजान की निष्ठुरता की ओर भी व्यंग्य किया और साथ ही उसके हृदय की मसृणता का संकेत भी अंतिम पंक्ति में कर दिया है।
2. रीति–बद्ध काव्यधारा के कवि और यहाँ तक कि भक्ति–काल के सूर प्रभृति कवि भी 'बिहुरनि मीन औ मिलन पतंगे की' इन दो अप्रस्ततों से रसिकों की तुलना करते थे। लेकिन कवि ने स्वयं प्रेम के पथ पर आरुढ़ होकर उसके वास्तविक रहस्य को जाना तथा परम्परागत रुढ़ियों की खंडना उक्त पद में डंके की चोट पर कर दी।

यह प्रवृत्ति घनआनन्द को 'रीति–बद्ध' अथवा 'रीति सिद्ध' कवियों की श्रेणी से अलग कर देने में पूर्णरुपेण सफल रही है।

3. समूचे पद में 'वक्रोक्ति' तथा 'अनुप्रास' का सौन्दर्य है। प्रथम पंक्ति में 'व्यतिरेक' अलंकार का सोष्ठव स्पष्ट है।

4. छन्द, 'मदगयंद सवैया' है।

तुलनीय –

नीर–न्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हूँ ते
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै
हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे,
चातिक विचारे से सो न चूकनि परेखियै।

(9)

क्यौ हँसि हेरि हरयौ हियरा, अरु क्यौं हितकै चित चाह बढ़ाई।
काहे को बोलि सुधासने बैननि चौननि मैन–विरौन चढ़ाई।।
सो सुधि को हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीन सुजान अनीत की पाटी। इते पै न जानियै कौनै पढ़ाई।।22।।

शब्दार्थः– हेरि = देखकर। हरयौ = हर लिया। हियरा = हृदय। हितकै = प्रेम से। चित = मन। चाह = लालसा। सुधासने = अमृत के माधुर्य से सिक्त। बैननि = बवन। चौननि = आनन्द। मैन = काम। निसैन = सीढ़ी। सुधि = याद करके। सालति = कसकती है। क्यौं हूँ = किसी भी प्रकार। कढ़ै न = निकलती नहीं। कढ़ाई = निकलने पर। मीत = मित्र। अनीत = अनीति। पाटी = पाठ। इते पै = इतने पर भी। न जानियै = जान पड़ता ही नहीं। कौनै = किसने।

प्रसंगः– यह प्रेमी का प्रिय के प्रति आलंभमय कथन है। इसमें पूर्वानुराग का चित्रण है।

व्याख्याः– हे प्रिय सुजान। आपने पहले संयोगावस्था में हँसते हुए (विशेष मुद्रा में) देखकर मेरे हृदय को क्यों चुरा लिया था? और आखिर किसलिए प्रेम की उत्कंठा को बढ़ाया था? अर्थात् जब आपने मुझे हँसी–भरी नजर से देखा था तब मेरे हृदय में प्रेम के अंकुर फूटने लगे थे तथा प्रेम की लालसा बढ़ गई थी। यदि आपको नेह का नाता तोड़ना ही था तो किसलिए अमृत के मधुर्य से सिक्त वचन बोल–बोलकर आनन्दपूर्वक काम–भाव की सीढ़ियों पर चढ़ाया था? अर्थात मेरे हृदय में काम की उत्पति हुई जिससे कामनाओं का अतिरेक हो गया था। इसलिए संयोगावस्था की ये सब स्मृतियाँ मेरे हृदय में प्रविष्ट करके, मुझे पीड़ा पहुँचाती है। हे आनन्द के धन! यह कसक निकालने पर भी निकलती क्यों नहीं है? भाव यह है कि पीड़ा तो हृदय में घर कर गई है इससे पीड़ा छुड़वाने के सारे प्रयत्न असफल रहे हैं। इतने पर भी मेरी समझ में एक बात नहीं आती। वह यह कि कृपया यह तो बताइये आपको यह अनीति का अध्याय आखिर पढ़ाया किसने है? भाव यह है कि आप तो सुजान अर्थात् सब बातों को जानने वाले हैं। फिर भी वह चतुर चितेरा आपको कौन मिला जो अन्याय करने का अध्याय पढ़ा गया और आप उसके चक्र में आ गये।

विशेषः–

1. यहाँ विप्रलभ की 'स्मरण' दशा का चित्रण तथा निष्ठुर प्रिय के प्रति स्वच्छ उपालंभ है।

2. ब्रजनाथ के कथन– 'भावना भेद स्वरूप को ठामै' में मनाविज्ञान का संकेत है। इस प्रकार पर उक्त छन्द में तीन व्यक्तियों की मानसिक स्थितियों का वर्णन है। प्रथम चरण में लुटे हुए, द्वितीय में आकान्त तथा तृतीय में घायल। इन तीनों ही व्यक्तियों के मानसिक विश्लेषण के साकार तत्व इस छन्द में उपलब्ध हैं। यह घनआनंद के रसिक हृदय की सूक्ष्म गति का परिचायक है।

3. क्यौंहूँ कढ़ै न कढ़ाई' में विशेषेक्ति तथा वैषम्य भाव–योजना स्पष्ट है। समूचे छन्द में अनुप्रास का लालित्य तथा वर्ण–संगति ब्रजभाषा के माधर्यु के व्यंजक है।

4. 'हरयौ हियरा', 'चाह बढ़ाई', 'सुधि–हिय मैं', 'पाटी–पढ़ाई' आदि मुहावरों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग है।

तुलनीयः–

"तुम कौन धौ पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं"।

(10)

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान, कहौ
कैसे रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि परयौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौ तरसायहौ।
चातिक है रावरो, अनोखो मोह–आवरो
सुजान–रूप–बावरो, बदन बरसायहौ।
बिरह नसाय, दया हिय मैं बसाय, आप
हाय! कब आनंद को धन बरसायहौ।।

शब्दार्थः– प्रीतम = प्रियतम। हित = स्नेह। निधान = आधार। अनखि = मान करके, रूठकर। अरसायहौ = आलस्य करोगे। आनि = आ। परयौ = पड़ा है। कौ लौं = कब तक। तरसा हौ = तरसाओगे। राबरो = आपका। आवरो = व्याकुल। रूप–बावर = रूप सौन्दर्य पर पागल। वदन = मुँह। दसायहौ = दिखओगे। नसाय = नाश करके। दया हिय मैं बसाय = हृदय में दया भाव पैदा करके। आय = आकर। बरसायहौ = बरसाओगे।

प्रसंगः– यह प्रोपितपतिका नायिका का अपने प्रियतम के प्रति कथन है। वह प्रिय को अपने सम्मुख देखना चाहती है इसलिए अभिलाषा कर रही है कि वे कब आयेंगे?

व्याख्याः– हे मेरे प्रेम के आधार प्रियतम सुजान! भला यह तो बताइये यदि ऐसे रूठकर मिलन में आलस्य करोगे तो मेरे यह प्राण कैसे जीवन पायेंगे? अर्थात् यह प्राण तो आपके प्रेम के आधार पर ही जीवित रह सकता है। इस प्रकार आपके रुठने से इसे प्रेम का पोषण प्राप्त नहीं होगा और यह बचेगा नहीं। आप तो उदार जीव हैं। यह प्राण अत्यन्त दीन–हीन है। अब तो इसने आकर आपके ही द्वार पर डेरा डाल दिया है। भला, इसकी पुकार तो सुनिये। इस प्रकार कब तक तरसाते रहोगे? भाव यह है कि इस प्राण को आपके अतिरिक्त कहीं भी आश्रय नहीं मिल सकता। इसलिए इसने आपके द्वार पर आसन जमाया है और अब यदि आप भी इससे मुँह मोड़ेंगे तो इसकी क्या गति होगी, कल्पना की जा सकती है। यह प्राण तो आपका चातक है। इसकी पुकार की सीमाएँ आपके द्वार तक ही है। यह भी बड़ा अद्‌भुत है। आपके प्रेम के मोह में पीड़ित है। यह आपके रूप–सौन्दर्य के दर्शनार्थ पागल है। इसे आप अपना मुँह दिखाइये। भाव यह है कि इसकी साधना चातक के समान एकनिष्ठ है। यथा चातक स्वाति नक्षत्र की बूँद को

छोड़कर किसी भी प्रकार के पानी को ग्रहण नहीं करता। ठीक उसी प्रकार यह प्राण भी आपके ही रूप एकनिष्ठ साधक है। यह केवल आपका सुदर्शन ही चाहता है। फिर विरहिणी वियोग वेदना में कराह कर 'हाय' कहती है। वह कहती है आप कब अपने हृदय में दया–भाव उत्पन्न करके आनन्द के धन को बरसाकर विरह की तपन को नष्ट करोगे? भाव यह है कि आप तो आनन्द के घन हो। वियोगाग्नि की तपन तो जल की दृष्टि से शांत हो जाएगी। दर्शन करके मेरे मन को भी शान्ति मिलेगी।

विशेषः–

1. यहाँ विप्रलंभ शृंगार की 'अभिलाषा' दशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। घनआनंद 'प्राण' की विकलता को स्पष्ट करने में अधिक कुशल हैं। यहाँ हृदय की प्रत्येक गतिविधि का सजीव चित्रण हो गया है।
2. 'सुजान से वेश्या' तथा 'आनन्द को धन' से 'कवि–छाप' अर्थ लेकर इसे हम कवि की उस निष्ठुर प्रेयसी के प्रति कथित उक्ति भी कह सकते हैं। अन्यथा 'उदार' तथा 'दीन–हीन' शब्द 'भगवान' एवं 'भक्त' के प्रेम–भाव के भी व्यंजक हैं।
3. प्राण पर 'चातक' तथा 'प्रिय' पर 'धन' का आरोप करके परम्परित रुपक की नियोजना द्रष्टव्य है। 'हाय!' में निपात–वकता है।

स्व–मूल्यांकनः ख – सही / गलत

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में आपने विश्वनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'घनानंद कवित्त' के प्रमुख पदों के भावार्थ की व्याख्या का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

1. प्रिय के अनुराग में रमी हुई नायिका प्रातःकाल से सायंकाल पर्यन्त बन को उसी दिशा में देखती रहती है। ( )
2. दुखातिरेक में व्यक्ति हाय–हाय रूप में कराहता है जो दुख की अतिरंजना का द्योतक है। ( )
3. जो किसी को अकारण कष्ट देता है वह उसका फल अवश्य पाता है, यह लोक–प्रचलित उक्ति नहीं है। ( )
4. काव्य– रुढ़ियों में कवियों ने मानव–प्रेम की तुलना मीन तथा जल के प्रेम–सम्बन्ध से की है। ( )
5. कवि अपने प्रिय की वियोग–वेदना से निराश होकर प्राण त्यागने का प्रयास सही समझता है । ( )
6. मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की वेश्या सुजान घनानन्द की प्रेयसी थी। ( )
7. चातक स्थिति नक्षत्र की बूँद को छोड़कर किसी भी प्रकार के पानी को ग्रहण कर लेता है। ( )

5.4 उत्तर कुंजी

स्व–मूल्यांकन : (क) रिक्त स्थान

1. यौवनजन्य 2. घनानन्द 3. कृष्ण 4. 'संयोग' 5. 'आनंदनिधान' 6. आत्माभिव्यक्ति 7. वर्धमान 8. 'प्रिय–दर्शन'

स्व–मूल्यांकन : (ख) सही या गलत

1. सही 2. सही 3 . गलत 4. सही 5. गलत 6. सही 7. गलत

5.5 पठनीय पुस्तकें

1. सं. विश्वनाथ मिश्र, घनानंद कवित्त 1960, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी।

'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों की व्याख्या

रूपरेखा

6.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
6.2 प्रस्तावना
6.3 डॉ. जनार्दन राव चेलेर द्वारा सम्पादित 'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों की व्याख्या
6.4 स्व–मूल्यांकन
(क) रिक्त स्थान
(ख) सही या गलत
6.5 उत्तर कुंजी
6.6 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको पाठ्यक्रम में निर्धारित डॉ. जनार्दन राव चेलेर द्वारा सम्पादित 'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों के भावार्थ से अवगत करवाना है।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन करने के उपरांत आप पाठ्यक्रम में निर्धारित डॉ. जनार्दन राव चेलेर द्वारा सम्पादित 'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों के भावार्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय में डॉ. जनार्दन राव चेलेर द्वारा सम्पादित 'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों की व्याख्या की गयी है।

6.3 डॉ. जनार्दन राव चेलेर द्वारा सम्पादित 'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों की व्याख्या

(1)

श्री गुरुनाथ प्रभाव तै होत मनोरथ सिद्धि।
धन तैं ज्यौ तरु बेलि दल फूल फलन की बुद्धि।।

शब्दार्थः– मनोरथ = इच्छा। सिद्धि = सफलता, प्राप्ति। होत = होने की अवस्था, अस्तित्व। ज्यौं = जैसा है वैसा ही, उसी तरह उसी रूप में। तरु = पेड़, वृक्ष। बेलि = लता। दल = समूह, जलन = किसी कार्य या बात का परिणाम निकलना। वृद्धि = समृद्धि।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियां वृन्द कवि की वृन्द सतसई से ली गई है।

व्याख्याः– प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि वृंद कहते हैं कि जब व्यक्ति को परमेश्वर तथा गुरु की कृपा अर्जित होती है। तब उसके मन में उपस्थित सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य की सभी

इच्छाएँ उसी प्रकार सार्थक होती है। जैसे मेघ की शरण पाकर पेड़ तथा लतिकाओं के समूह पुष्प तथा फलों से लद जाते हैं।

(2)

नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध मैं रस सिंगार न सुहात।।

शब्दार्थः— नीकी = सीधा, सभ्य, ईमानदार। फीकी = रंग की चमक या ताजगी खोना। बिनु = खुश या प्रसन्न। सिंगार = सजावट।

प्रसंगः— प्रस्तुत पंक्तियां वृन्द कवि की वृन्द सतसई से ली गई हैं।

व्याख्याः— प्रस्तुत पंक्तियों में कवि कहते हैं बात उत्कृष्ट होने पर भी अगर वह बात बिना अवसर की जाए तो वह बात सुनने वाले को फीकी ही लगती है, यानि वह बात उत्तम नहीं लगती है, ठीक उसी प्रकार जैसे युद्ध में वीर रस की बात न करके श्रृंगार रस की बात की जाए तो वह बात किसी भी प्रकार से उम्ध नहीं लगेगी।

(3)

फीकी पै नीकी लगै कहिए समय विचारि।
सब को मन हरषित करे ज्यौं विवाह मैं गारि।।

शब्दार्थः— फीकी = रंग की चमक या ताजगी खोना। नीकी = सीधा, सभ्य, ईमानदार, पै = पर परन्तु। विचारि = बेचारा, जो दीन और निस्सहाय हो, गरीब, दीन। हरषित = प्रसन्नमय। करै = करना। ज्यौं = जैसा है वैसे ही, उसी तरह, उसी रूप में। गारि = गाली देना, दुर्वचन

प्रसंगः— प्रस्तुत पक्तियों की वृंद द्वारा रचित वृंद सतसई से उद्धृत है।

व्याख्याः— प्रस्तुत पंक्तियों में कवि वृंद कहते है। गाली अर्थात, दुर्वचन फीके एवं रसहीन लगते है। तथा अपशब्द कभी—कभी परस्पर भीषण संघर्ष को उत्पन्न करते हैं। परन्तु समय को ध्यान रखकर किसी को अपशब्द सुनाएं जाए वह अत्यधिक मधुर एवं अच्छे लगते है। शादी के मौके पर वधू पक्ष की औरतों द्वारा गाई जाने वाली गालियां वर—पक्ष के लोगों को आनंदित करती हैं तथा वे गालियाँ उन्हें बुरी भी नहीं लगती हैं विवाह के समय दी गई गालियों से परिवेश मोहक बन जाता है।

(4)

रागी अनगुन ना गनै यहै जगत की चाल।
देखौ सबही स्याम कों कहत बाल सब लाल।।

शब्दार्थः— रागी = राग से युक्त, अनुरक्त, आसक्त । अबगुन = दोष, बुरी आदत।

प्रसंगः— प्रस्तुत पंक्तियां कवि वृंद द्वारा रचित वृंद सतसई से ली गई हैं।

व्याख्याः— प्रस्तुत पंक्तियों में कवि कहते हैं कि दुनिया का दस्तूर यही है कि प्रेमियों को बुराईयों की कोई चिंता नहीं होती है, चूंकि प्रेमी को अपना प्रियतम अर्थात जिसके लिए उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाता है. वह ही उसे अत्यधिक प्रिय तथा प्यारा लगने लगता है, अपने प्रियतम के आगे कोई भी सुंदर नहीं लगता है, जैसे (काले) को अर्थात कन्हैया को ग्वालवासी लाल कहकर सम्बोधित करते हैं।

(5)

जो जाके प्यारौ लगै सो तिहिं करत बखान।
जैसे बिस को बिस–भखी मानत अमृत समान।।

शब्दार्थः– बखान = तारीफ, प्रशंसा।

निस = विष, जहर।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियां कवि वृंद की वृंद सतसई से ली गई है।

व्याख्याः– प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से वृंद कवि कहते हैं कि यह इस जगत की प्रथा है कि जिसको जो प्रिय लगता है वह उसी का गुणगान करता है चाहे दूसरों की दृष्टि में उसमें कितने ही दोष क्यों न हों, किन्तु प्रिय व्यक्ति को उसमें अच्छे गुण ही दिखाई देते है, जिसके कारण वह उसे प्रिय लगता है। जिस प्रकार जहर खाने वाले को वह जहर भी अमृत जैसा लगता है, क्योंकि स्वभावानुसार विष ही उसके लिए पीयूष समान बन जाता है।

(6)

जो जाकौ गुन जानही सो तिहि आदर देत।
कोकिल अंनहि लेते है काग निबौरी लेत।।

शब्दार्थः– निवौरी = नीम के फल का नीज, निम। कोकिल = कोयल। काग = कौआ।

प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियां कवि वृंद की वृंद सतसई से ली गई है।

व्याख्याः– प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि ने मनुष्य की विशेषता की पहचान तथा उसके सम्मान की बात कही है। कवि कहते है कि व्यक्ति जिसके गुणों से भली–भांति परिचित हो जाता है, उसकी दृष्टि में उसकी निपुणता के प्रति आदर भाव जागृत हो जाते है। कवि उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कोयल आम का रसास्वादन करती है तथा कौआ नीम की निबौली से ही आश्वस्त हो जाती है।

(7)

अन–उधमही एक कौ यों हरि करत निवाह।
ज्यौं अजगर भख आनि कै निकसत नाही राह।।

शब्दार्थः– यों = इस प्रकार से। हरि = भगवान, ईश्वर। करत = ढोना, ले जाना। निवाह = निर्वाह करना, गुजारा। ज्यौं = जैसा है, वैसे ही, उसी तरह, उसी रूप में। राह = पथ, रास्ता ।

प्रसंगः– प्रस्तृत पंक्तियां कवि वृंद की वृंद सतसई से ली गई हैं।

व्याख्याः– प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि कहते है कि इस जगत के सृजनकार परमेश्वर इस पृथ्वी पर न काम करने वाले लोगों का भी गुजर–बसर करते हैं, क्योंकि वे दुनिया के प्राणियों के पालक हैं, इसी कारण वे सभी के भोजन की व्यवस्था करते है। ईश्वर ने बिना श्रम के निर्वाह करने वाले एक ही प्राणी का निर्माण किया है। जैसे अजगर किसी का भक्षण करता है तो वह भक्षित प्राणी उसी राह से लौट जाता है। भाव यह है कि बिना मेहनत के खाने वाला जीव कभी प्रसन्न व सुखी नहीं रह सकता है।

(8)

हलन चलन का सकति है तौ लौं उद्यम ठानि ।
अजगर ज्यौं मृगपति बदन मृग न परंतु है आनि।।

शब्दार्थः– सकति = शक्ति, ताकत, पराक्रम । उद्यम = प्रयास, प्रयत्न।

ज्यौं = जैसा है वैसे ही, उसी तरह, उसी रूप में। बदन = तन, शरीर। मृग = हिरण।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियां कवि वृंद की वृंद सतसई से ली गई हैं।

व्याख्याः– इन पंक्तियों में कवि वृन्द कहते हैं कि मानव के शरीर में जब तक हिलने–डुलने की क्षमता रहती है तब तक उसे काम करते रहना चाहिए अर्थात, उसे मेहनत करते रहना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रम करने से ही जीवन में सफलता है, बिना मेहनत के जीवन का कोई भी वास्तविकता नही है। अजगर की तरह शेर भी जन श्रम हीन हो जाता है। तब उस शेर के मुख में मृग स्वयं आकर नहीं गिर जाता अर्थात मनुष्य के लिए मेहनत करना ही उचित है।

(9)

रस अनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मंत्र न जानई साँप पिटारे हाथ।।

शब्दार्थः– समझै = ज्ञान प्राप्त करना।

प्रेम = स्नेह, अनुराग। गाथ = यश, प्रसिद्धि, कीर्ति ।

प्रसंगः– प्रस्तुत पंक्तियां कवि वृंद की वृंद सतसई से ली गई है।

व्याख्याः– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि वृन्द कहते हैं कि सुख तथा दुख को न समझने वाले लोग भी प्रेम की बड़ी–बड़ी गाथाएँ पढ़ने का दावा करते है, भाव यह है कि जैसे कोई विच्छू के काटने का मन्त्र न जाने और सांप के पिटारे में हाथ डालने का दुरसाहस करे।

(10)

कीजे समझ, न कीजिए बिन विचारि विवहार।
आप रहत जानत नहीं सिर को पापन भार।।

शब्दार्थः– समझ = बुद्धि, समझने की शक्ति। कीजिए = हम कोशिश करेंगे और मदद करेंगे। विचारि = जो दीन और निस्सहाय हो, जिसका कोई साथी या अनलेव न हो, गरीब। आय = आमदनी भार – बोझ जानत = जानने की क्रिया। पायन = पिलाने की क्रिया।

प्रसंगः– प्रसग प्रस्तुत पंक्तियां कवि वृन्द द्वारा रचित वृन्द सतसई से उद्धृत है।

व्याख्याः– प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से वृन्द कवि कहते हैं कि व्यक्ति को बिना विचार विमर्श किए किसी से भी व्यवहार नहीं करना चाहिए। बिना सोचे–समझने व्यवहार पर अर्थात अपनी आप के आधार पर कार्य न करने पर उसके सिर पर बोझ बना ही रहता है।

6.4 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय में आपने डॉ. जनार्दन राव चेलेर द्वारा सम्पादित 'वृन्द ग्रन्थावली' के प्रमुख पदों के भावार्थ की व्याख्या का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित रिक्त स्थान भरकर एवं प्रश्नों के उत्तर सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

स्व मूल्यांकन : क – रिक्त स्थान भरो

1. जब व्यक्ति को .....की कृपा अर्जित होती है। तब उसके मन में उपस्थित सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं।
2. युद्ध में .....रस की बात की जाए तो वह बात किसी भी प्रकार से उत्तम नहीं लगेगी।
3. .....के समय दी गई गालियों से परिवेश मोहक बन जाता है।
4. अपने .....के आगे कोई भी सुंदर नहीं लगता है।
5. जिसको जो प्रिय लगता है वह उसी का .....करता है चाहे दूसरों की दृष्टि में उसमें कितने ही दोष क्यों न हों।

स्व–मूल्यांकनः ख – सही / गलत

1. व्यक्ति जिसके गुणों से भली–भांति परिचित हो जाता है, उसकी दृष्टि में उसकी निपुणता के प्रति आदर भाव जागृत हो जाते है। ( )
2. कोयल नीम का रसास्वादन करती है तथा कौआ आम की निबौली से ही आश्वस्त हो जाती है। ( )
3. परमेश्वर इस पृथ्वी पर काम न करने वाले लोगों का गुजर–बसर नहीं करते हैं। ( )
4. बिना मेहनत के खाने वाला जीव कभी प्रसन्न व सुखी नहीं रह सकता है। ( )
5. मनुष्य के लिए मेहनत करना ही उचित है। ( )
6. सुख–दुख को न समझने वाले लोग भी प्रेम की बड़ी–बड़ी गाथाएँ पढ़ने का दावा करते हैं ( )
7. व्यक्ति को बिना विचार विमर्श किए किसी से भी व्यवहार नहीं करना चाहिए। ( )

6.5 उत्तर कुंजी

स्व–मूल्यांकन : (क) रिक्त स्थान

1. परमेश्वर तथा गुरु 2. शृंगार 3. विवाह 4. प्रियतम 5. गुणगान

स्व–मूल्यांकन : (ख) सही या गलत

1. सही 2. गलत 3. गलत 4. सही 5. सही 6. सही 7. सही

6.6 पठनीय पुस्तकें

1. डॉ. जनार्दन राव चेलेर, वृन्द ग्रन्थावली 1971, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा

केशव का आचार्यत्व

रूपरेखा

7.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
7.2 प्रस्तावना
7.3 केशव का आचार्यत्व
7.4 सारांश
7.5 स्व–मूल्यांकन
- बहुविकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

7.6 कठिन शब्द
7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.8 उत्तर कुंजी
7.9 पठनीय पुस्तकें

7.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य है आपकोः–

– आचार्य किसे कहा जाता है, इससे परिचित करवाना।

– आचार्यत्व प्रधान करने वाले लक्षणों का ज्ञान प्राप्त करना।

– केशव के आचार्यत्व की पूर्ण पहचान करवाना।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप–आचार्य किसे कहा जाता है, आचार्यत्व प्रधान करने वाले लक्षण तथा केशव के आचार्यत्व की पूर्ण पहचान कर सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

आचार्य शब्द का साधारण अर्थ है– दीक्षा आदि देने वाला गुरु और विशिष्ट अर्थ है– किसी सिद्धांत अथवा सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक। वस्तुतः काव्य के क्षेत्र में उस व्यक्ति की गणना आचार्यों में की जा सकती है, जो किसी नवीन काव्य–संप्रदाय का प्रवर्त्तक, काव्यशास्त्र का व्याख्याता अथवा ज्ञाता हो।

7.3 केशव का आचार्यत्व

काव्य के एक या एक से अधिक अंगों का नियमन अथवा विवेचन करने वाले विद्वानों को आचार्य कहा जाता है। आचार्यत्व के लिए केवल शास्त्र–ज्ञान या शास्त्र में बताए गए नियमों का पालन ही आवश्यक नहीं है, अपितु काव्य

के नियमों का प्रतिपादन भी आवश्यक है। केशव को आचार्यत्व प्रदान कराने वाली तीन कृतियां हैं –(1) कवि–प्रिया (2) रसिक प्रिया तथा (3) छन्द माला।

1. कवि–प्रिया– इस ग्रन्थ में कवि ने 16 प्रभावों में कलापक्ष के अंगों का विवेचन किया है। यथा पहले दो प्रभावों में केशव ने इस ग्रन्थ की रचना–तिथि, आश्रयदाता राजा इन्द्रजीत सिंह का परिचय तथा इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य प्रतिपादित करके अपना वंश–परिचय दिया है।

दूसरे प्रभाव में काव्य में निर्दोषता की अनिवार्यता की स्थापना करके दोषों का विशद विवेचन किया है।

तीसरे प्रभाव में कवियों का कोटि–विभाजन, रीतियों और कवि–प्रसिद्धियों का वर्णन है।

चौथे प्रभाव में अलंकार के महत्त्व का प्रतिपदान करके अलंकार के दो स्थूल भेद स्थापित किये गए हैं। आठवें प्रभाव तक कवि ने इसी प्रसंग के विभिन्न भेदों की व्याख्या दी है।

नवें प्रभाव से लेकर चौदहवें प्रभाव तक विशिष्टालंकार के–भेद निरूपित किये हैं।

पन्द्रहवें प्रभाव में चित्रकाव्य के भेद निरूपित हैं।

वस्तुतः कविप्रिया केशव का अलंकार–शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ है। उन्होंने काव्य के कलापक्ष के अन्तर्गत अलंकार को विशेष महत्त्व दिया है।

इस ग्रन्थ की उपयोगिता के विषय में केशव स्वयं कहते हैं कि यह 'कवि की जीवन प्राण' है।

2. रसिक–प्रिया– इस ग्रन्थ में केशव ने कविता के भावपक्ष से सम्बन्धित तत्वों का प्रतिपादन और विवेचन किया है। यह ग्रन्थ भी 16 प्रभावों में विभक्त है। यथा–

पहले प्रभाव में ग्रन्थ–रचना का उद्देश्य, नवरसों में शृंगार का नायकत्व और उसके भदोपभेद प्रतिपादित किये गए हैं।

दूसरे–प्रभाव में चार प्रकार के नायकों तथा उनके प्रच्छन्न एवं प्रकाश भेदों का वर्णन है।

तीसरे प्रभाव में नायिका–भेद वर्णित है।

चौथे प्रभाव में चार प्रकार के दर्शन एवं उनके भेद वर्णित हैं।

पांचवें प्रभाव में नायक–नायिका की चेष्टाओं और अभिसार स्थलों का निरूपण है।

छठे प्रभाव में हाव–भावों का वर्णन है।

सातवें प्रभाव में नायिकाओं के भेद किये गए हैं।

आठवें प्रभाव से लेकर ग्यारहवें प्रभाव तक विप्रलम्भ शृंगार के विभिन्न रूपों और अंगों के भेद निरूपित किए गए हैं।

बारहवें और तेरहवें प्रभावों में सरवीजन कर्म वर्णित हैं।

चौदहवें प्रभाव में शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का निरूपण है और श्रृंगार में उन्हें अन्तर्भुक्त करने की प्रवृति है।

पन्द्रहवें प्रभाव में वृत्तियों का वर्णन है।

सोलहवें प्रभाव में रस–दोषों का वर्णन है।

इस ग्रन्थ में केशव ने रस तथा उसके अंगों का सोदाहरण विवेचन किया है। केशव की विशेषता यह है कि उन्होंने सभी रसों का शृंगार में अंतर्भाव कर दिया है।

3. छन्द–माला– इस ग्रन्थ की रचना भी कवि–शिक्षा के लिए की गई है। एकाक्षर से लेकर 16 अक्षरपाद वाले 71 छन्दों के लक्षण तथा उदाहरण इस ग्रन्थ में दिये गए हैं। छन्दमाला की विशेषता यह है कि इसमें केवल वर्णिक छन्दों का विवेचन किया गया है। केशव ने नौसिखिए कवियों के लिए ही कदाचित् इस ग्रन्थ की रचना की है। क्योंकि मात्रिक छन्दों के लक्षण कुछ इतने विषम होते हैं कि उन्हें कठिनाई से ही धारण किया जा सकता है। लक्षण, निरूपण दोहों में तथा उदाहरण, प्रतिपादित छन्दों में दिये गए है। अन्त में उन्होंने 32 अक्षर वाले अनंगशिखर का भी सोदाहरण लक्षण दे दिया है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ काव्य–शास्त्र सम्बन्धी हैं। केशव ने इन ग्रन्थों में काव्य के सभी प्रमुख और आवश्यक अंगों का निरूपण कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने समकालीन कवियों और आने वाली पीढ़ी के कवियों की शिक्षा के लिए ही इन ग्रन्थों की रचना की थी।

केशव के काव्य–सिद्धान्त

डॉ. भगीरथ मिश्र का मत है कि केशव के काव्य–सिद्धान्त संस्कृत काव्य–शास्त्र की पृष्ठ–भूमि में ही उत्पन्न हुए हैं। अतः उनके मत से सहमति और विरोध की बात नहीं उठती। किन्तु यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है। यह ठीक है कि केशव ने संस्कृत के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने कहीं–कहीं अपनी मान्यताओं का भी समावेश कर दिया है। रस, अलंकार और नायिका–भेद में केशव की मौलिक मान्यताओं के यत्र–तत्र दर्शन हो जाते हैं। यद्यपि छन्दमाला सहित उपर्युक्त सभी रचनाएं वर्णन–पथ दिखाने के लिए ही की गई है। तथापि छन्दमाला के अतिरिक्त अन्य रुचनाओं में काव्य का आचार्यत्व भी दृष्टव्य है।

रस–निरूपण

'रसिक प्रिया' के छठे और चौदहवें प्रभावों में रस के विभिन्न अंगों तथा भेदों का निरूपण किया गया है। रस का प्रधान अंग भाव है। छठवें प्रभाव में वे भाव की परिभाषा करते हैं–

आनन लोचन वचन मग, प्रगटत मन की बात।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कविनि के तात।।

इस दोहे का चौथा पद दृष्टव्य है। भाव कवियों के तात है। तात का अर्थ जनक होता है। केशव द्वारा प्रतिपादित अर्थ में भाव कवि–जन्य होते हैं। पात्रों की चेष्टाओं द्वारा मन की बात को प्रकट करने वाला कवि होता है। अपने भावों का पात्रों द्वारा कवि भावन कराता है। यह परिभाषा भरत मुनि के एकदम निकट है–

वार्गगमुखरागेण सत्त्वेनाभिनये च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भाव उच्चते।।

धनंजय के भावों की परिभाषा करते समय कवि के साथ पाठक को भी ध्यान में रखा है। उनके अनुसार अभिनय कौशल या काव्य शक्ति से कवि भावक का चित्त 'तदेकतान' हो. जांता है।

संस्कृत के सभी आचार्यों ने, पंडितराज जगन्नाथ को छोड़कर, नाटक को आधार मानकर भाव की परिभाषा दी है। केशव ने भी वही किया है। अन्तर केवल यह है कि संस्कृत के आचार्यों ने 'आनन लोचन वचन–मग' द्वारा प्रकट होने वाले भावों (केशव के कथनानुसार) को अनुभाव कहा है, जबकि केशव ने भावों और अनुभावों के पचड़े में न पड़कर उन्हें भी भावों के ही भेद मान लिया है। वे भावों के पांच भेद करते हैं–

भाव सु पंच प्रकार के, सुनि विभाव अनुभाव।
थाई सात्त्विक कहत है, व्यभिचारी कविराव।।

विभावों के वर्णन में भी केशव ने एक नवीनता रखी है। उद्दीपन के अन्तर्गत उन्होंने निम्नलिखित चेष्टाएं गिनाई हैं–

अवलोकनि आलाप परिरम्भन नख रद–दान।
चुम्बनादि उद्दीप ये मर्दन परस प्रामन।।

दृश्य–काव्य में रमणीय दृश्यादि तथा आलम्बन के सौन्दर्यादि को उद्दीपन माना जाता है। संस्कृत के सभी आचार्यों के सिद्धांत–प्रतिपादन का आधार नाटक ही रहा है। केशव ने श्रव्य या पाठ्य काव्य को ध्यान में रखा है और पाठक को भावक मानकर यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है। काव्य में वर्णित इन्हीं चेष्टाओं को पढ़–सुनकर पाठक रसानुभूति कर सकता है।

अनुभावों के विषय में भी केशव का मत भिन्न है। उन्होंने उद्दीपन के अन्तर्गत चेष्टाओं को ही अनुभव माना है। संस्कृत के आचार्यों की भांति सात्तविक अनुभावों की संख्या उन्होंने भी आठ मानी है–

स्तम्भ स्वेद रोमांच सुरभंग कंप वैवर्ण्य।
आंसू प्रलय बखानियै आठों नाम अनन्य।।

स्थायीभाव केशव ने भरत मुनि के ही समान आठ माने हैं। 'रसिकप्रिया' के प्रारम्भ में उन्होंने नौ रसों का निर्देश किया है। इस कथन की पूर्ति उन्होंने 'शान्त रस' के विवेचन में की है, जिसका स्थायी भाव 'निर्वेद' है।

व्यभिचारीभाव के विषय में केशव का मत अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से भिन्न है। भरतमुनि ने कहा है कि अनियम सम्बन्ध से विचरण करने वाले रसानुभूति में सहायक भाव ही व्यभिचारी भाव कहलाते हैं।

विविध माभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः।

वामन ने इस रूपक की टीका करते हुए स्पष्ट किया है कि स्थायीभावों को समस्त शरीर में फैलाकर व्यंजन–समर्थ बनाने वाले भाव ही व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। कदाचित् इसी कारण इन्हें संचारी भाव भी कहा जाता है किन्तु केशव ने व्यभिचारी की अत्यन्त स्पष्ट परिभाषा की है–

भाव जु सबही रसनि में उपजत केशवराय।
बिना नियम तिनसों कहैं व्यभिचारी कविराय।।

अनियमित रूप में सभी रसों में उत्पन्न होने वाले भाव व्यभिचारी होते हैं। 'व्यभिचारी' शब्द को अनियमित कहकर सटीक कर दिया गया है। केशव ने उनकी संख्या 35 मानी है, जबकि संस्कृत में 33 हैं। केशव ने विवाद एवं आधि दो नवीन व्यभिचारी भाव माने हैं।

रसों की संख्या वस्तुतः आठ है। नवां रंस 'शान्त' है। शृंगार सहित जिन आठ रसों का विवेचन रसिकप्रिया में किया गया है, वे मूलतः शृंगार के ही अंग हैं। सभी सजातीय या विरोधी रसों का अन्तर्भाव शृंगार में ही करके शृंगार रस का रस राजत्व प्रतिष्ठित कर केशव ने अपने युग की छाप डाल दी है।

केवल 'शम' (शान्त) रस ऐसा है जिसे उन्होंने शृंगार में अर्न्तभूत किया है। 'शम' का उदाहरण दृष्टव्य है–

देखि गई जब तें तुमकों तब में कछु वाहि न देख्यौ सुहाई।
छाडैगी देह जु देखे बिना अहो देहु न कान्ह कहूं ते दिखाई।।

अलंकार निरूपण

कवि–प्रिया के नवें से लेकर चौदहवें प्रभाव तक अलंकार सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इसमें 36 अलंकारों का निरूपण किया गया है। काव्य–शोभा के लिए केशव अलंकार को अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। अलंकार के प्रति जितना आग्रह जयदेव ने दिखाया है। उतना ही आग्रह केशव में भी है। वे मम्मट की भाँति अलंकार को काव्य का अनियतधर्मी लक्षण नहीं मानते, बल्कि भामह की भांति रस को भी रसवदलंकार में अन्तर्भुक्त कर लेते हैं। अतः यह मानना ही उचित है कि केशव के अलंकार–सिद्धान्तों पर प्राचीन–संस्कृत–परम्परा का ही प्रभाव है। लेकिन उन्होंने न तो रुद्रट की भांति अलंकारों की संख्या 50 मानी है और न मम्मट की भांति 70। उन्होंने केवल 36 अलंकारों का सभेद निरूपण किया है।

परम्परा से प्रभावित होते हुए भी केशव ने अलंकारों का विभाजन और भेद करने में अपने निजत्व का भी परिचय दिया हैं। उन्होंने सर्वप्रथम प्रकार–भेद किया है और उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया है–

1. सामान्य तथा 2. विशेष

1. सामान्य अलंकारों में वर्ण्य–वेषय आते हैं। ये विषय चार बताए हैं तथा उनके भेदापभेदों का दिग्दर्शन भी कराया है। सामान्यालंकारों के चार भेद हैं।

1. वर्ण 2. वर्ण्य 3. भूश्री तथा 4. राजश्री।

2. विशेष अलंकारों में वे सभी अलंकार आते हैं, जिनका प्रचलन संस्कृत काव्य–परम्परा से केशव के समय तक रहा था। केशव द्वारा कृत विवेचन का आधार यद्यपि संस्कृत के आचार्यों के अनुसार ही है तथापि केशव ने उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन और परिवर्द्धन करके अपनी मौलिकता का भी समावेश करा दिया है यहां केवल उन्हीं अलंकारों का विवेचन किया जायेगा, जिनमें केशव ने आंशिक भेद रखा है।

'विभावना' के निरूपण में केशव ने यह अन्तर रखा है कि उन्होंने दण्डी के द्वारा बनाये गये भेदों को स्वीकार करते हुए भी सहज कारणाभाव–मूलक विभावना का लक्षण प्रस्तुत किया है और कारणान्तर–मूलक विभावना को गौण रखा है।

'हेतु' अलंकार के विषय में पहले से ही मतभेद रहा है। दण्डी ने इसे उत्तम माना है, जबकि अन्य आचार्यों ने इसे अलंकार की कोटि में रखने का विरोध किया है। 'अग्निपुराण' और 'सरस्वती कण्ठाभरण' में इसका उल्लेख अवश्य है। अकेले रुद्रट ने उसका लक्षण प्रस्तुत किया है। मम्मट ने रुद्रट के लक्षण का खण्डन किया है और उसे काव्यलिंग माना है। सरस्वती–कण्ठाभरण में हेतु के चार भेद हैं, जबकि दण्डी के लक्षणानुसार केवल दो ही भेद प्रकट होते हैं। केशव ने सबसे अलग हेतु के दो भेद– सभाव तथा अभाव माने हैं।

'क्रमालंकार' के विषय में संस्कृत के आचार्य एक मत नहीं हो सके थे। क्रम और यथासंख्य में समानता होने के कारण अभेद का भ्रम बना रहा था। केशव ने सभी विवादों के 'मूल तत्त्वों को समझ कर क्रम' का एक स्पष्ट और सरल लक्षण प्रतिपादित कर दिया–

आदि अंत भरि बरनियै सो क्रम केसवदास।

'प्रेमालंकार' का आधार दण्डी का 'प्रेयस' है। यह भी एक विवाद–ग्रस्त अलंकार था। ध्वनिवादी आचार्यों ने इसे अलंकार के रूप में न मानकर गुणीभूत व्यंग्य में अंतर्भुक्त कर लिया था। केशव ने दण्डी से प्रभावित होकर उसे अलंकार मान लिया किन्तु ध्वनिवादियों के विवाद से बचने के लिए नाम–भेद कर दिया।

कपट निपट मिटि जाइ, जह उपजै पूरन छेम।
ताही सों सब कहत हैं, केसव उत्तम प्रेम ।।

'रसवदलंकार' का आधार भी अलंकारवादी आचार्यों के अनुसार ही केशव ने ग्रहण किया है। वामन ने काव्य–सौन्दर्य में सहायक सभी तत्त्वों को अलंकार कहा था। किन्तु रसवादी आचार्य रस को अलंकार से भिन्न मानते रहे हैं। 'रसवत' की परिभाषा यही रही है की जहाँ 'रस' का वर्णन प्रधान रहे वहां 'रसवत' अलंकार होगा। यह कथन प्रबन्ध काव्यों के रस–वर्णन और मुक्तक रस–वर्णन में भिन्नता रखता है। प्रबन्ध में किसी एक ही रस की प्रधानता होती है, जबकि मुक्तक में रस का स्थान भाव ग्रहण कर लेता है। तब केशव ने लक्षण किया–

रसमय होइ सु जानियै रसवत केसवदास।
नवरस को संक्षेप ही, समुझौ करत प्रकास।।

'रसमय' शब्द में सभी विरोधों को अन्तर्मुक्त कर लिया गया है। 'रसात्मक' और 'रस–गर्भित'– दोनों ही भाव यहाँ विद्यमान हैं।

'अर्थान्तरन्यास' अलंकार नाम–साम्य रखते हुए भी संस्कृत के आचार्यों से लक्षण–वैषम्य रखता है। दण्डी के अनुसार प्रस्तुत के समर्थन में जहाँ अन्य वस्तु का न्याय किया जाये वहाँ 'अर्थान्तरन्यास' होता है। केशव ने कहा है कि–

और आनियै अर्थ जहें, और वस्तु बखान।
अर्थान्तर कौ आस यह, चारि प्रकार सुजान।।

दण्डी के आठ भेदों की जगह केशव ने चार ही भेद माने हैं। 'युक्त' केशव का सर्वथा नवीन अलंकार है। उन्होंने इसका लक्षण दिया है–

जैसो जाको बुद्धिबल, कहिजै तेसो रूप।

यह अलंकार 'स्वभावोक्ति' से मिलता–जुलता प्रतीत होता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि इसका सम्बन्ध पात्र के यथावत् चित्रण से न होकर कल्पना से युक्त होता है।

'रूपक' में केशव ने थोड़ा–सा अन्तर कर दिया है। दण्डी के मतानुसार उपमा में जब भेद का तिरोधान हो जाता है, तब रूपक हो जाता है। केशव ने उपमेय और उपमान के अभेदात्मक वर्णन में रूपक माना है। केशव ने रूपक के विषय में चली आ रही सारी उलझन से बचकर दो ही रूपक ग्रहण किये–एक रूपक तथा दूसरा विरूद्ध रूपक। उन्होंने 'अद्‌भुत रूपक' तथा 'रूपक–रूपक' की नवीन उद्‌भावना और कर दी है।

'उपमा' में केशव ने दण्डी का ही अनुकरण किया है। अन्तर केवल यह है कि उन्होंने 32 की जगह केवल 22 उपमाएं मानी है। कुछ उपमाओं के नाम–भेद भी कर दिये हैं–

(दण्डी)	(केशव)
निन्दोपमा	दूषणोपमा
प्रशंसोपमा	भूषणोपमा
परस्परोपमा	अन्योन्योपमा

इसी प्रकार अन्य अलंकारों में भी केशव ने अपने मत की यत्र–तत्र प्रतिष्ठा की है। वे अलंकार के क्षेत्र में दण्डी से प्रभावित थे। किन्तु दण्डी के अतिरिक्त अन्य आचार्यों के मत का भी उन्होंने ध्यान रखा था। वस्तुतः केशव ने सस्कृत की अलंकार–परम्परा में से ही चयन कर हिन्दी को एक सरलीकृत अलंकार–परम्परा प्रदान की थी।

छन्द–निरूपण

केशव पिंगल–शास्त्र के पण्डित थे। उन्होंने अपने काव्य में अनेक वर्णिक और मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। किन्तु पिंगल–शास्त्र पर जो उन्होंने 'छन्दमाला' नामक ग्रन्थ लिखा.है उसमें केवल मात्रिक छन्दों का निरूपण है। छन्दमाला में एकाक्षर से लेकर 16 अक्षर वाले छन्दों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं। इस जाति–भेद में ही उन्होंने. कई–कई छन्दों का निरूपण किया है। इस प्रकार 76 छन्द बनते हैं, 32 अक्षरों वाला एक छन्द और देकर उन्होंने उनकी संख्या 77 कर दी है।

एकाक्षर	श्री
द्वयक्षर	नारायण
त्र्यक्षर	रमण
चतुरक्षर	तरणिजा, मदन
पंचाक्षर	माया
षडक्षर	सोमराजी, शंकर, विज्जोहा मंथान, सुखदा, मालती
सप्ताक्षर	कुमार ललिता, प्रमाणिका
अष्टाक्षर	मल्लिका, नगस्वरूपिणी, मदनमोहिनी, बोधक, तुरगम
नवाक्षर	नगस्वरूपिणी, तोमर
दशाक्षर	हरिणी, अमृतगति, तोमर, संयुक्ता

इसी प्रकार उन्होंने एक ही जाति के कई–कई छन्दों का निरूपण किया है। अन्त में 16 अक्षरों से अधिक पद वाले छन्द का सामान्य नाम देकर तथा 32 अक्षर वाले 'अनंग शेखर' का लक्षण देकर ग्रन्थ समाप्त कर दिया है। इस ग्रन्थ की रचना में केशव का उद्देश्य–नये कवियों को शिक्षित होने के लिए साधन उपलब्ध कराना था। मात्रिक छन्दों की जटिलता के कारण उन्होंने उन छन्दों पर कार्य नहीं किया।

छन्द की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' केशव का एक और महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक ग्रन्थ है। इसमें केशव ने 82 प्रकार के मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों का प्रयोग करके हिन्दी वृत्त–रचना के क्षेत्र को प्रशस्त किया है।

केशव की मौलिकता

छन्द–रचना में केशव ने अपने आचार्यत्व की मौलिकता भी प्रमाणित की है। दो छन्दों को मिलाकर एक तीसरा छन्द बनाना, वर्णिक एवं मात्रिक परिपाटियों का समन्वय करना तथा कई अन्य प्रकार के प्रयोग उन्होंने किये हैं–

1. छन्दों का मिश्रण– जयकरी तथा चौबोला को मिलाकर उन्होंने एक नया छन्द बना डाला–

कालकूट तें मोहन रीति।

मनिगन ते अति निष्ठुर प्रीति।। (जयकरी के दो चरण)

मदिरा ते मादकता लई।

मन्दर उदर भई भ्रममई।। (चौबोला के दो चरण)

2. वर्णिक और मात्रिक का समन्वय– हीरक छन्द दो प्रकार से निर्मित किया जाता है– .या तो 23 मात्राओं के आधार पर या 18 वर्णों के आधार पर। केशव ने दोनों का समन्वय कर दिया है।

3. अन्त्यानुप्रास में नवीनता– केशव ने अन्त्यानुप्रास की जगह मध्य में तुक डालकर एक नया प्रयोग किया है। मालती के एक ही चरण में यति के. साथ तुक आ जाती है। इस प्रकार अतुकान्त कविता का उन्होंने श्रीगणेश किया–

गुण गण मणि माला, चित्त चातुर्य शाला।
जनक सुखद गीता, पुत्रिका पाइ सीता।। –इत्यादि।

आचार्य केशव ने छन्द को अभिव्यक्ति का साधन माना है, साध्य नहीं, इसीलिए उन्होंने 'रामचन्द्रिका' में कहीं–कहीं छन्द–पूर्ति के मोह को त्याग दिया है। भाव यदि डेढ़ छन्द में पूरा हो जाता है, तो उसके लिए आधा छन्द और बढ़ाना व्यर्थ है। यदि भाव का एक अंश किसी छन्द में पूरा हो सकता है और दूसरे अंश के लिए किसी अन्य छन्दांश की आवश्यकता है, तो केशव ने उसमें दोष न मानकर और स्वयं प्रयोग करके अन्य कवियों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत किया है।

नायिका–भेद–निरूपण

केशव से पहले ही हिन्दी में नायिका–भेद लिखने की परम्परा पड़ चुकी थी। केशव से कुछ ही पूर्व नंददास ने भक्त कवि होते हुए भी नायिका–भेद लिखा था। वस्तुतः उस युग में सुव्यवस्थित काव्य–रचना करने की ओर कवियों का ध्यान जाने लगा था। सामाजिक दृष्टि से देखा जाये तो यह काल सामन्ती भोग–विलास का काल था। मुस्लिम शासन के साथ–साथ मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति ने भी जीवन को प्रभावित किया थां। इस कारण शृंगार की ओर कवियों का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। यहां तक कि कृष्ण–भक्ति का काव्य भी शृंगार–परक हो गया था। अतः शृंगार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्षों को प्रकट करने की आवश्यकता हो उठी थी। इसी की पूर्ति के लिए संस्कृत के नायिका–भेदों की ओर हिन्दी के कवियों का ध्यान जाने लगा था। केशव एक तो स्वयं ही आचार्य थे, तिस पर उन्होंने शृंगार के रसराजत्व का प्रतिपादन किया था। अतः उनके लिए नायिका–भेद लिखना भी आवश्यक था। 'रसिकप्रिया' के दूसरे से लेकर पाँचवें प्रभाव तक उन्होंने नायक और नायिकाओं के लक्षणों का निरूपण किया है।

नायक–भेद–संस्कृत में दिये गए नायक–भेद को ही केशव ने अपने नायक–भेद का आधार बनाया था, किन्तु उन्होंने किसी का मात्र अनुवाद नहीं किया था। 'दश–रूपक' और 'साहित्य दर्पण' की ही भांति केशव ने नायक के आठ गुण माने हैं–

अभिमानी, त्यागी तरुन कोक कलानि प्रबीन।
भव्य छत्री सुन्दर धनी सुचि–रुचि सदा कुलीन।।

नायक के केशव ने चार भेद माने हैं– अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट। इन चारों के भी उपभेद होते हैं, किन्तु केशव ने केवल इतना ही ग्रहण किया है। नायक के काव्यानुकूल भेद करने की ओर उनका ध्यान नहीं था। संस्कृत के धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त और धीरोदात नायक– केशव के प्रतिपाद्य नहीं बन सके।

नायिका–भेद– केशव के नायिका भेद के. चार आधार हैं– (1) जाति, (2) कर्म, (3) अवस्था तथा (4) प्रकृति।

केशव ने संस्कृत के आचार्यों के नायिका–भेद के अतिरिक्त 'कामसूत्र' से भी प्रेरणा ग्रहण की है। यही कारण है कि उनका नायिका–भेद साहित्य–शास्त्रीय से अधिक काम–शास्त्रीय है।

जाति के आधार पर उन्होंने चार प्रकार की नायिकाओं के लक्षण और भेद दिये हैं– पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी एवं हस्तिनी– जिनका आधार विशुद्ध रूप से वात्स्यायन का 'कामसूत्र' है।

कर्म के आधार पर त्रिविध नायिकाओं का विवेचन किया गया है 'स्वीया, परकीया' तथा 'स्वीया परकीयान' अर्थात् सामान्या। केशव ने सामान्या का विवेचन नहीं किया है।

प्रकृति के आधार पर तीनों अवस्थाओं की नायिकाओं के अलग–अलग भेद हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं–

मुग्धा – नववधू, नवयौवना, नवल अनंगा, लज्जाप्रिया।

मध्या – आरूढ़ यौवना, प्रगल्भ वचना, प्रादुर्भूत मनोभाव तथा सुरति–विचित्रा।

प्रौढ़ा – समस्त रस कोविदा, चित्र–विभ्रमा, अत्याक्रान्ता तथा लुब्धा।

उपयुर्कत भेद 'स्वकीया' को दृष्टि में रखकर किये गये हैं।

मध्य नायिका तीन प्रकार की होती है – धीरा, अधीरा तथा धीरा–अधीरा। इनके साथ 7 बाह्य रतियों का वर्णन है, जो चुम्बन से लेकर अधर पान तक की स्थिति प्रकट करती है। 7 अन्तः रतियां हैं, जिनमें 'स्थिति' से लेकर 'उत्तान' तक की रमण–क्रियाएं आती हैं। इस प्रकरण में षोडष श्रृंगार तथा सुरतान्त का भी वर्णन है। यह विवेचन प्रायः कामसूत्र पर आधारित है और कामशास्त्रीय ही अधिक है। परकीया के केवल दो भेद–ऊढ़ा और अंनूढ़ा–किये गये हैं।

नायक के सम्बन्ध में प्रेम की अवस्थानुसार नायिका के आठ भेद होते हैं – स्वाधीनपतिका, उत्का, वासकसज्जा, अभिसंधिता, खंडिता, प्रोषित प्रेयसी, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका। अभिसारिका के भी तीन भेद हैं– प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका तथा कामाभिसारिका। ये तीनों भेद केशव की स्वयं की उद्भावना हैं।

इसके पश्चात् दर्शन–भेद तथा नायक एवं नायिकागत प्रच्छन्न–प्रकाश रूप से दर्शनों का भेद निरूपित किया गया है। इसी क्रम में नायक तथा नायिका की चेष्टाओं और संकेतस्थलों का विवेचन है। केशव ने हाव–भाव के वर्णन के साथ ही संयोग–श्रृंगार की अवस्थाओं का विवरण देकर गुणानुसार–उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं का श्रेणी–विभाजन किया है। मान–वर्णन भी केशव ने कर दिया है और मानमोचन के सात उपायों का उल्लेख भी है। सखीकर्म को भी केशव ने छोड़ा नहीं है।

इस प्रकार केशव कृत नायिका–भेद काफी विस्तृत है। उन्होंने इस कार्य में कदाचित् काव्य को कम और कामशास्त्र को अधिक महत्व दे दिया है। डा. भगीरथ मिश्र ने काव्यशास्त्र की दृष्टि से इसके महत्व को अस्वीकार किया है। सामान्या को छोड़कर भी केशव ने 308 नायिकाओं का उल्लेख किया है। केशव ने शृंगार को इतना विस्तार देकर उसके रसराजत्व की घोषणा की है। उनका यह प्रयत्न युगानुरूप ही था।

7.4 निष्कर्ष

केशव का युग, सामन्ती सभ्यता और संस्कृति का युग था। सामन्तों का ध्यान भोग–विलास और वैभव–प्रदर्शन की ओर लगा रहता था। सामन्तों की विलास वृत्ति ने परकीय प्रेम के आनन्द की ओर रूचि दिखाना आरम्भ कर दिया। इस प्रवृत्ति का थोड़ा–बहुत प्रभाव समाज पर भी पड़ा। कवियों को राज्याश्रय प्राप्त करने का अवसर भी मिलने लगा। अपने युग की इसी पृष्ठभूमि में केशव आचार्य पहले थे कवि बाद में। इसलिए उनका काव्य उनके आचार्यत्व का अनुगामी रहा है। केशव को मूलतः आचार्य मान कर ही उनका मूल्यांकन किया जा संकता है और साहित्य में उनका उचित स्थान निर्धारित किया जा सकता है।

7.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने केशव के आचार्यत्व का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) केशव की कविप्रिया कितने प्रभावों में विभक्त है

क) 16 ख) 18 ग) 17 घ) 20

2) केशव किस राजा के आश्रय में रहते थे?

क) राजा जयसिंह ख) राजा मानसिंह
ग) राजा इन्द्रजीत सिंह घ) महाराणा प्रताप सिंह

3) किस विद्वान का मत हे कि केशव का काव्य–सिद्धांत काव्य–शास्त्र की पृष्ठभूमि में ही उत्पन्न हुए हैं–

क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ख) डॉ. बच्चन सिंह
ग) आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र घ) डॉ. भगीरथ मिश्र

4) केशवदास का सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ कौन–सा है?

क) रामचंद्रिका ख) रसप्रिया
ग) रतनवाबनी घ) छंदमाला

5) केशवदास को 'कठिन काव्य का प्रेत' किस आलोचक ने कहा है?

क) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

ख) डॉ. रामकुमार वर्मा

ग) डॉ. मोहनलाल मिश्र

घ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

6) केशवदास ने कविप्रिया में कितने अलंकारों का निरूपण किया है?

क) 70 ख) 50 ग) 36 घ) 27

7) केशव को आचार्यात्व प्रदान करने वाली कितनी कृतियाँ हैं–

क) 3 ख) 5 ग) 8 घ) 7

8) केशवदास को हिन्दी का प्रथम रीतिकालिन कवि किसने माना?

क) आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ख) डॉ. नागेन्द्र

ग) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त घ) डॉ. बच्चन सिंह

प्र) रिक्त स्थान भरो :–

1) केशव .....के पण्डित थे।

2) .....अलंकार में केशव ने दण्डी का ही अनुसरण किया है।

3) केशव की मध्य नायिका .....की होती है।

4) रसिकप्रिया ..... प्रभावों में विभक्त है।

5) .....और साहित्य–दर्पण की ही भांति केशव ने नायक के आठ गुण माने हैं।

6) केशव ने ..... को अभिव्यक्ति का साधन माना है।

प्र) सही या गलत :–

1) केशव की मध्य नायिका चार प्रकार की है। ( )

2) 'युक्त' केशव का नवीन अलंकार नहीं है। ( )

3) केशव ने विवाद एवं अधि दो नवीन व्याभिचारी भाव माने हैं। ( )

4) केशव से पहले ही हिन्दी में नायिका–भेद लिखने की परम्परा पड़ चुकी थी। ( )

5) अनुभावों के विषय में केशव का मत भिन्न है। ( )

6) अलंकार के क्षेत्र में केशव मम्मट से प्रभावित थे। ( )

7.6 कठिन शब्द

1) दीक्षा – गुरु द्वारा शिष्य को दी गई आध्यात्मिक दीक्षा, उपनयन संस्कार
2) गर्भित – गर्भ से युक्त
3) व्याख्याता – भाषण करने वाला
4) सजातीय – एक ही जाति का
5) कलापक्ष – भाषा, अलंकार आदि का विवेचन
6) विप्रलंभ – विरह,वियोग, अलगाव

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्नः 1 केशव के आचार्यत्व पर प्रकाश डालिए।

उतरः _____

_____

_____

_____

_____

प्रश्नः 2 केशव के आचार्यत्व की समीक्षा कीजिए।

उतरः _____

_____

_____

_____

_____

7.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. 16 2. राजा इन्द्रजीत सिंह 3. डॉ. भगीरथ मिश्र 4. रामचन्द्रिका 5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 6. 36 7. 3 8. डॉ. नागेन्द्र

रिक्त स्थानः 1. पिंगल–शास्त्र 2. उपमा 3. तीन 4. 16 5. दश–रूपक 6. छंद

सही या गलतः 1. गलत 2.गलत 3.सही 4. सही 5. सही 6. गलत

7.9 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकालीन काव्य की भूमिका– डॉ. नगेन्द्र 1953 नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि– द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2020, श्री विनोद मंदिर पुस्तक, आगरा।
3. प्राचीन प्रतिनिधि कवि और उनका काव्य– जीवन प्रकाश जोशी।

केशव का कवित्व

रूपरेखा

8.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
8.2 प्रस्तावना
8.3 केशव का कवित्व
8.4 सारांश
8.5 स्व–मूल्यांकन
- बहुविकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही और गलत

8.6 कठिन शब्द
8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.8 उत्तर कुंजी
8.9 पठनीय पुस्तकें

8.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको केशव के कवित्व से अवगत करवाना है। इससे भी परिचित होंगे कि केशव रीतिकाल की रीतिबद्ध काव्य धारा के आचार्य एवं दरबारी कवि थे। इससे भी अवगत होंगे कि केशव को आचार्यत्व प्रदान करने वाले तीन लक्षण ग्रन्थ–कविप्रिया, रसिकप्रिया और छन्दमाला हैं।

अपेक्षित परिणाम –प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त विद्यार्थी केशव के कवित्व को समझेंगे, यह भी जानेगें कि केशव रीतिकाल की रीतिबद्ध काव्य धारा के आचार्य एवं दरबारी कवि तथा केशव को आचार्यत्व प्रदान करने वाले तीन लक्षण ग्रन्थ–कविप्रिया, रसिकप्रिया और छन्द्वमाला हैं,।

8.2 प्रस्तावना

प्रेषणीयता और ग्रहण–शीलता का कला के क्षेत्र में गहरा सम्बन्ध है। इन दोनों का सन्तुलन ही कला की उत्कृष्टता का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूल्य है। ग्रहण–शीलता का माध्यम–अर्थ का प्रवाह है। जब पाठक को अर्थ–प्राप्ति में बाधा पड़ती है या अर्थ की पकड़ नहीं हो पाती, वहीं कला में दुरूहता आ जाती है। यही दुरूहता क्लिष्टत्व का पर्याय है। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि काव्य को ग्रहण न कर पाना, श्रोता या पाठक की अक्षमता है। ऐसे विद्वान, पाठक से भी उतने ही ज्ञान और सहृदयता की अपेक्षा रखते हैं जितना कि विवेच्य कवि को रचना करते समय उपलब्ध रहता है।

एक और मान्यता यह भी है कि कविता भावों की सहज अभिव्यक्ति होती है। इस 'सहज' वाले मूल्य को लेकर ही अलंकार आदि का निषेध किया जाता है क्योंकि जहां चमत्कार–विधान होगा, वहां काव्य में मर्म को छूने की क्षमता नहीं रहती। केशवदास पर आरोप लगाते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा है– ''पांडित्य–प्रदर्शन की रूचि, चमत्कार–विधान की प्रेरणा और श्रृंगारिक चित्रों को अंकित करने में आनन्द की भावना ने केशव को काव्योचित कल्पना, सहृदयता और मार्मिकता से काम नहीं लेने दिया।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपनी सशक्त लेखनी से केशव के कवित्व पर आक्षेप लगाते हुए कहा– ''केशव को कवि–हृदय नहीं मिला था उन में वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए', आचार्य शुक्ल बड़े सशक्त आलोचक थे परिणामस्वरूप उन के बाद के प्रायः सभी आलोचकों ने अन्धानुकरण करते हुए या तो पिष्टपेषण किया या उन्हीं की व्याख्या करते हुए केशव की आलोचना की। आचार्य शुक्ल द्वारा केशव के कवित्व को लेकर की गई आलोचना का एक कारण यह था कि वे कविता की कसौटी लोक कल्याण को मानते थे। तुलसीदास की कविता में लोक कल्याण की भावना ओतप्रोत है अतः उन की कविता को आदर्श मानकर, इसी कसौटी पर केशव तथा अन्य रीतिकालीन कवियों का भी मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप शुक्ल जी केशव के साथ ही नहीं, अपितु रीतिकालीन किसी भी कवि के साथ न्याय न कर सके। जबकि किसी भी कवि की आलोचना तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए किन्तु केशव के कवित्व का मूल्यांकन करते समय प्रायः लोगों ने तत्कालीन उपस्थितियों की ओर ध्यान नहीं दिया। अन्यथा हिन्दी साहित्य में केशव सम्बन्धी इतना विवाद द्विगुणित होकर न फैलता।

केशव उत्तर मध्य–काल की देन है। उनके समय और उसकी प्रवृत्तियों ने ही उन्हें प्रभावित किया था। भक्ति काल के बाद ऐसा समय आ गया था, जब कविगण राजदरबारों की शोभा माने जाने लगे थे। यों तो वीरगाथा काल में भी कवियों को राज्याश्रय मिलता था, किन्तु वह समय युद्धों और संघर्षों का था। केशव का समय एक नई संस्कृति के संक्रमण का समय था। राजाओं और सामन्तों में भोग–विलास और ऐश्वर्य–प्रदर्शन की प्रवृत्ति भड़क उठी थी। अतिशय साज–सज्जा, चमक–दमक और वैभव का भिन्न–भिन्न साधनों से भोग करना–राजदरबारों की शान है। अतः सामान्य समाज कैसा भी रहा हो, दरबारी कवियों का सहज झुकाव अपने चतुर्दिक बिखरे हुए वातावरण की ओर ही रहा।

8.3 केशव का कवित्व

केशव रीतिकाल की रीतिबद्ध काव्य धारा के आचार्य एवं दरबारी कवि थे। वह संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे, जिसका प्रभाव उनके काव्य में अधिक है। उनका मूल्यांकन कवित्व और आचर्यत्व दोनों के रूप में किया जाता है। केशव को आचार्यत्व प्रदान करने वाले तीन लक्षण ग्रन्थ– कविप्रिया, रसिकप्रिया और छन्दमाला हैं। तथा रामचंद्रिका और वीरसिंह देव चरित दो महाकाव्यों के आधार पर इन्हें कवि भी माना जाता है।

कवि के लिए जिस भावुकता, अनुभूति तन्मयता एवं संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है, वे हमें इनके काव्य रामचंद्रिका में मिलती है, किन्तु आलोचना जगत में उनके काव्य पर अनेक दोषारोपण किए गए हैं। किसी ने उन्हें हृदयहीन कहा है तो किसी ने कठिन काव्य का प्रेत।

'शुक्लजी' ने तो यहां तक कह दिया कि 'केशव को कवि– हृदय नहीं मिलता था, उनमें वो सहृदयता एवं भावुकता नहीं थी, जो एक कवि में होनी चाहिए।

किन्तु केशव सामन्ती वातावरण से प्रभावित थे, सामन्तों का ध्यान, भोग–विलास, परकीय प्रेम आदि की ओर लगा रहता था। अपने युग की इसी पृष्ठभूमि के कारण केशव ने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना ही मुख्य ध्येय समझा। उनमें भावुकता, सहृदयता थी किन्तु चमत्कार प्रियता अलंकारों एवं छदों के प्रति अतिशय और मोह के कारण

वे उसका प्रकाशन नहीं कर सके। अतः ये सभी आरोप पंडित्य प्रदर्शन की रूचि और अलंकार–प्रियता के कारण ही लगे। रामचंद्रिका में ऐसे स्थल हैं जहाँ उनकी भावुकता के दर्शन होते हैं–

1) दशरथ का पुत्र प्रेम–

दशरथ को पुत्रों की प्राप्ति वृद्धावस्था में हुई थी, जिसे कारण वह उनसे बहुत अधिक स्नेह करते थे। जब विश्वामित्र यज्ञ–रक्षा के निमित राम–लक्ष्मण को लेने आते हैं तो दशरथ बहुत तर्क–वितर्क के पश्चात् पुत्रों को उनके साथ भेज देते हैं, पुत्रों के जाने के पश्चात् दशरथ की स्थिति का वर्णन बड़ा ही भावपूर्ण है। कवि ने विवश पिता की असहन वेदना की मौन द्वारा सफल व्यंजना की है–

राम चलत नृप के जुग लोचन
वारि भरत में वारि रोचन

पावन परि ऋषि के सजि मौनहिं,
केशव अठे गए भीतर भौनहि।।

2) लक्ष्मण का भ्रातृ–प्रेम

श्रीराम जब वन–गमन के लिये तैयार हो जाते हैं तो लक्ष्मण को राजकार्यों की देख–भाल और भरत के सहयोग का उपदेश देते हैं। किन्तु लक्ष्मण का हृदय करूणा से आर्द्र हो उठता है। वह तो मात्र श्रीराम के सेवक हैं। लक्ष्मण कहते हैं–

शासन मेरी जाई क्यों जीवन मेरे हाथ।
ऐसो कैसे बूझिए, घर सेवक का साथ।।

3) माताओं की करुण दशा

भरत अध्योध्यावासियों के साथ वन से भगवान राम को अयोध्या लौटाने जाते हैं। कौशल्या आदि मातायें भी उनके साथ चित्रकूट जाती हैं। भगवान राम उनसे पिता का कुशल समाचार पूछते हैं तब मातायें मौन रहकर अश्रुपात द्वारा बिना कुछ कहे ही बहुत कुछ कह देती है। यह प्रसंग अत्यन्त भावपूर्ण है–

तब पूछियो रघुराई, सुख हैं पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ, क्रम तें उठीं सब रोइ।।

4) श्रीराम की शोक–विहल दशा

सीता हरण के पश्चात राम के हृदय में स्वभाविक रूप से अनेक तर्क–वितर्क उठते हैं। वह लक्ष्मण से कहते हैं कि कहीं सीता उन्हें ढूंढने वन में तो नहीं गयी, अथवा तुमसे कुछ कहा–सुनी तो नहीं हुई आदि–

निज देखौ नहीं शुभ गीवहि सीतहि करण कौन कहौं अबही।
अति मोहित के बन मांझ गई सुर मारग में मृग मारयो जहीं।।

5) विरहिणी सीता की मनोदशा

अशोक वाटिका में हनुमान द्वारा प्रियतम की मुद्रिका को पाकर सीता हर्ष अनुभव करने के स्थान पर विषाद एवं शोक में डूब जाती है। वह अंगूठी को सम्बोधित करते हुए कहती है–

श्री पुर में वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तिनय की, को करिहै परतीति।।

6) लक्ष्मण की मूर्च्छा का प्रसंग

लक्ष्मण जो पुत्र से अधिक आज्ञाकारी, मित्र से अधिक सहायक, और भक्त से अधिक श्रद्धालु था तथा जिसने शीत, ग्रीष्म एवं झंझावातों की चिन्ता न करते हुए सेवक धर्म का तपस्वी की भांति कठोरता से पालन किया था, उसके मुर्छित होने पर हृदय का बांध टूटना स्वाभाविक था। इस अवसर पर केशव ने श्रीराम की मनोव्यथा तथा शोक का मार्मिक वर्णन किया है–

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो
नैनन ते न रहयो जल रोक्यो
बारक लक्ष्मण मोहिं बिलोकी।
मो कहै प्राण चले तजि रोको।

7) रावण का पुत्र–शोक

लक्ष्मण द्वारा मेघनाथ का वध किये जाने पर रावण पर एकाएक दुःख का पहाड़ टूट पड़ता है। कठोर हृदय भी शोक–विछल हो उठता है और वह पुत्र–शोक में करुण विलाप करता है–

आश्रु आवित्य लल, पवन पावक प्रबल,
चंद आनन्द भय, त्रास जग को हरौ।।

8) सीता की पति–निष्ठा

'रामचंद्रिका' की सीता पतिपरायणा आदर्श पत्नी है। चातक की भांति उसकी निष्ठा भी निष्कलंक है। 14 वर्ष का वनवास काटकर जब राम लोकमर्यादा की स्थापना हेतु निरपराधिनी सीता को वनवास देते हैं किन्तु कुश द्वारा राम की सेना की पराजय का समाचार सुनकर सीता व्याकुल हो उठती है और उससे कहती है–

पापि कहाँ हति बापहि जेहौ। लोक चतुर्दस और न पैहौ।
राजकुमार कहै नहिं कोऊ। जारज जाइ कहावहु दोऊ।।

9) हनुमान की दनिता का प्रसंग

जब हनुमान सीता की खोज करके लौटते हैं, तब राम उनकी प्रशंसा करते हैं। हनुमान अपनी प्रशंसा सुनकर भाव–विभोर हो जाते हैं। वह कहते हैं कि मैंने कुछ भी तो पराक्रम नहीं दिखाया–

गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहि लाई वार।
कहकव्यों मैं बल रंक। अति मृतक जारी लंक।।

8.4 सारांश

वस्तुतः केशव अलंकारप्रिय और चमत्कारवादी कवि थे। उनकी आत्मा और व्यक्तित्व कलामय थे। ऐसी जनश्रुति है कि जब कोई सम्पन्न व्यक्ति किसी कवि को विदाई देना चाहता था तो उससे केशव की कविता का अर्थ पूछता था। इस सम्बन्ध में यह उक्ति प्रचलित थी–

कवि को देन न चहै विदाई।
पूछै केशव की कविताई।।

यद्यपि केशव की कृत्तियों में भावुकता का पूर्ण विकास परिलक्षित नहीं होता तथापि उन्हें हृदयदर्शन कहना अन्याय है। वह रसों को भी अलंकार के अन्तर्गत मानते थे। अतः उनके काव्यों को पूर्णतः रस–सिद्धांत की कसौटी पर कसना न्याय संगत नहीं है। इस दृष्टि से यदि केशव के काव्य का मूल्यांकन करें तो निःसंदेह कवित्व शक्ति के दर्शन होते हैं।

केशव की साहित्य–कारिता के पीछे एक प्रतिबद्धता थी। उस प्रतिबद्धता के प्रकाश में यदि केशव में क्लिष्टत्व ढूंढा जाए तो यह व्यर्थ होगा। तत्कालीन श्रोताओं की रूचि ही ऐसी थी कि चमत्कार से ही उन की मानसिक–वासना की तृप्ति होती थी। राजदरबार की चकाचौंध में केशव भ्रमित हो गए। उन्होंने यह नहीं देखा कि इस कृत्रिम वातावरण के बाहर भी श्रोताओं का एक व्यापक समूह है, जो कविता को जन–जन की धरोहर समझ कर उसे आदर देता है। कबीर, मीरा, सूर और तुलसी की कलाकारिता का सम्मान अपेक्षतयः अधिक व्यापक जन–मानस में था।

यदि केशव ने राजदरबारों की चकाचौंध से स्वयं को बचा लिया होता तो निश्चय ही उनके द्वारा व्यापक प्रयोजन वाली कला का जन्म हुआ होता। निम्नलिखित प्रसंग कितना मार्मिक है– केशव द्वारा ही विरचित है–

बहु बाग तड़ाग तरंगिनी तीर तमाल की छाँह विलोकि भली।
घटिका इक बैठत है सुख पाय, बिछाय तहाँ कुस कास थली।।
मग को श्रम श्रीपति दूर करैं, सिय के सुभ वाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव, चंचल चारू दृगंतल सों।।

जो कवि इतना मार्मिक और सरल वर्णन कर सकता है, वह निश्चय ही सामान्य पाठकों के लिए भी लिख सकता था। इसी प्रकार जहां वे श्लेष और विरोधाभास में फंसकर उपमाएं देते हैं तो सामान्य पाठक अर्थों की झाड़ियों में मार्ग ढूंढने का प्रयत्न कर उठता है–

पाण्डव की प्रतिमा सम देखो, अर्जुन भीम महामति लेखों है
सुभगा सम दीपित पूरी, सिन्दुर ओ तितकालवि रुरि।

जो कविता सहज ग्राह्म न हो, उसके लिए पाठक को असहृदय कहना उचित नहीं है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि केशव में वह प्रतिभा विद्यमान थीं जो उन्हें सभी प्रकार के पाठकों का कवि बना सकती थी। किन्तु वे जिस सामन्त वर्ग की प्रसन्नता के लिए लिखते थे, उसने उन्हें अपने आकर्षणों में जकड़ लिया था। इसमें भी केशव का कोई दोष नहीं है, वे अपने युग–जीवन के प्रति सचेत थे। यदि उनके समग्र साहित्य का उचित मूल्यांकन किया जाएं तो केशव मध्यकालीन प्रयोगशील कवि सिद्ध होंगे। निस्संदेह उनका काव्य शास्त्रीय विशेषताओं से विभूषित है।

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने केशव के कवित्व, केशव रीतिकाल की रीतिबद्ध काव्य धारा के आचार्य एवं दरबारी कवि अध्ययन किया साथ यह भी जाना कि केशव को आचार्यत्व प्रदान करने वाले तीन लक्षण ग्रन्थ–कविप्रिया, रसिकप्रिया और छन्दमाला हैं।

अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय

से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) केशवदास रीतिकाल की किस धारा के आचार्य एवं दरबारी कवि थे?

   क) रीतिसिद्ध ख) रीतिबद्ध ग) रीतिमुक्त घ) रीतिनिद्ध

2) ''केशव को कवि–हृदय नहीं मिला या उन में वह सहृदयता और भावुकता नहीं जो एक कवि में होनी चाहिए'' किस विद्वान ने कहा है?

   क) आचार्यरामचन्द्र शुक्ल ख) नामवर सिंह ग) डॉ. भगीरथ मिश्र घ) विश्वनाथ त्रिपाठी

3) ''राम चलत नृप के जुग लोचन'' किस कवि की पंक्ति है–

   क) घनानंद ख) बिहारी ग) मतिराम घ) केशवदास

4) केशव के काव्य का मूल्यांकन करें तो निःसंदेह किस शक्ति के दर्शन होते हैं–

   क) योग शक्ति ख) कवित्व शक्तिग) मुक्ति शक्ति घ) युक्ति शक्ति

5) 'छन्द्माला' किस कवि की रचना है–

   क) भूषण ख) ठाकुर ग) केशव घ) टोडरमल

6) केशव के विषय में किस विद्यान ने कहा– ''पांडित्य–प्रदर्शन की रूचि, चमत्कार–विद्यान की प्रेरणा और श्रृंगारिक चित्रों को अंकित करने में आनंद की भावना ने केशव को काव्योचित कल्पना, सहृदयता और मार्मिकता से काम नहीं लेने दियां''

   क) बाबू श्यामसुन्दर दास ख) डॉ. नागेन्द्र ग) नामवर सिंह घ) बच्चन सिंह

प्र) रिक्त स्थान भरो :–

1) केशवदास ..... और चमत्कारवादी कवि थे।
2) केशवदास का काव्य ..... विशेषताओं से विभूषित है।
3) केशव उत्तर ..... की देन है।
4) 'रामचंद्रिका' की सीता ..... आदर्श पत्नी है।
5) ..... केशवदास की रचना है।

प्र) सही / गलत :–

1) केशव का समय एक नई संस्कृति के संक्रमण का समय नहीं था। ( )
2) ग्रहण–शीलता का माध्यम–अर्थ का प्रवाह है। ( )

3) केशव सामंती वातावरण से प्रभावित नहीं थे। ( )

4) आचार्यरामचन्द्र शुक्ल ने केशव को रीतिकाल का प्रर्वतक माना है। ( )

5) केशव का मूल्यांकन कवित्व और आचार्यत्व दोनों रूपों में किया जाता है। ( )

8.5 कठिन शब्द

1) वाटिका – बगीचा

2) चतुर्दिक – चारों दिशाओं में

3) अतिशय – अत्यधिक

4) रीतिबद्ध – किसी खास नियम का परंपरा का पालन करना

5) प्रेषणीयता – यह गुण कि कोई कृति पाठक तक पहुचती है।

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्नः 1 केशव के कवित्व पर चर्चा कीजिए।

उतरः _____

_____

_____

_____

_____

प्रश्नः 2 केशव की कवित्व–शक्ति की समीक्षा कीजिए।

उतरः_____

_____

_____

_____

_____

8.7 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. रीतिबद्ध 2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 3. केशवदास 4. कवित्व शक्ति 5. केशव 6. बाबु श्यामसुन्दर दास

रिक्त स्थानः 1. अलंकारप्रिय 2. शास्त्रीय 3. मध्य–काल 4. पतिपरायण 5. वीरसिंह देव चरित

सही या गलतः 1. गलत 2. सही 3. गलत 4. गलत 5. सही

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकालीन काव्य की भूमिका– डॉ. नगेन्द्र 1953 नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली।

2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि– द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2020 श्री विनोद पुस्तक मंदिर।

3. प्राचीन प्रतिनिधि कवि और उनका काव्य– जीवन प्रकाश जोशी।

'रामचन्द्रिका' का महाकाव्यत्व

रूपरेखा

9.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
9.2 प्रस्तावना
9.3 'रामचन्द्रिका' का महाकाव्यत्व
9.4 सारांश
9.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

9.6 कठिन शब्द
9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
9.8 उत्तर कुंजी
9.9 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों ! इस अध्याय का उद्देश्य आपको 'रामचन्द्रिका' के महाकाव्यात्मक लक्षणों से परिचित करवाना।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप–

– महाकाव्य के लक्षणों से परिचित हो सकेंगे।

– केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के महाकाव्यत्व का पूर्ण ज्ञाण प्राप्त कर पाएँगे।

9.2 प्रस्तावना

सदैव पहले रचना का निर्माण होता है और बाद में लक्षणों का निर्माण होता है। महाकाव्यों की रचना के पश्चात् ही प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य–रचना का आधार प्रस्तुत किया। कोई भी प्रतिभा संपन्न कवि शास्त्रीय नियमों में बंध कर नहीं रहता इसी कारण किन्हीं भी दो महाकाव्यों के लक्षण पूरी तरह एक जैसे नहीं होते। भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों में थोड़ी–बहुत विभिन्नता के साथ समान तत्व भी प्राप्त होते हैं।

9.3 'रामचन्द्रिका' का महाकाव्यत्व

सदैव पहले रचना का निर्माण होता है और बाद में लक्षणों का निर्माण होता है। महाकाव्यों की रचना के पश्चात् ही प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य–रचना का आधार प्रस्तुत किया। कोई भी प्रतिभा संपन्न कवि शास्त्रीय नियमों में बंध कर नहीं रहता इसी कारण किन्हीं भी दो महाकाव्यों के लक्षण पूरी तरह एक जैसे नहीं होते। भारतीय और पाश्चात्य

महाकाव्य के लक्षणों में थोड़ी–बहुत विभिन्नता के साथ समान तत्व भी प्राप्त होते हैं। भारतीय आचार्यों की दृष्टि से महाकाव्य के लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. महाकाव्य के आरंभ में मंगलाचरण होना चाहिए।
2. कथा–वस्तु प्रख्यात होनी चाहिए।
3. श्रेष्ठ कुल के उत्पन्न राजा की अन्त में विजय होनी चाहिए।
4. प्रतिनायक के वंश का वर्णन।
5. जीवन का सर्वांग चित्रण। नगर, शैल, चन्द्रोदय, उद्‌या,–सलिल, क्रीड़ा, मधु–पान, रथोत्सव आदि का वर्णन।
6. अवान्तर कथाएं।
7. सर्गबद्धता
8. भिन्न–भिन्न सर्गों में भिन्न–भिन्न छंदों का प्रयोग
9. विभिन्न रसों का वर्णन श्रृंगार, वीर और शांत में से किसी एक रस की प्रमुखता।
10. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति।
11. महान उद्देश्य
12. शिष्ट तथा अलंकृत भाषा का प्रयोग।

उपर्युक्त लक्षण जीवन की समग्रता और व्यापकता पर आधारित हैं। ये भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों से संबंध रखते हैं। संस्कृत साहित्य–शास्त्र के इन्हीं नियमों को आधार बनाकर केशव की रामचंद्रिका के महाकाव्यत्व पर बात की जा सकती है।

केशवदास ने दो प्रबन्ध काव्यों की रचना की है – (1) वीरसिंहदेव चरित और (2) रामचंद्रिका। इनमें से प्रथम तो स्तुति–परक काव्य है, जिसमें राजा वीरसिंहदेव का चरित तो थोड़ा–सा लिखा है, किन्तु उनके दान, लोभ आदि के संवादों की भरमार है। दूसरा काव्य 'रामचंद्रिका' है, जो महाकाव्य की दृष्टि से लिखा गया है। यह काव्य संस्कृत साहित्य–शास्त्र के अनुसार महाकाव्य के लक्षणों को आधार बनाकर लिखा गया है। इसी कारण इसमें आठ से अधिक सर्ग हैं, जिन्हें 'प्रकाश' नाम दिया गया हैं। इसके नायक उच्चकुलोद्‌भव मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं, जो धीरोदात्त क्षत्रिय हैं। राम कथा होने के कारण इसकी विश्व–विश्रुत ऐतिहासिक कथा है। इसमें उच्चवंश के जनकादि अनेक राजाओं का वर्णन है। इसकी कथा में महाकाव्य का सा पूर्ण विस्तार है। प्रत्येक सर्ग में विविध छन्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है और अन्त में छन्द भी बदल गया है। बीच–बीच में अलंकृत एवं रमणीय वर्णनों का भी अभाव नहीं है, क्योंकि सरयू, वाटिका, अयोध्या, सूर्योदय, मिथिला, पंचवटी दंडकवन, गोदावरी, वर्षा, शरद, त्रिवेणी, भारद्वाज आश्रम, युद्ध, पर्वत, जलाशय आदि के वर्णन अत्यन्त सजीव एवं मर्मस्पर्शी हैं। इसमें मुख्यतया श्रृंगार, वीर एवं शान्त रस का प्रभावोत्पादक वर्णन मिलता है। इस काव्य की रचना–शैली भी चमत्कारपूर्ण एवं अलंकृत है, क्योंकि संवादों की चारुता, भावात्मकता, वर्णनों की कलात्कमता एवं अलंकारों की सुन्दर योजना ने इस काव्य को एक कलापूर्ण उत्कृष्ट महाकाव्य की सी गुरुता प्रदान की है। अतएव उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार 'रामचंद्रिका' कलात्मक महाकाव्य की कोटि में आता है, किन्तु कुछ विद्वान, इसे महाकाव्य नहीं मानते। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसके महाकाव्यत्व पर आक्षेप करते हुए लिखा है कि ''उनकी 'रामचंद्रिका' अलग–अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह–सी जान पड़ती है।'' इसका तात्पर्य यह है कि

'रामचंद्रिका' में प्रबन्धात्मकता का अभाव है। इतना अवश्य है कि इसमें वाल्मीकि रामायण तथा तुलसी कृत 'रामचरितमानस' की भाँति कथा–प्रवाह नहीं है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें प्रबन्धात्मकता का सर्वथा अभाव है। इस काव्य को कवि ने गणेश सरस्वती–वन्दना से आरम्भ करके रामचन्द्र की वन्दना की है। वंश–परिचय, रचना–काल तथा रचना का कारण बताकर कथा का श्रीगणेश किया है। राम के जन्म के उपरान्त उनके शैशव काल का वर्णन अवश्य नहीं किया है, किन्तु विश्वामित्र का अयोध्या–आगमन और राम–लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ आश्रम–गमन आदि का वर्णन यथाक्रम ही है। यहाँ राम ताड़का–वध करते हैं और फिर विश्वामित्र के साथ जनकपुर में धनुष–यज्ञ के अन्तर्गत सम्मिलित होते हैं। धनुष–भंग तथा राम–सीता मिलन तक की कथा 'रामचंद्रिका' के बीस प्रकाशों में आई है और यहीं ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है। इस कथा के मूलाधार ग्रन्थ वाल्मीकि 'रामायण', 'आध्यात्का रामायण', 'हनुमन्नाटक' एवं 'प्रसन्नराघव' हैं। तदनन्तर 'रामचंद्रिका' के उत्तरार्द्ध में केशव ने राम–भरत मिलाप, अयोध्या–प्रवेश, राज्यतिलकोत्सव, राम–राज्य वर्णन, शम्बूक–वध, सीता–वनवास, लवकुश–जन्म, लवणासुर–वध, लव–लक्ष्मण युद्ध, राम–सीता मिलन तक तो राम–कथा से सम्बद्ध प्रसंगों को ही लिया है। इसके पश्चात् केशव ने राज्यश्री–निन्दा रामनाम की महत्ता, चौगान, अयोध्या की रौशनी, शयनागर, छप्पन प्रकार के भोजन, बसंत, चन्द्र, शिखनख, सरिता, जलाशय, स्वान, सन्यासी, मथुरा, माहात्म्य, रामचंद्रिका–माहात्म्य आदि का जो वर्णन किया है, वह रामकथा से सर्वथा असम्बद्ध है। किन्तु ऐसा वर्णन तो 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में भी मिलता है। यह पौराणिक शैली है जिसका अनुसरण केशव ने भी किया है। इतना अवश्य है कि केशव ने अपनी रुचि के अनुकूल राम–कथा के कुछ रोचक अंशों का वर्णन अधिक किया है और शेष कथा को जल्दी ही समाप्त कर दिया है। फिर भी यह कहना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता कि 'रामचंद्रिका' अलग–अलग लिखे हुए कुछ वर्णनों का संग्रह है। 'रामचंद्रिका' में एक व्यवस्थित कथा है, उसमें प्रबन्धात्मकता है और सम्वादों के कारण कथा–प्रवाह कुछ विच्छिन सा दिखाई देता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें कथा–प्रवाह बिल्कुल ही नहीं है।

आचार्य शुक्ल ने दूसरा आक्षेप यह लगाया है कि उस कथा के भीतर जो मार्मिक स्थल हैं उनकी ओर केशव का ध्यान बहुत कम गया है। वे ऐसे स्थलों को या तो छोड़ गये हैं या यों ही इतिवृत्तमात्र कहकर चलता कर दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'रामचरितमानस' में तुलसी ने जिन–जिन गम्भीर एवं मार्मिक स्थलों का वर्णन किया है, उनका वर्णन केशव ने अपनी 'रामचंद्रिका' में नहीं किया है। इसका मूल कारण यह है कि केशव विद्वान एवं संस्कृत के पण्डित थे। वे जानते थे कि तुलसी ने जिन स्थलों का वर्णन कर दिया है, यदि उनका वर्णन वे भी करते तो यह पिष्टपेषण ही होता और यह बात केशवदास की सहन न थी। दूसरे आचार्य जगन्नाथ तिवारी का कथन भी ठीक है कि सब की रूचि एक ही समान ही होती और इसी कारण मार्मिकता की भी कोई विशेष कसौटी नहीं हो सकती। जो स्थल एक व्यक्ति को अधिक मार्मिक प्रतीत होते हैं, दूसरे को उतने मार्मिक नहीं प्रतीत होते। अतः 'भिन्न रुचिहिं लोकः' के अनुसार केशव के लिए वे मार्मिक स्थल नहीं हो सकते, जो तुलसी के लिए रहे हैं। केशव एक दरबारी कवि थे। उनके मस्तिष्क में राज्य–दरबार की शोभा, राज्य के आडम्बर, नगर–शोभा, युद्ध, विवाह, सेना जय तैयारी आदि ही अधिक मार्मिक हो सकते थे। इसके अतिरिक्त संस्कृत–साहित्य–शास्त्रों में करुणा एवं शोक से भरे हुए स्थल महाकाव्य के लिए उचित नहीं माने गये हैं। इस कारण केशव ने संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी का अनुसरण करने के कारण ऐसे स्थलों को अपने महाकाव्य के लिए नहीं चुना है, जो करूणा एवं शोक से परिपूर्ण हों, भले ही वे स्थल अधिक मार्मिक हो सकते थे। इतने पर भी केशव की 'रामचंद्रिका' के मार्मिक एवं गम्भीर स्थलों का सर्वथा अभाव भी नहीं है, क्योंकि सीता–स्वयंवर, परशुराम–संवाद, अंगद–रावण–संवाद, राम–रावण–युद्ध आदि ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें केशव ने नवीन उद्भावना–शक्ति के साथ–साथ मौलिकता एवं मार्मिकता का परिचय दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का तीसरा आक्षेप यह है कि दृश्यों की स्थानगत विशेषता केशव की रचनाओं में ढूँढना तो व्यर्थ ही है। इसके बारे में आचार्य जगन्नाथ तिवारी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि विश्वामित्र के वन को विचित्र एवं अलौकिक बताने के लिए केशव ने उन वस्तुओं को भी वहाँ उत्पन्न होता हुआ दिखाया है, जो बिहार प्रान्त में उत्पन्न नहीं होतीं। दूसरे, दिवे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द, ताते मुख मुख सखी कमलौ न चन्द री" का भी स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य तिवारी ने इस बात को अर्थवाद के रूप में स्वीकार किया है, सिद्धान्तवाद के रूप में नहीं। इसीलिए इस कथन के ऊपर केशव को कमल एवं चन्द्रमा के सौन्दर्य को अस्वीकार करने वाला मानना सर्वथा अनुचित है। इसके अतिरिक्त केशव ने अपनी 'रामचंद्रिका' में वर्षा, शरद, आश्रम, सरोवर आदि का वर्णन करते हुए प्रकृति का कहीं आलम्बन रूप में चित्रण किया है, कहीं उद्दीपन रूप में कहीं चन्द्रमा का वर्णन करते हुए उसकी सौम्य सुषमा का वर्णन किया है, तो कहीं प्रभातकालीन सूर्य की अरुणिमा के वर्णन में अद्‌भुत कला–कौशल दिखाया है। इतना अवश्य है कि प्रकृति के कलापूर्ण वर्णन में हृदय की अपेक्षा बुद्धि का प्राधान्य है और इसीलिए चमत्कार–प्रियता तो अधिक दृष्टिगोचर होती है, परन्तु इन वर्णनों में यत्र–तत्र स्थानगत विशेषता के दर्शन न होते हों, ऐसी बात नहीं है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शम्भूनाथसिंह ने भी रामचंद्रिका के महाकाव्यत्व पर आक्षेप करते हुए उसके कतिपय अभावों की ओर संकेत किये हैं और लिखा है कि एक तो 'रामचंद्रिका' में न तो किसी महान आदर्श की स्थापना हो सकी है और न उसमें ऐसी महत् प्रेरणा ही दिखाई देती है, जिससे अभिभूत होकर कवि ने उसकी रचना .की हो' दूसरे, 'महाकाव्य में जिस गम्भीर जीवन दर्शन, लोककल्याणाभिनिवेशी दृष्टिकोण तथा आदर्शोद्‌भूत महानता की आवश्यकता होती है, रामचंद्रिका में उसका अभाव है'। तीसरे 'रामचंद्रिका' में वस्तु–वर्णन की प्रधानता होते हुए भी जीवन के विभिन्न स्वरूपों का स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी उद्‌घाटन नहीं हुआ है।' चौथे, 'रामचंद्रिका चरित्र–चित्रण की दृष्टि से महत्त्वहीन हो गई है।' छठे, 'रामचंद्रिका में उदात शैली है, क्योंकि इसमें 'प्रबुद्ध पाठकों को चमत्कृत करने की क्षमता तो है, पर उनकी भावनाओं को उदबुद्ध करने की शक्ति नहीं है।' सातवें, 'भावाभिव्यंजना, रसवत्ता और प्रभावान्विति की दृष्टि से रामचंद्रिका और भी असफल काव्य है।" आठवें, इसमें महाकाव्य की–सी जीवन–शक्ति एवं प्राणवत्ता नहीं है। अतः आपका मत है कि 'रामचंद्रिका को महाकाव्य क्या, एक सफल प्रबन्धकाव्य भी नहीं माना जा सकता।'

उक्त मत–स्थापनाओं पर तनिक ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि सर्वत्र डॉ. सिंह, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से प्रभावित होकर एवं उनके मतों से अपनी बात की पुष्टि करते हुए 'रामचंद्रिका' में अभावों के दर्शन कर रहे हैं, इसीलिए न उन्हें 'रामचंद्रिका' में प्रबन्धात्मकता के दर्शन हुए हैं और न कहीं भवाभिव्यंजना एवं रसवत्ता दिखाई दी है।

उक्त आक्षेपों पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि जिस तरह तुलसी ने स्वान्तः सुखाय एवं आत्मबोध हेतु 'रामचरितमानस' की रचना की है, उसी तरह केशव ने 'तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागे' कहकर आत्मसुख एवं पाप–प्रक्षालन हेतु 'रामचंद्रिका' की रचना की है और तुलसी के 'स्वान्तःसुखाय में जिस प्रकार पर–हित छिपा हुआ है, उसी प्रकार केशव के आत्मसुख एवं पाप–प्रक्षालन के अन्तर्गत पर–सुख एवं जनता के पाप–प्रक्षालन की भावना विद्यमान रहने के कारण लोक–हित एवं पर–हित विद्यमान है। अतः यह कहना निरर्थक है कि केशव ने किसी महान आदर्श एवं महत् प्रेरणा से प्रेरित होकर 'रामचंद्रिका' का निर्माण नहीं किया है। दूसरे, यह मानना कि 'रामचंद्रिका' में 'रामचरितमानस' के समान गम्भीर जीवन–दर्शन, लोककल्याणाभिनिवेशी दृष्टिकोण एवं आदर्शोद्‌भूत महत्ता के दर्शन नहीं होते। किन्तु ऐसा नहीं है कि 'रामचंद्रिका' में उक्त बातों का उल्लेख तनिक भी नहीं मिलता, क्योंकि ध्यान से देखा जाये तो 'रामचंद्रिका' के दर्शन, भक्ति एवं धर्म–तीनों के बारे में केशव ने अपने समुन्नत विचार व्यक्त किये हैं। 'केशव तुलसी के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे और केशव की चिन्तनभूमि भी अद्वैतवाद की है और तुलसी की अपेक्षा वह बहुत स्पष्ट है।' इतना ही नहीं, केशव ने तुम आदि मध्य अवसान एवं

आदि कहकर राम को अनन्त शक्ति के रूप में अवतरित होते हुए बताया है। साथ ही जीव, जगत, माया, मुक्ति, भक्ति, सत्संग, सन्यास आदि का उल्लेख करते हुए अपनी 'रामचंद्रिका' को ऐसे महान विचारों से समन्वित किया है, जिसे पढ़कर केशव के समस्त जीवन–दर्शन का आभास मिल जाता है तथा मानव सुन्दर भक्ति–भावना को ग्रहण कर अन्त में मुक्ति को भी प्राप्त कर सकता है–

लहै सुभक्ति लोक लोक अन्त मुक्ति होहि ताहि।
पढ़ै कहै सुनै गुनैं जू रामचन्द्र–चन्द्रिकाहि।

अतएव 'रामचंद्रिका' में लोक–पक्ष–समन्वित भक्ति–भावना का निरूपण हुआ है और इसमें जीवन–दर्शन के साथ लोककल्याणाभिनिवेशी दृष्टिकोण के भी दर्शन होते हैं। इसके साथ ही यह मानना कि 'रामचंद्रिका' में जीवन की विविधता का चित्रण ऐसा नहीं मिलता, जैसा कि 'रामचरितमानस' में विद्यमान है, किन्तु जीवन की अन्तबाह्य स्थितियों से केशव पूर्णतया अनभिज्ञ थे – ऐसा कहना भी सर्वथा असंगत है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो केशव के संवादों में वह आनन्द न आता, जिसकी प्रशंसा सभी विद्वान् मुक्त कंठ से करते हैं। केशव अपने संवादों में राजनीतिक दाँव–पेचों के साथ–साथ व्यावहारिक जीवन की गहराई में प्रवेश करके उसके आन्तरिक तथ्यों का मनोवैज्ञानिक निरूपण करते हैं। केशव ने प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति को राम–राम का अधिकारी घोषित करके वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध आवाज बुलन्द करते हुए सामाजिक समता की घोषणा की है और ऊँच–नीच के भेदभाव को दूर करने की ओर भी संकेत किया है। इसीलिए केशव ने कहा है –

रामचन्द्र चरित्र को जु सुने सदा चित लाय।
ताहि पुत्र कतत्र संपति देत श्री रघुराय।।
यज्ञ दान अनेक तीरथ न्ट्रान को फल होय।
नारि का नर विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो कोय।।

इतना ही नहीं, यद्यपि केशव ने 'कामिनी काम की डोरि ग्रसी सी, मीन मनुष्य की बनसी सी' कहकर नारी की निन्दा की है किन्तु केशव 'पावक पापशिक्षा बड़ बारी, जारति है नर को परनारी' कहकर स्वकीया की अपेक्षा परकीया या परनारी से सम्बंध रखने की बुराई करते हैं और इसी प्रसंग में नारी या कामिनी की निन्दा करते हैं। वैसे तुलसी की भाँति कुलवधू या पत्नी के आदर्श का निरूपण करते हुए केशव ने 'नारी धर्म' का भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही बड़ा सुन्दर वर्णन किया है और लिखा है कि पत्नी के लिए पति देव–स्वरूप है। पत्नी को यदि दुःख भी दे, तब भी उसे सुख मानकर शिरोधार्य करना चाहिए। नारी को स्वप्न में भी अपने पति का परित्याग नहीं करना चाहिए – चाहे वह पंगु, गूँगा, बहरा, वृद्ध, बावन, रोगी, पांडु, कुरूप, चोर, व्यभिचारी तथा जुआरी ही क्यों न हो। पति की मृत्यु के बाद भी पत्नी को उसका साथ नहीं छोड़ना चाहिए और सतीत्व ग्रहण करना चाहिए। इसी तरह पुत्र–धर्म, पिता–धर्म, मित्र–धर्म, सत्संगति आदि के निरूपण में व्यावहारिक जीवन की अनेक बातें केशव ने अपनी 'रामचंद्रिका' में बड़े सजीव ढंग से प्रस्तुत की हैं। इतना ही नहीं, प्रताप, ऐश्वर्य, वीरता, आतंक आदि का वर्णन करने में तो केशव अत्यन्त सफल दिखाई देते हैं। जहाँ तक रसवत्ता एवं भावाभिव्यंजना का प्रश्न है, केशव की 'रामचंद्रिका' में वीर, शृंगार एवं शान्त रस का तो बड़ा ही सुन्दर एवं सजीव वर्णन मिलता है। हाँ इतना सत्य है कि राम–कथा के शोक–प्रधान प्रसंग केशव को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सके हैं और इसलिए केशव ने ऐसे शोक एवं करुणापूर्ण प्रसंगों का वर्णन रामचंद्रिका" में नहीं किया है। परन्तु क्या करुणा ही एक ऐसा रस है, जिसके आधार पर कोई काव्य महाकाव्य की श्रेणी में गिना जाता है ? क्या रामचंद्रिका के वीर रस–प्रधान स्थल भावाभिव्यंजना में किसी प्रकार शिथिल एवं असफल दिखाई देते हैं ? यह मानना कि तुलसी की भाँति केशव को कवि–हृदय प्राप्त नहीं हुआ था और कभी दो कवि एक जैसे

प्रतिभा–सम्पन्न नहीं होते। इस दृष्टि से भले ही 'रामचरितमानस' की अपेक्षा 'रामचंद्रिका' की भावाभिव्यंजना एवं वस्तु–वर्णनों में कुछ कमी दिखाई दे, किन्तु इस कमी के कारण उन्हें महाकाव्य न मानना तथा उसे असफल रचना घोषित करना न्यायसंगत नहीं जान पड़ता, जबकि 'रामचंद्रिका' में प्रबन्धात्मकता है, सजीव भाव–निरूपण है, राम का उदात्त चरित्र–चित्रण है, कथोपकथनों में सजीवता एवं नाटकीयता है, उत्कश्ष्ट अलंकार–योजना है और चमत्कारपूर्ण गम्भीर रचना–शैली है।

9.4 सारांश

कथावस्तु की मौलिक योजना की दष्टि से, विविध छन्दों के प्रयोग की दृष्टि से, आलंकारिक चमत्कार की दृष्टि से तथा नाटकीय शैली की उत्कृष्ट संवाद–योजना की दृष्टि से तो 'रामचंद्रिका' का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। साथ ही इसमें साहित्याशास्त्रानुकूल महाकाव्य के सभी लक्षण भी विद्यमान हें। अतः तुलसी के रामचरितमानस के आधार पर 'रामचंद्रिका' की कटु आलोचना करना समीचीन नहीं ज्ञात होता। केशव में उत्कृष्ट काव्य–प्रतिभा विद्यमान थी और साहित्य में भी वे अपने समकालीन कवियों में सबसे बढ़े–चढ़े थे। इसी कारण 'रामचंद्रिका' में सरसता की अपेक्षा कलात्मकता का प्राधान्य अवश्यक हो गया है, किन्तु उसे महाकाव्य न मानना, उसके साथ अन्याय करना है। अतएव 'रामचंद्रिका' को कलात्मक महाकाव्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

9.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने महाकाव्य के लक्षणों से परिचित हुए तथा केशव द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' के महाकाव्यत्व का पूर्ण अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) 'रामचन्द्रिका' किसकी रचना है?

   क) केशवदास ख) मतिराम ग) जसवंत सिंह घ) देव

2) किस विद्वान ने कहा है ''रामचंद्रिका अलग–अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह–सी जान पड़ती है।''

   क) मिश्र बंधुओं ख) बच्चन सिंह ग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल घ) डॉ. नागेन्द्र

3) ''रामचंद्रिका' का रचना काल क्या है–

   क) 1605 ख) 1601 ग) 1700 घ) 1609

4) ''रामचंद्रिका' के महाकाव्यत्व पर आक्षेप लगाते हुए किस विद्यान ने लिखा है कि इसमें किसी महान आदर्श की स्थाना नहीं हो सकी।

   क) गुलाब राय ख) श्यामशंकर शुक्ल 'रसाल'

   ग) डॉ. शम्भूनाथ सिंह घ) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त

5) किस रचना को पढ़कर केशव के समस्त जीवन–दर्शन का आभास मिल जाता है–

क) रामचंद्रिका ख) भाषा–भूषण ग) रसराज घ) कविप्रिया

प्र) रिक्त स्थान भरो :–

1) 'रामचंद्रिका' में लोक पक्ष समन्वित ..... का निरूपण हुआ है।

2) केशव ..... के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे।

3) 'रामचंद्रिका' ..... प्रकाशों में विभक्त है।

4) 'रामचंद्रिका' की रचना–शैली चमत्कारपूर्ण ..... है।

प्र) सही / गलत :–

1) केशवदास ने दो प्रबन्धकाव्यों की रचना की है। ( )

2) केशवदास दरबारी कवि नहीं थे। ( )

3) 'कामिनी काम की डोरि ग्रसी सी, मीन मनुष्य की बनसी सी' केशव की पंक्ति है। ( )

4) केशव तुलसी की भांति कुलवधू या पत्नी के आदर्श का निरूपण करते हैं। ( )

5) 'नारी–धर्म' का भारतीय संस्कृति के अनुकूल वर्णन नहीं किया है। ( )

9.6 प्र) कठिन शब्द :–

1) प्रख्यात – अति प्रसिद्ध

2) सर्वांग – संपूर्ण अंष

3) गमन – प्रस्थान

4) सौम्य – सुंदर, रमणीक

5) उद्‌भावना – मन की अद्‌भुत सूझबूझ

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्नः1 महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर केशव की रामचन्द्रिका का मूल्यांकन कीजिए।

उतरः_____

_____

_____

_____

_____

प्रश्नः2 केशव की रामचन्द्रिका के महाकाव्यत्व पर चर्चा कीजिए।

उत्तरः_____

_____

_____

_____

_____

9.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. केशवदास 2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 3. 1601 4. डॉ. शम्भुनाथ सिंह 5. रामचन्द्रिका

रिक्त स्थानः 1. भक्ति–भावना 2. तुलसीदास 3. 39 4. चमत्कारपूर्ण

सही या गलतः 1. सही 2. गलत 3. सही 4. गलत

9.9 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकालीन काव्य की भूमिका– डॉ. नगेन्द्र 1953 नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली।
2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि– द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2020 श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. प्राचीन प्रतिनिधि कवि और उनका काव्य– जीवन प्रकाश जोशी।

केशव की संवाद योजना

रूपरेखा

10.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
10.2 प्रस्तावना
10.3 केशव की संवाद योजना
10.4 सारांश
10.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

10.6 कठिन शब्द
10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
10.8 उत्तर कुंजी
10.9 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको केशव की संवाद योजना से अवगत कराना है।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप–

– संवाद क्या होते हैं, इससे परिचित हो सकेंगे।

– केशव की संवाद योजना का पूर्ण ज्ञाण प्राप्त कर पाएँगे।

10.2 प्रस्तावना

प्रबन्ध काव्यों और प्रबन्धात्मक कविताओं में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी काव्य में संवाद प्रमुख रूप से तीन कार्य करते हैं– (क) कथा–वस्तु को आगे बढ़ाते हैं। (ख) चरित्र–चित्रण में सहायता देते हैं। (ग) काव्य में रोचकता उत्पन्न करते हैं।

10.3 केशव की संवाद योजना

प्रबन्ध काव्यों और प्रबन्धात्मक कविताओं में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी काव्य में संवाद प्रमुख रूप से तीन कार्य करते हैं– (क) कथा–वस्तु को आगे बढ़ाते हैं। (ख) चरित्र–चित्रण में सहायता देते हैं। (ग) काव्य में रोचकता उत्पन्न करते हैं।

रामचन्द्रिका में केशव के संवाद इन तीनों कार्यों की पूर्ति करने में सफल सिद्ध हुए हैं। केशव के संवादों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है– ''रामचन्द्रिका में केशव को सबसे अधिक सफलता मिली है संवादों में।

रामचन्द्रिका में हमें निम्नलिखित संवाद मिलते हैं।

1. सुमति–विमति–संवाद, 2. रावण–बाणासुर–संवाद, 3. राम–परशुराम–संवाद, 4. परशुराम–वामदेव–संवाद, 5. कैकेयी–भरत–संवाद, 6. राम–जानकी–संवाद, 7. राम–लक्ष्मण–संवाद, 8. राम–शूर्पणखा–संवाद, 9. रावण–हनुमान–संवाद, 10. रावण–अंगद–संवाद, 11. सीता–हनुमान–संवाद, 12. सीता–रावण– संवाद, 13. लवकुश–विभीषण–संवाद आदि।

उपर्युक्त संवादों में कुछ संवाद छोटे हैं। जैसे रावण–बाणासुर– संवाद, राम–शूर्पणखा–संवाद, सीता–रावण–संवाद, सीता–हनुमान– संवाद आदि। राम–परशुराम–संवाद और रावण–अंगद–संवाद पर्याप्त लम्बे हैं।

केशव के संवादों में हमें निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं –

1. **मर्यादा का पालन** – अपने संवादों में तुलसीदास जहां राम विरोधी पात्रों की मर्यादा का ध्यान न रख कर उन पात्रों को तुच्छ बना देते हैं वहीं केशव गांभीर्य का परिचय देते हैं। परशुराम और राम के संवाद में राम की गंभीरता, वृद्धों के प्रति श्रद्धा, संकोच तथा उचित संयत भाषा का प्रयोग इत्यादि सब बातें बड़े कौशल से रखी गई हैं। तुलसीदास के लक्ष्मण का प्रतिनिधित्व यहां पर भरत करते हैं। परशुराम के क्रोध को देखकर ये नम्रता बनाए रखते हैं। राम भी परशुराम के प्रति अपनी श्रद्धा और नम्रता बनाए रखते हैं। परशुराम भी राम को शील–समुद्र इत्यादि कहते जाते हैं। परन्तु धीरे–धीरे दोनों ओर से स्वाभाविक ढंग से क्रोध का विकास होता चला जाता है परन्तु अंत तक दोनों एक दूसरे की मर्यादा का समुचित ध्यान रखते हैं।
2. **पात्रानुकूलता** – केशव के संवादों में सबसे बड़ी विशेषता है पात्रानुकूलता। 'रावण–बाणासुर–संवाद' के अन्तर्गत रावण और बाणासुर दोनों ही बलशाली योद्धा अपने–अपने दर्प, गर्व, ऐश्वर्य, पराक्रम आदि का वर्णन करते हुए बड़े ही अनूठे ढंग से एक–दूसरे पर व्यंग्य–बाणों का प्रहार करते हैं। धनुष तोड़ने के लिए रंगशाला में प्रविष्ट होते ही रावण कहता है–

शुंभ कोदंड दै राजपुत्री कितै।
टूक है तीन कै, जाहूँ लंकाहि लै।

रावण का उक्त कथन सर्वथा अनुकूल है, क्योंकि इससे उसकी अंहकारपूर्ण दर्पोक्ति का आभास मिल रहा है। यह सुनते ही बाणासुर भी बड़े ही करारे व्यंग्य के साथ रावण को उत्तर देता है–

जुपै जिय जोर, तजौ सब सोर।
सरासन तोरि, लहौं सुख–कोरि।।

तब रावण फिर 'केशव कोदंड विषदंड ऐसो खंडै अब, तेरे भुजदण्ड की बड़ी है विडम्बना' आदि कहकर अतिशयोक्ति के साथ अपने प्रचंड पराक्रम की प्रंशसा करता है। इसके उत्तर में बाणासुर बड़े सुन्दर ढंग से चुटकी लेता है–

बहुत बदन जाके। विविध वचन ताके।।

इस प्रकार रावण और बाणासुर दोनों प्रचण्ड पराक्रमी योद्धाओं के अनुकूल ही सारा संवाद आदि के अन्त तक लिखा गया है। यही बात रावण–संवाद में भी है। ये दोनों ही चतुर राजनीतिज्ञ अपनी–अपनी व्यवहार–कुशलता एवं नीतिज्ञता का परिचय देते हुए अपने–अपने स्वभाव एवं पद के अनुकूल वार्तालाप करते हैं। दोनों के उत्तर–प्रत्युत्तर

पात्रानुकूलता के परिचायक हैं। जैसे, रावण सब कुछ जानते हुए भी अंगद के सामने हनुमान की हीनता दिखाता हुआ अनजान बनकर यह पूछता है–

कौन है वह बाँधि के हम देह पूछ सबै दही।

रावण का उक्त कथन उसके गर्व, अहंकार, पराक्रम एवं बल–दर्प का परिचायक है, परन्तु अंगद भी कम कुशल नहीं है। वह तुरन्त रावण के मर्म को समझ जाता है और रावण को नीचा दिखाने के लिए कहता है–

लंक जारि संहारि अक्ष गयो सो बात वृथा कही।

3. **प्रत्युत्पन्न मति** – केशव के संवादों में सर्वत्र प्रत्युत्पनन मति के दर्शन होते हैं, क्योंकि केशव के सभी पात्र बातों में से बात निकालकर तुरन्त उत्तर देते हुए अपनी प्रत्युत्पनन मति का परिचय देते हैं। ये प्रायः ऐसा उत्तर देते हैं जिससे प्रश्नकर्त्ता भी हक्का–बक्का सा रह जाता है। उदाहरण के लिए, रावण और अंगद का वार्तालाप देखिए, जिसमें रावण के प्रश्न करते ही अंगद अपनी प्रत्युत्पनन मति के कारण ऐसा उत्तर देता है, जिसे सुनकर रावण दाँत तले उँगली दबा जाता है–

   (रावण) – राम को काम कहा ?

   (अंगद) – रिपु जीतहिं,

   रावण) – कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ ?

   (अंगद) – बालि बली,

   (रावण) – छल सों,

   (अंगद) – भृगुनन्दन गर्व हर्‌यौ,

   (रावण) – द्विज दीन महा।

   (अंगद) – दीन सु क्यों ? छिति छत्र हर्‌यौ बिन प्राणन हैहयराज कियो।

   (रावण) – हैहय कौन ?

   (अंगद) – बहै बिंसरवों जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो।

4. **शिष्टाचार** – केशव ने अपने संवादों में पात्रोचित शिष्टाचार, शील, मर्यादा आदि का बड़ा ध्यान रेखा है। केशव कहीं भी किसी पात्र के मुख से ऐसे वाक्य नहीं कहलवाते, जो शिष्टाचार एवं सामाजिक मर्यादा के प्रतिकूल हों तथा जिनसे मर्यादा भंग होने की आशंका हो। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण हनुमान–सीता–संवाद में मिलता है। वहाँ हनुमानजी सीताजी से बातें करते हुए सीता के लिए 'जननि, राम के लिए 'रघुनाथ' या 'दशरथ–ननन्दन' तथा दशरथ के लिए 'अजतनय–चन्द' आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए शील, मर्यादा एवं शिष्टाचार का पूरा–पूरा ध्यान रखते हैं–

   (हनुमान) – करि जोरि कह्यो हों पवन–पूत,

   जिय जननि जानि रघुनाथ–दूत।

   (सीता) – रघुनाथ कौन ?

(हनुमान) – दसरत्थ नन्द।

(सीता) – दसरत्थ कौन ?

(हनुमान) – अज–तनय–चन्द।

5. **व्यंग्य एवं वाग्वैदग्ध्य** – केशव के संवादों में व्यंग्य एवं वाग्वैदग्ध्य की भरमार है। केशव के पात्र एक–दूसरे पर इस तरह व्यंग्य–बाण का प्रहार करते हैं कि उन्हें सुनकर अनायास ही नई स्फूर्ति, नये तेज, ओज एवं नये उत्साह का संचार हो जाता है। रावण ने अंगद से जब उसका और पिता बालि का परिचय पूछा, तब अंगद कितने रोचक ढंग से व्यंग्य प्रहार करता हुआ उत्तर देता है, जिसमें वाग्वैदग्ध्य भरा हुआ है–

(रावण) – कौन के सूत

(अंगद) – बालि के।

(रावण) – वह कौन बालि ?

(अंगद) – न जानिये ? काँख चाँप जो तुम्हें सागर सात न्हात बखानिये।

6. **नाटकीयता** – केशव के संवादों में सर्वत्र नाटकीयता का गुण विद्यमान है, क्योंकि 'रामचन्द्रिका' में वर्णित संवादों के समय पाठकों के सामने दोनों पात्रों का–चित्र अनायास ही मानस–पटल पर अंकित हो जाता है और वे दोनों पात्र भी आदि तक अभिनयात्मक ढंग से बातचीत करते हुए उत्तर–प्रत्युत्तर देते चले जाते हैं। उदाहरण–के लिए रावण–बाणासुर संवाद सारा अभिनेयता के गुण से भरा हुआ है, उसमें छोटे–छोटे वाक्यों के अन्तर्गत दोनों बलशाली योद्धा अंपनी–अपनी बातों को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करते हैं और दोनों ही एक–दूसरे की चुटकियाँ लेते हुए मर्मस्थल पर प्रहार करते दिखाई देते हैं जैसे–

रावण कर रहा है– 'वाण न बात तुम्हें कहि आवै।' इसे सुनकर बाण भी तुरन्त उत्तर देता है– 'सोई कहौं जिय तोहि जो भावै।' इस पर रावण तनिक गम्भीर होकर कहता है– 'का करिहौ हम यों ही बरैंगे।' यह सुनकर बाण भी गम्भीरता से उत्तर देता है– 'हैहयराज करी सो करेंगे।'

7. **कूटनीति** – केशव के संवादों में जहाँ नाटकीयता है, वहाँ वे राजनीतिक दाँव–पेंच अथवा कूटनीति से भी भरे हुए हैं। केशव एक दरबारी कवि थे और राज–दरबार में चलने वाले दाँव–पेचों को भली प्रकार जानते थे। यही कारण है कि केशव को अपने संवादों में कूटनीति, भेद–नीति अथवा राजनीतिक दाँव–पेंच के चित्र अंकित करने में बड़ी सफलता मिली है। अंगद–रावण संवाद मानो राजनीतिक दाँव–पेंच का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ रावण और अंगद की वाग्विदग्धता के साथ–साथ कूटनीति एवं राजनीतिक दाँव–पेंच की भी अच्छी झाँकी मिल जाती है। जब रावण यह देखता है कि अंगद पर अपना रौब नहीं जम रहा है, तब वह भेद–नीति का सहारा लेता हुआ उसे अपनी ओर मिलाने के लिए इस तरह उकसाता है–

नील सुखेन हतू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।।
आठहु आठ दिसा बलि दैय अपनौ पद लै, पित जा लगि मारे।।
तो से समूतहिं जाइ कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।।
अंगद संग लै मेरौ सबै दल आजुहि क्यों न हते बपु मारे।

इतना ही नहीं, फिर रावण नीति की दुहाई देता हुआ अपने पिता का प्रतिशोध लेने के लिए अंगद को उभाड़ने के लिए यहाँ तक कहता है–

जो सुत अपने बाप को बैर न लेई प्रकास।
ता सों जीक्त ही मर्यौं लोग कहै तजि आस।।

परन्तु अंगद इतने पर भी नहीं पसीजता और रावण को खरी–खोटी ही सुनाता रहता है, तब रावण फिर अंगद को 'राज्य' का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करता है–

उरसि अंगद लाज कछु गहौ।
जनक घातक बात वृथा कहौ।
सहित लक्ष्मण रामहि संहरो।
सकल बानर–राज तुम्है करौ।।

इतने पर भी अंगद जली–भुनी बातें ही सुनाता चला जाता है, तब रावण भय दिखाकर अंगद को अपनी ओर मिलाने के लिए दाँव चलाता है–

मेरी बड़ी भूल कहा कहाँ रे।
तेरे कही दूत से हाँ रे।।

वै जो सबै चाहत तोहि मार्यौं।
मारों कहा तोहि जो दैव मार्‌यो ।।

रावण का यह बाण भी खाली जाता है, तब रावण अंगद के सामने क्रोध न दिखाकर कुछ ऐसी शर्तें रखता है, जिन्हें राम यदि मान लें तो वह सीता को लौटाने के लिए तैयार हो जायेगा। उन शर्तों में भी सबसे पहली शर्त यह है–

देहि अंगद राज तो कहँ मारि वानर राज को।

परन्तु अंगद पर इस प्रलोभन–भरी शर्त का भी कुछ असर नहीं होता और रावण के सभी कूटनीति भरे दाँव–पेंच व्यर्थ सिद्ध होते हैं। इस तरह केशव के संवाद साम, दाम, दण्ड और भेद के साथ–साथ राजनीति एवं कूटनीति के दाँव–पेंचों से परिपूर्ण हैं।

8. **पात्रानुकूल मनोभावों की व्यंजना** – केशव के संवादों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह दिखाई देती है कि उनमें पात्रों के अनुरूप आंतक, क्रोध, उत्साह आदि की सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी व्यंजना मिलती है। रावण बड़ा ही क्रूर, दुस्साहसी, कठोर, क्रोधी, निष्ठुर एवं निर्मम शासक था, वह देवताओं का प्रबल शत्रु था तथा सारे देवता उसके आतंक के मारे थर्राते थे। इतना ही नहीं, रावण की क्रूरता के मारे उसके दरबार में आतंकपूर्ण वातावरण छाया रहता था, उंसी वातावरण का चित्र केशव ने प्रतिहार के कथन द्वारा बड़े ही सजीव ढंग से अंकित किया है। यहाँ प्रतिहार अभिमानी एवं आतंकवादी रावण के दरबार में बैठे हुए देवताओं को फटकारता हुआ कह रहा है –

पढ़ौ विरंचित ! मौन वेद, जीव ! सोर छंडि रे।
कुबेर ! बेर कै कही, न जच्छ–भीर मंडि रे।।
दिनेस ! जाय दूरि बैठि नारदादि संग ही।
न बोलु चंद मंद बुद्धि ! इद्ध की सभा नहीं ।।

निस्संदेह यह रावण की सभा है, इन्द्र की सभा नहीं है। अतएव यहाँ तो देवताओं को रावण के प्रतिहार के कथनानुसार ही बैठना पड़ेगा। उक्त कथन में रावण के सर्वथा अनुकूल ही उसके दरबार में विद्यमान आतंक की सजीव व्यंजना हुई है।

9. **ध्वनि–सौन्दर्य** – केशव के संवादों में वस्तु–ध्वनि एवं अलंकार–ध्वनि का सौन्दर्य पद–पद पर दृष्टिगोचर होता है। जैसे, हनुमान–रावण–संवाद के अन्तर्गत रावण जब हनुमान से बन्धन का कारण पूछ रहा है, तब हनुमान बड़े ही कौशल के साथ अपने बन्धन का कारण बताते हुए जो उत्तर देते हैं, उसमें वस्तु–ध्वनि की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना मिलती है–

(रावण)– कैसे बँधायो।
(हनुमान)– जो सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौ।

इसका तात्पर्य यह है कि मैंने तो केवल आँख से ही तेरी स्त्री का स्पर्श किया जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे बन्धन में पड़ना पड़ा किन्तु तेरी क्या दशा होगी ? क्योंकि तू तो परायी स्त्री का अपहरण करके ले आया है और तूने तो शरीर से भी उसका स्पर्श किया है। इसी तरह की वस्तु–ध्वनि आदि का सौन्दर्य केशव के संवादों में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

10. **पात्रों का नामांकन** – केशव अपने संवादों में प्रायः 'राम कह्यो', 'रावण बोल्यो' 'अंगद कही' आदि लिखकर पात्र–निर्देश को स्थान देना उचित नहीं समझते। केशव ने नाटकों की भाँति पात्रों के प्रायः अलग से बाहर लिख दिये हैं। इससे काव्य में नाटकीयता आ गई है और काव्य और नाटक का सुन्दर समन्वय हो गया है। जैसे–

रावण – कौन हो पठये सो, कौने, हाँ तुम्हें कहां काम है ?
अंगद – जाति वानर, लंक नायक दूत, अंगद नाम है?

11. **बोलचाल की भाषा का प्रयोग** – केशव ने अपने संवादों में प्रायः धाराप्रवाहपूर्ण दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। इसीलिए इन संवादों में उक्ति–वैचित्र्य के साथ–साथ व्यंग्य–प्रहार विद्यमान है, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के साथ नोंक–झोंक दिखाई देती है और काव्यात्मक सजीवता के साथ–साथ सरलता एवं स्वाभाविकता के भी दर्शन होते हैं। केशव ने सरल भाषा द्वारा ही मीठी–मीठी चुटकियाँ ली हैं और करारे व्यंग्य–प्रहार किये हैं। उदाहरण के लिए 'अंगद–रावण–संवाद' में अंगद की सरल उक्तियों में बोलचाल की भाषा के अन्तर्गत ही कितनी मार्मिकता एवं कितना अर्थ–गाम्भीर्य विद्यमान है।

अंगद – हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ ना ठाउँ कुठाउँ बिलेहैं।
तंत न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ सँग रैहैं।
केशव काम को राम बिसारत और निकाम ते काम न एहैं।
चेति रे चेति अजौ चित अंतर अंतक–लोक अकेलोई जैहैं।

सारांश यह है कि केशव के संवाद नाटकीय सौन्दर्य के साथ–साथ काव्यात्मक सौन्दर्य से भी ओत–प्रोत हैं। इनमें संक्षिप्तता, स्वाभाविकता, पात्रानुकूलता, अभिनेयता आदि के साथ–साथ शिष्टाचार, मर्यादा एवं शील–सौजन्य भी विद्यमान है। केशव के ये संवाद यद्यपि प्रबन्ध की कथा में सर्वत्र उपयुक्त नहीं दिखाई देते, उखड़े–उखड़े से जान पड़ते हैं और इन्हें यदि निकाल भी दिया जाए तो प्रबन्ध–काव्य में कोई अधिक हानि नहीं होगी, तथापि इन सम्वादों का अपना महत्त्व है, क्योंकि ये स्वतन्त्र रूप से विद्यमान होकर बड़े ही रोचक एवं मनोरंजक हैं, इनमें कूटनीति एवं

राजनीतिक दाँव–पेंच भरे हुए हैं, ये कौतूहलवर्द्धक एवं स्फूर्तिदायक हैं। इनमें ओज, उत्साह, क्रोध आदि की सुन्दर व्यंजना हुई है तथा इनमें सभी राजकीय शिष्टाचार के साथ–साथ सामाजिक मर्यादा एवं शील–सौजन्य आदि का सदैव ध्यान रखकर ही वार्तालाप करते हैं। केशव ने जहां शलेष, यमक आदि के द्वारा काव्य में क्लिष्टता एवं दुरूहता उत्पन्न की है, वहाँ रोचकता का भी प्रसार किया है तथा इन संवादों के द्वारा पात्रों का चित्रण भी अभिनयात्मक ढंग से बड़ी सरलतापूर्वक चित्रित किया है। निस्संदेह केशव के ये संवाद लेखक की वाक्पटुता, भाषा–प्रवीणता, व्यवहार–कुशलता, राजनीतिज्ञता, प्रत्युत्पनन मति एवं सूक्ष्म मनोविज्ञान के परिचायक हैं।

10.4 सारांश

निस्संदेह केशव के ये संवाद लेखक की वाक्पटुता, भाषा–प्रवीणता, व्यवहार कुशलता, राजनीतिज्ञता, प्रत्युत्पनन मति एवं सूक्ष्म मनोविज्ञान के परिचायक हैं।

10.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने केशव की संवाद योजना का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) काव्य में संवाद प्रमुख रूप से कितने कार्य करते हैं।

   क) दो ख) चार ग) तीन घ) पांच

2) 'केशवदास' ने अपने संवादों में किस भाषा का प्रयोग किया है–

   क) संस्कृतनिष्ठ ख) धाराप्रवाह पूर्ण दैनिक बोलचान

   ग) सामान्य भाषा घ) विदेशी भाषा

3) किस विद्वान ने कहा है ''रामचंद्रिका को केशव को सबसे अधिक सफलता मिली है संवादों में।''

   क) श्यामसुन्दर दास ख) नामवर सिंह

   ग) डॉ रामकुमार वर्मा घ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

4) "कौन है वह बाँधि के हम देह पूछ सबै दही" – 'रामचन्द्रिका' में किसका कथन है–

   क) राम ख) रावण ग) सीता घ) भरत

5) केशव के संवाद नाटकीय सौन्दर्य के साथ–साथ ओर किस सौन्दर्य से ओत–प्रोत है–

   क) काव्यात्मक सौन्दर्य ख) आवात्मक सौन्दर्य

   ग) शास्त्रीय सौन्दर्य घ) भाषीय सौन्दर्य

6) केशव के संवादों में सबसे बड़ी विशेषता है।

क) स्थानानुकूलता　　ख) पात्रानुकुलता

ग) भाषानुकूलता　　घ) कार्यानुकूलता

प्र2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करे –

क) केशव के संवादों में सर्वत्र .....मीत के दर्शन होते हैं।

ख) केशव ने रामचंद्रिका में दशरथ के लिए ..... शब्द का प्रयोग किया है।

ग) केशव के संवादों में ..... एवं वाग्वैदग्ध्य की भरमार है।

घ) जो सुंदरी तेरी हुई हग सोवत पातक ..... की पंक्ति है।

ङ) प्रबन्ध काव्यों और प्रबन्धात्मक कविताओं में ..... की महत्तवपूर्ण भूमिका है।

प्र3) सही/गलत :–

क) 'रामचन्द्रिका' में केशव के संवाद तीन कार्यों मे सफल सिद्ध हुए है। ( )

ख) केशव के संवादों में नाटकीयता का गुण विद्यमान नहीं है। ( )

ग) केशव दरबारी कवि थे और राज दरबार में चलने वाले दाँव–पेचों को भली प्रकार जानते थे। ( )

घ) वातावरण का चित्र केशव ने सजीव ढंग से नहीं किया है। ( )

10.6 कठिन शब्द :–

क) सयंत– मर्यादित

ख) कूटनीति– गुप्त चाल

ग) प्रलोभन –लोभ उत्पन्न करना

घ) रंगशाला – नाट्यशाला

ङ) वाग्वैदग्ध्य – शब्द की व्यंजना शक्ति द्वारा निकला अर्थ

च) गांभीर्य– गंभीरता

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्नः1 केशव की संवाद–योजना को स्पष्ट कीजिए।

उतरः_____

_____

_____

_____

प्रश्नः 1 केशव की संवाद–योजना का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तरः

10.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. तीन 2. धराप्रवाहपूर्ण 3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 4. रावण 5. काव्यात्मक सौन्दर्य 6. पत्रानुकूलता

रिक्त स्थानः 1. प्रत्युत्पन्न 2. अजतनय–चन्द 3. व्यंग्य 4. हनुमान 5. संवादों

सही या गलतः 1. सही 2. गलत 3. सही 4. गलत

10.9 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकालीन काव्य की भूमिका– डॉ. नगेन्द्र, प्रकाशक; नेशनल पब्लिशिंग कंपनी।
2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि– द्वारिका प्रसाद सक्सेना, 2018, प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर।
3. प्राचीन प्रतिनिधि कवि और उनका काव्य– जीवन प्रकाश जोशी।

सतसई परम्परा में बिहारी

रुपरेखा

11.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
11.2 प्रस्तावना
11.3 सतसई परम्परा में बिहारी
11.4 सारांश
11.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

11.6 कठिन शब्द
11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.8 उत्तर कुंजी
11.9 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको सतसई परम्परा से अवगत कराना है।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप

– सतसई परम्परा में बिहारी का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।

– शृंगारी कवि के रूप में बिहारी से परिचित हो सकेंगे।

– बिहारी सतसई में प्रवाहित शृंगार, भक्ति एवं नीति की त्रिवेणी से अवगत हो सकेंगे।

– बिहारी की भाषा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

'बिहारी सतसई' बिहारी की एकमात्र रचना है और इसी पर उनकी ख्याति अवलंबित है साहित्यिकों और सहृदयों की यह अत्यन्त प्रिय कृति रही है। 'बिहारी सतसई' शृंगार–रस का अमर ग्रन्थ है। भाव, भाषा, अलंकार और नायिका भेद की दृष्टि से यह एक अत्यन्त प्रौढ़ कृति है। बिहारी ने अपने से पूर्व छः सौ वर्ष के काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा। लौकिक जीवन के एक बड़े पक्ष के सौन्दर्य, क्रीड़ा और आनन्द का जैसा सजीव वर्णन बिहारी में पाया जाता है, वैसा आज तक किसी कवि के काव्य में नहीं मिलता। रीतिकाल के दो सौ वर्ष की कड़ी टूटी हुई दिखायी देगी, यदि उसमें से बिहारी का नाम निकाल दिया जाय तो।

11.3 सतसई परम्परा में बिहारी

जो कोऊ रस–रीति को, समुझौ चाहे सार।
पढ़ै बिहारी सतसई, कविता को सिंगार।।

• • • • •

सतसैया के दोहे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

साहित्यिक जन–मानस में प्रचलित ये दोनों लोकप्रिय दोहे स्वतः ही सतसई–परम्परा में बिहारी का महत्त्व–निर्धारण कर देते हैं। ग्रियर्सन, लाल चन्द्रिका के प्रसिद्ध कवि, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास रत्नाकर, पं० पद्म सिंह शर्मा, आदि ने विविध रूपों में महाकवि बिहारी की सतसई की प्रशंसा कर इसका महत्त्व प्रतिपादित किया है।

'सतसई' का अर्थ है सात सौ दोहों, मुक्तकों, का संग्रह। सात सौ ही नहीं, तीन सौ फुटकर पदों, मुक्तक काव्यों, के संकलन की परंपरा हमारे देश में बहुत पुराने समय से चली आ रही है जिनमें सात सौ या सौ पदों के संकलन की प्रथा बहुत लोकप्रिय रही है। प्राचीन समय में कवि प्रायः ही अपने फुटकल–मुक्तक–पदों को संख्यापरक नाम दे दिया करते थे। सौ पद्यों का संग्रह शतक और सात सौ पदों–दोहों, आदि का संग्रह सतसई कहा जाता था अमरुक का 'अमरुक शतक' तथा भर्तृहरि के तीन शतक – शृंगार शतक, भक्ति शतक तथा नीति शतक तो प्रसिद्ध हैं ही, मयूर कवि का सूर्य–स्तुति में रचित 'सूर्यशतक' तथा बाप कवि विरचित चण्डी की स्तुति में लिखा गया 'चण्डी शतक' भी पर्याप्त लोकप्रिय रहे हैं। बाप के समय में तो संस्कृत में शृंगारशतक शतकों की परंपरा पर्याप्त लोकप्रिय हुई। चौदहवीं शती से पूर्व उत्प्रेक्षा वल्लभ ने सुंदरी शतक की रचना की थी, इसके बाद अठारहवीं शती में विश्वेश्वर कवि ने रोमावली शतक' लिखा था। मुबारक, आदि कवियों के 'अलक शतक' और 'तिल शतक' इसी परम्परा में पड़ते हैं। अपनी नयी शृंगारी उद्भावनाओं के कारण ये पर्याप्त लोकप्रिय भी हुए 'तिल शतक' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

ठोड़ी में एक तिल लसै, कवि यों उपमा नत देत।
रूप कूप डूब्यौ कोई, ससी दिखाई देत।।

ऐसे रसिक–प्रिय दोहों की रचना इस कारण भी प्रचुर मात्रा में हो रही थी कि तत्कालीन राजे–रजवाड़ों में मुगलिया दरबारी संस्कृति का प्रभाव था। साथ ही फारसी की शायरी में जिस प्रकार की रचना हो रही थी, हिंदी कवि को उनसे भी होड़ लेनी पड़ रही थी। उनकी प्रतिस्पर्द्धा में ये ऐसे दोहे या मुक्तक लिखने की परंपरा बलवती हुई जिनमें अतिशयोक्ति, वैचित्र्य और शृंगार रस की प्रधानता थी। वस्तुतः संख्यापरक नाम देकर संस्कृत में बहुत से ग्रंथ लिखे गये। हाल नाम से प्रसिद्ध कुन्तल नरेश सातवाहन या शालिवाहल लिखित 'गाथा सप्तशती' इस प्रकार की सात सौ पद्यों की प्रथम रचना है और बिहारी लाल की सतसई इसी परंपरा की कृति है जिसने हिंदी की सतसई परंपरा को काव्य कला की दृष्टि से चरम पर पहुँचा दिया। इस परंपरा का दूसरा श्रेष्ठ ग्रंथ कवि अमरुक या अमरुक कृत 'अमरुक शतक' है जिसमें शृंगार रस के मुक्तकों की प्रधानता है, उसमें भी विप्रलंभ शृंगार का आधिक्य है। 'अमरुकशतक' से भी अधिक महत्ता और लोकप्रियता 12वीं शती के आसपास बंगाल के गोवर्द्धन कवि प्रणीत 'आर्या सप्तशती' की है। 'आर्या' छंद में लिखी जाने के कारण इसे 'आर्याशप्तशती' कहा गया। वस्तुतः यह हाल की 'गाथा सप्तशती' के आदर्श पर ही रची गयी थी। शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृत भाषा को ही उपयुक्त माना जाता था किंतु गोवर्द्धन ने संस्कृ त में 'आर्यासप्तशती' की रचना कर एक चुनौतीपूर्ण कार्य किया किंतु 'गाथा सप्तशती' के अंधानुकरण के कारण उसे अपेक्षित गौरव प्राप्त न हो सका। इस प्रकार सतसई परंपरा में इन तीन ग्रंथों – हाल की 'गाथासप्तशती', 'अमरुकशतक'

तथा गोवर्द्धन कवि की 'आर्यासप्तशती' का विशेष महत्त्व है, यद्यपि 'अमरुकशतक' में केवल सौ पद्य ही हैं। इस परंपरा में उन कृतियों को भी परिगणित किया गया जो संख्यापरक और शृंगार–रस प्रधान हैं। विलृण कवि कृत 'चौर पंचाशिका' या 'चोरी सुरत पंचाशिका' भी इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध रचना है। कवि ने राजकुमारी से गुप्त प्रेम किया था, इसीलिए उस विषय पर रचित कृति का यह नाम रखा गया। इसी प्रकार प्रसिद्ध कवि बाप के श्वसुर तथा श्रीहर्ष के दरबारी कवि मयूर का लिखा 'सूर्यशतक' भी इसी परंपरा का ग्रंथ माना गया है। इस प्रकार शतक और सतसई परंपरा के अनेक ग्रंथों का प्रणयन होता रहा, इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का मत समीचीन है, "प्राकृत और संस्कृत के समान ही अपभ्रंश में भी सतसई और शतकों की परंपरा बनी रही पर दुर्भाग्यवश अब वह साहित्य उपलब्ध नहीं है। हेमचन्द्र के व्याकरण में आए हुए दोहों को देख कर अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि उस समय वह परम्परा जीती अवश्य होगी। इस प्रकार बिहारी की सतसई किसी रीति मनोवृत्ति की उपज नहीं है। यह एक विशाल परंपरा के लगभग अंतिम छोर पर पड़ती है और अपनी परंपरा को संभवतः अंतिम बिन्दु तक ले जाती है।" वस्तुतः बिहारी सतसई की लोकप्रियता ने इस 'संभवत' के लिए स्थान नहीं छोड़ा है अपितु निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सतसई परंपरा में सर्वोपरि ग्रंथ है।

बिहारी जिस सतसई परंपरा में आते हैं, उनका उन्होंने गंभीर दोहन किया था। उन सबके मनोहारी प्रभावों को आत्मसात् करते हुए उनकी कवि–चेतना निर्मित हुई है। किंतु कवि की विभिन्न उक्तियों में सीधे–साधे 'गाथा–सप्तशती', 'आर्याशप्तशती' या हिन्दी के पूर्ववर्ती रीति कवियों केशव, सेनापति, सुंदर, आदि के काव्य की अनुकृति, भावानुकृति मानना उचित नहीं होगा। यदि किसी कवि का कोई पद्य, कवित्त, दोहा, आर्या छंद, आदि उन्होंने गाया भी है, तो मात्र प्रसंग या मान–कल्पना वहाँ से ले कर बिहारी ने उसे अपनी मौलिक कल्पना से ऐसा रूप दे दिया है कि वह और अधिक कांतिमान तथा प्रभावी हो उठता है। आधुनिक काल में प्रारंभ में जब साहित्य में तुलनात्मक समीक्षा का जोर था, बिहारी श्रेष्ठ है या देव, जैसी बहसें चल रही थीं अथवा पं० पद्म सिंह शर्मा जैसे लोग 'गाथा'–सप्तशती' तथा 'आर्यासप्तशती' से तुलना कर उनकी श्रेष्ठता प्रमाणित कर रहे थे – तब ऐसे प्रयत्न हुए कि बिहारी के दोहों को उनके समकक्ष रख कर तुलित कर उन पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन किया गया। किंतु वास्तविकता यह है कि श्रेष्ठ कवि किसी का अनुकरण नहीं करता, अपितु वह उसे अपना बना कर प्रस्तुत करता है। बिहारीलाल के संदर्भ में भी यही बात उचित ठहरती है कि उन्होंने परम्परा–प्राप्त सामग्री का उपयोग करके भी इसे नितांत मौलिक रूप में प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य होंगेः प्राकृत–संस्कृति के दिए गए उद्धरण छात्रों के लिए दुर्बोध होंगे, उनका भावार्थ देकर स्पष्ट किया जायेगा कि बिहारी अपने पूर्ववर्तियों से किस प्रकार अलग हैं और सतसई परंपरा को उनका अपना मौलिक योगदान क्या है।

'गाथा सप्तशती' का मुक्तक पद है कि प्रियप्रवास से अभी तो लौटा है और कुछ समय बाद ही पुनः जाने की बात उठाने लगा, इस पर गाथाकार नायिका से कहलाते हैं, 'हे दुष्कर व्यवहार करने वाले प्रिय, नायिका के केश जो तुम्हारे प्रवास की अवधि में बाँधे नहीं जा सके (व्यथित दशा के कारण), अभी तक उलझे पड़े हैं, सुलझ नहीं पाए हैं और तुम पुनः प्रवास में जाने की बात कहने लगे।"

इसी मनोदशा को बिहारीलाल अपनी ही तरह से चित्रित करते हैं उन्हें केवल केशों की चिंता नहीं है, संपूर्ण शरीर ही प्रिय वियोग में दुबला (दूबर) हो गया था, अभी उस पर स्वास्थ्य का सहज रंग चढ़ा भी नहीं है कि ललन ने चलन की बात पुनः चला दी –

अजैं न आये सहज रंग, बिरह दूबरे गात।
अब ही कहा चलाइयत, ललन चलन की बात।।

तो बिहारी लाल नायिका के केशों की चिंता में ही 'दूसरे' नहीं होते, उनकी चिंता नायिका के पूरे शरीर, स्वास्थ्य की कांति को लेकर हैं। यह मौलिकता उनकी कवि–प्रतिभा सृजित है। इस प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण मिल जाएँगे जहाँ कवि गौवर्द्धन की 'आर्यासप्तशती' के भावों से भी बहुत आगे चला जाता है किंतु 'बिहारी सतसई' की श्रेष्ठता आँकने के लिए केवल ''गाथा सप्तशती', 'अमरुक शतक', 'आर्याशप्तशती' के पदों से तुलना करना ही पर्याप्त नहीं होगा, उन कारकों का विवेचन अभीष्ट होगा जो उसे अपनी परंपरा से विलग कर अद्वितीय बनाते हैं।

बिहारी के दोहों का सबसे बड़ा गुण है कि वे जिस रसराज श्रृंगार का चित्रण करते हैं, उसका माध्यम सामान्य नायिका को बनाया है, यह दूसरी बात है कि यह नायिका कहीं न कहीं लक्षण ग्रंथों या कामशास्त्र में वर्णित नायिकाओं की कोटि में आ जाती हैं, या उस कसौटी पर कस जाती है। इस नायिका को उन्होंने राधा, कृष्ण–प्रेमिका, के रूप में दिखाया है। इसलिए उनके काव्य के ये दो नायक सामान्य हो कर भी विशिष्ट बन जाते हैं – वस्तुतः ही यहाँ 'राधा–कृष्ण' 'सुमिरन कौ बहानौ' भर हैं। उनके क्रिया–कलाप, भाव–अनुभाव, प्रेम–क्रीड़ाओं के विविध रूप सब हमारे समाज के हैं, आधुनिक शब्दावली में कहें तो सामान्य जन के हैं, यथा–

पीठी दिये हौं, नेक मुरि, कर घूँघट–पट टारि।
भरि, गुलाल की मूठि सौं, मई मूठि–सी मारि।।

यह प्रेम की बड़ी स्वाभाविक भंगिमा है, 'नेक मुरि' कर घूँघट वाली चितवन से ऐसी दृष्टि–मूठ कर देना मानो प्रेमी पर गुलाल की मुट्ठी बिखेर दी गयी है, फेंक दी गयी। यहाँ तक तो अभिधापरक अर्थ सामान्य पाठक/श्रोता को अभिभूत करता है किंतु इसमें प्रबुद्ध पाठक के लिए एक और भाव अन्तर्निहित है। 'मूठ मारना' या 'मूठ चलाना' तंत्र शास्त्र के अनुसार एक वशीकरण का उपाय है जिसमें मूठ में तिल, यव (जौ) आदि को अभिमंत्रित कर प्रिय पर वशीकरण के लिए चलाया जाता था। छोटे–से दोहे में इतनी अर्थवत्ता भर देना, बिहारी की ही कला है, इसीलिए उनके दोहे 'देखत में छोटे लगें घाव करें गंभीर' की श्रेणी में आते हैं। बिहारी अपने को – 'रीतिकाल' में भी रखते हैं और उससे बाहर भी, उन्हें भले ही 'रीति सिद्ध' में श्रेणीबद्ध किया जाए किंतु वे उस चौहद्‌यी से बाहर आकर भी अपने पाठक को रस–रिक्त करते हैं।

बिहारी रूप–चित्रण में भी अद्वितीय हैं। यूँ तो नख–शिख वर्णन से पूरा रीति साहित्य अँटा पड़ा है। रूप–सौंदर्य के एक से एक सुंदर चित्र और बिम्ब यहाँ उपलब्ध हैं किंतु 'बिहारी सतसई' अपनी कारीगरी से अपनी नायिका का ऐसा रूप–चित्रण करते हैं जो आज भी पाठक को मनोहर लगता है, भले ही वे नख–शिख चित्रण की पारंपरिक शैली में भी परिलक्षित किए जा सकते हैं। उनका रूप–चित्रण मादक तो है ही, वह प्रभाव में 'मारक' भी है जिसे बांग्ला भाषा में भीषण सौंदर्य कहा जाता है, एक उदाहरण से बात स्पष्ट होगी। केशों की सुन्दरता का वर्णन विविध रूपों में किया गया है किंतु बिहारी वह चित्रण इस रूप में करते हैं कि नायक पर 'मारक' प्रभाव पड़ता है – वह पक्ष–अपक्ष–मार्ग–कुमार्ग – सब भूल जाता है, वह सहसा ही इस बात का विश्वासी हो उठता है कि प्रेम मार्ग (और युद्ध मार्ग) में सब कुछ जायज है –

सहज सचिक्कन, स्यामु–रुचि, सुचि, सुगंध, सुकुमार।
गलतु न मनु पथु अपथु, लखि बिथुरे सुथरे बार।।

तनिक शब्दों पर ध्यान दीजिए – ये केश सहज चिकने, काले, अमल, मनोहर गंध वाले हैं – इन्हें किसी प्रकार से 'ट्रीट' नहीं कराया गया है – (कैमिकल्स का प्रयोग तो उस समय नही था, पर अगरु–चंदन चर्चित केशों का प्रचलन अवश्य था) इस नायिका के केश स्वभाव से ही इन गुणों से पूरित हैं और बिखरे–छितराये बाल आज भी उसी प्रकार

मन मोहते हैं जिससे नायक का मन 'पथ–अपथु' की गणना ही नहीं करता। इस प्रकार उनका सौंदर्य–चित्रण आज के पाठक को भी प्रभावी लगता है।

रूप–चित्रण के इस मादक प्रभाव की चर्चा को छोड़ कर बिहारी सतसई में प्राप्त अनुभाव चित्रण की ओर आते हैं जिसके कारण इन दोहों की लोकप्रियता निरंतर बनी रही है। दोहे जैसे छोटे–से छंद में नायिका के इतने हाव–भावों का चित्रण अनुभाव–चित्रण के द्वारा ही संभव हुआ है। सामान्यतः यह माना जाता है कि दोहे के छोटे कलेवर में प्रबंध काव्य के समान एक भाव की अभिव्यक्ति के लिए कई चेष्टाओं का वर्णन प्रायः असंभव है किंतु बिहारी की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने दोहों में एक साथ कितनी ही आंगिक चेष्टाओं और मनोदशा के अनुरूप अंग–संचालन की क्रियाओं को सफलतापूर्वक चित्रित कर दिया है। इस सम्बंध में दो उदाहरण पर्याप्त होंगे –

कहत, नटत, रझित, खिलत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे मौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।

• • • • •

बतरस–लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं, भौंहनु हंसैं, दैन कहैं नटि जाइ।।

'बिहारी सतसई' की लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण उसकी मधुर रस पगी अत्यंत परिनिष्ठित ब्रज भाषा है। उनसे पूर्व के किसी भी कवि में ब्रजभाषा का ऐसा व्यवस्थित, परिमार्जित और मनोहर रूप नहीं मिलता। अपनी कला से उन्होंने भाषा को अपेक्षित गांभीर्य और अर्थवहन क्षमता प्रदान की। भाषा में अलंकारों का प्रयोग प्रायः उन्होंने स्वाभाविक रूप में किया है, कहीं–कहीं युग–रुचि के अनुसार उसमें वैचित्र्य प्रदर्शन भी मिलता है किंतु ऐसे दोहों की संख्या अधिक नहीं है। भाषा–वैभव की चर्चा, उनकी काव्य–कला पर विचार करते समय करना ही अमल होगा कि बिहारी ने ब्रजभाषा को बहुत ऊँचाई दी, तथा बाद के घनानंद सरीखे लोगों को उसे इतना समृद्ध बनाने का अवसर प्राप्त हो सका।

'बिहारी सतसई' की एक और बड़ी विशेषता है कि उसके कवि को जो लाघव शृंगार के दोहों की रचना में प्राप्त हैं, वही भक्ति के दोहों की रचना में भी देखा जा सकता है। अन्य सतसइयों में शृंगार और भक्ति की ऐसी युगपत धारा दिखाई नहीं देती। भक्ति के साथ नीति–परक दोहे भी बिहारीलाल ने लिखे, वे सीधे हृदय पर प्रभाव डालने में सक्षम हैं। 'सतसई' में मंगलाचरण रूप में उनका यह दोहा तो प्रसिद्ध है ही–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोई।
जा तन की झाईं परैं स्यामु हरित–दुति होई।।

बिहारी ने अनेक कृष्ण लीलाओं का इंगितपूर्ण चित्रण धारण लीला से संबंधित दोहा द्रष्टव्य है –

लोपे कोपे इन्द्र सबै गो, गोपी, गोपाल।।

कहीं वे संत कवियों के समान भक्ति के सच्चे स्वरूप की व्याख्या करते हैं ––

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।
मन काँचे नाचे बृथा, साँचौ राँचे रामु।।

बिहारी कृत नीति के दोहे भी अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं, कहीं–कहीं तो लगता है, वे अपने जीवन–अनुभव का निचोड़ प्रस्तुत कर समाज को एक दिशा दे रहे हैं, दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

बड़े न हुजै गुननू बिनु बिरद बड़ाई पाइ।
कहत धतरे सो किनकु गीनो गढ़यौ न जाइ।।

• • • • •

नर की अरु नल नीर की गति करि जोइ
जे तो नीचो ह्वै चलै ते तौ ऊँचौं होइ।।

11.4 सारांश

इस प्रकार शृंगार, भक्ति और नीति की त्रिवेणी 'बिहारी सतसई' में प्रवाहित होती हुई उसे अन्य सतसइयों से अलग कर एक महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बनाती है। आज के इस भूमंडलीय समय में लगभग पूरे देश के विश्वविद्यालयों में 'बिहारी सतसई' पढ़ी–पढ़ायी जा रही है, यह इसके अक्षय गौरव का बहुत बड़ा प्रमाण है। वस्तुतः बिहारीलाल की सतसई परंपरा का अत्यंत गौरवपूर्ण ग्रंथ है।

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने सतसई परम्परा में बिहारी के स्थान का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) 'बिहारी सतसई' किस ग्रंथ का अमर ग्रंथ है– ?

   क) रस ख) शांत ग) वीर घ) करुणा

2) 'सतसई' का क्या अर्थ है?

   क) पांच सौ दोहों का संग्रह ख) दौ सौ दोहों का संग्रह

   ग) सात सौ दोहों का संग्रह घ) एक सौ दोहों का संग्रह

3) बिहारी रीतिकाल में किस धारा के कवि हैं

   क) रीतिबद्ध ख) रीतिमुक्त ग) रीतिसिद्ध घ) रीतिमंद

4) ''आर्यासप्तशती'' किस कवि की रचना हैं–

   क) बिहारी ख) गोवर्धन ग) पद्माकर घ) मतिराम

5) ''बिहारी सतसई'' को किनकी त्रिवेणी कहते हैं–

   क) नीति, भक्ति और शांत ख) शांत वीर और करुणा

   ग) नीति भक्ति और शृंगार घ) भक्ति करुणा और वीर

6) ''चौर पंचाशिका'' किसकी रचना है।

क) बिहारी ख) विल्हण ग) हेमचन्द्र घ) गोपाल

7) ''बिहारी सतसई'' की भाषा

क) अवधी ख) संस्कृत ग) मैथिली घ) ब्रज

8) ''सतसैया के दोहे, ज्यों नाविक के तीर। देखन में छोटे लगें, धाव करें गंभीर किस कवि की पंक्ति है–

क) तुलसीदास ख) बिहारी ग) कबीर घ) केशवदास

प्र2) रिक्त स्थानों को पूरा करें–

क) ..... परम्परा में बिहारी का स्थान महत्त्वपूर्ण हैं।

ख) विश्वेश्वर कवि ने ..... की सूचना की है।

ग) बिहारी के दोहों का सबसे बड़ा गुण .....चित्रण है।

घ) बिहारी ..... में अद्वितीय है।

ङ) 'सतसई' में ..... का भी कवि ने प्रयोग किया है।

च) बिहारी राजा ..... के आश्रय में रहते थे।

प्र3) सही/गलत :–

क) बिहारी ने अपने से पूर्व छः सौ वर्ष के काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा।( )

ख) बिहारी राधावल्लभ सम्प्रदाय में दिक्षित थे।( )

ग) कवि मयूर ने 'सूर्यशतक' की रचना की।( )

घ) बिहारी कृत नीति के दोहे अत्यंत मार्मिक नहीं हैं।( )

ड.) 'बिहारी सतसई' की भाषा में अलंकारों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है।( )

11.6 कठिन शब्द

क) प्रणयन – पूरा करना

ख) अभिष्ट – अभिप्रेत

ग) परिगणित – जिसका उल्लेख हो चुका हो।

घ) परिलक्षित – अच्छी तरह देखाभाला हुआ।

ङ) दुर्बोध – अत्यंत कठिन

च) प्रबुद्ध – विद्वान, पंडित

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. 'बिहारी सतसई' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

प्र०2. सतसई परम्परा में बिहारी का स्थान निर्धारित कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्र०3.बिहारी सतसई में प्रयुक्त भाषा पर सारगर्भित लेख लिखें।

_____

_____

_____

_____

11.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. रस 2. सात सौ दोहों का संग्रह 3. रीतिबद्ध 4. गोवर्द्धन 5. नीति, भक्ति और शृंगार 6. बिल्हण 7. ब्रज 8. बिहारी

रिक्त स्थानः 1. सतसई 2. रोमावली शतक 3. रसराज–शृंगार 4. रूप–चित्रण 5. मंगलाचरण 6. जयसिंह

सही या गलतः 1. सही 2. गलत 3. सही 4. गलत 5. सही

11.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2018, प्रकाशक ; विनोद पुस्तक मंदिर
2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे
3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त
4. बिहारी सतसई तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र 1970, प्रकाशक; इलाहाबाद लोकभारती
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह 2021, प्रकाशक; इलाहाबाद लोक भारती

बिहारी की रस योजना

रुपरेखा

12.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
12.2 प्रस्तावना
12.3 बिहारी की रस–योजना
12.4 सारांश
12.5 स्व–मूल्यांकन
- बहुविकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

12.6 कठिन शब्द
12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
12.8 उत्तर कुंजी
12.9 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको बिहारी की रस योजना से अवगत कराना है।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप

– रीति–सिद्ध कवि बिहारी के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– बिहारी की रस योजना से अवगत हो सकेंगे।

– रीतिकालीन काव्य शृंगार–प्रधान है इसका अध्ययन कर सकेंगे।

– संयोग शृंगार के अन्तर्गत बिहारी द्वारा विभिन्न क्रिया कलापों का चित्रण किया गया है इससे अवगत हो सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

बिहारी रीति–सिद्ध कवि होने के साथ–साथ एक रससिद्ध कवि भी थे। बिहारीलाल जिस साहित्य–युग में उत्पन्न हुए, उसकी परंपराओं का उन पर प्रभाव पड़ना तो स्वाभाविक ही था किंतु जब वे लीक से अलग हट कर रस पूर्ण दशा मे अपने दोहों की रचना करते हैं तो उनका काव्य अद्वितीय हो उठता है। इस प्रकार उनमें परंपरा और मौलिकता का अत्यंत सफल निर्वाह हुआ है। रसराज शृंगार उनके काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य है, शेष भक्ति तथा शांत रसों की अवस्थिति गौण रूप में उनके काव्य में है। कुछ लोगों ने उनकी व्यंग्योक्तियों तथा प्रकृति–चित्रण की रचनाओं को इनसे इतर माना है किंतु उनके नीति विषयक पद शांत रस में समाहित हो जाते हैं तथा कहीं–कहीं वे भक्ति रस के

सीमांत को भी छूते हैं। बिहारी काव्य में प्रकृति–चित्रण स्वतंत्र रूप में प्राप्त नहीं होता है, वह शृंगार–रस के संयोग या वियोग पक्ष में उनका उद्दीपक बन कर ही आया है। इस प्रकार शृंगार रस 'बिहारी सतसई' का मुख्य रस है जिसमें कहीं–कहीं वियोग–पक्ष का भी चित्रण हुआ है किंतु कवि की वृत्ति उसमें रमी नहीं है, परंपरा–पालन–मात्र के लिए प्रेम का वियोग–पक्ष चित्रित है।

12.3 बिहारी की रस–योजना

बिहारी और अधिकांश रीतिकालीन कवि शृंगार के संयोग पक्ष के ही कवि हैं, वियोग–पक्ष के नहीं। संयोग–पक्ष में भी उनका शृंगार रस जिस रूप में प्रस्तुत हुआ, है। उसके विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत द्रष्टव्य है, "रीतिकाल का काव्य यद्यपि शृंगार–प्रधान है। पर इस शृंगार रस की साधना में जीवन की संतुलित दृष्टि का अभाव है, जैसे सब ओर से चोट खा कर किसी ओर रास्ता न पा कर बुद्धि घर के भीतर सिमट गई हो, जैसे जीवन के व्यापक क्षेत्रों में मनोनिवेश का अवसर न मिलने के कारण मनोरंजन का साधन नारी देह की सीमाओं और चेष्टाओं के अवलोकन–कीर्तन तक ही सीमाबद्ध हो गया हो।" किंतु इस सबके बीच भी वे बिहारी को अलग श्रेणी का कवि मानते हैं, "किंतु एक दूसरे प्रकार के कवि होते हैं जिनका चेतन चित्त आविष्ट नहीं होता। वे शब्दों और उनके अर्थों पर विचार करते रहते हैं और तैरते रहते हैं। शृंगार रस की अभिव्यंजना के समय ऐसे कवि रसोद्दीपन–परक चेष्टाओं की पूरी मूर्ति ध्यान में रखते हैं। वे प्रिया की शोभा, दीप्ति, कांति के साथ–साथ माधुर्य, औदार्य आदि मानस गुणों को भी जब व्यक्त करना चाहते हैं तो उन आंगिक और वाचिक चेष्टाओं का चित्र खींचते हैं तो उन तत्रद्गुणों की मानसिक अवस्था की व्यंजना करते हैं।.....बिहारी इस कला में बड़े पटु हैं।" इस अभिमत से स्पष्ट है कि आचार्य द्विवेदी बिहारी के शृंगार–चित्रण को उस काल के अन्य कवियों से विशिष्ट मानते हैं, जो अपने न्यूनाधिक अभावों के होते हुए भी निश्चय ही विशिष्ट बन पड़ा है।

संयोग शृंगार में प्रिय के रूप–सौंदर्य पर आसक्त होना स्वाभाविक है। इस आसक्ति में प्रेमी (तथा कवि) प्रिया के रूप को विभिन्न रूपों में सराहता है। बिहारी अपनी नायिका के अंग–प्रत्यंग, रीतिकालीन शब्दावली में कहें तो नख–शिख, का चित्रण बडेघ मनोहारी रूप में करते हैं। संपूर्ण मुख, केश, नासिका, अधर, दशन, कपोल, नेत्र, भृकुटि, मस्तक, ग्रीवा, वक्षस्थल, नाभि, उदर–त्रिवली, कटि, जघन, नितम्ब – सब पर उन्होंने दोहे रचे हैं किंतु उनमें विशेष रसपूर्ण वे दोहे हैं जिनमें संपूर्ण मुख–वैभव, नेत्रों का चुम्बकीय प्रभाव, संपूर्ण देहयष्टि का सौंदर्य छलक–छलक पड़ता है। संपूर्ण मुख–छवि के उजास को देखकर अनेक कवियों ने चन्द्रमा को लज्जित किया है किंतु बिहारीलाल उस मुख–सुषमा की कांति की बात इस रूप में करते हैं कि उसका चारों ओर फैलने वाला प्रभाव पूनम के चाँद को भी भुला देता है –

पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कै चहुँ पास।
नित प्रिय पून्यौई रहत, आनन ओप उजास।।

यद्यपि यहाँ अतिशयोक्ति के प्रयोग से चित्रण युग–कवि के निकट जा पहुँचता है किंतु असली बात उस सौंदर्य के सर्वव्यापी रूप की है। चन्द्रमा को विविध रूपों में प्रिया के मुख से तुलित करने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है किंतु घूँघट के बीच से झलकता यह चन्द्रमा मानो (नीले जल वाली) यमुना में अपनी परछाईं दिखाकर अपने आकर्षण में बाँध रहा है –

छिप्यौ छबीलौ मुख लसै नीलै अंचर–चीर।
मनो कलानिधि झलमलै कालिन्दी कैं नीर।।

इस प्रकार बिहारी चन्द्रमा के परंपरित उपमान को नई भंगिमा के साथ अपने में प्रयुक्त करते हैं किंतु रूप चित्रण में संपूर्ण देहयष्टि के लिए उनका नया बिम्ब और उपमान साहित्य में विरल है। इस मनोहारी चित्रण का यह दोहा कल्पतरु की परछाईं को सिंधु में सपल्लव डार (पुष्ट बाहों) के रूप में देखता है –

झीनैं पट मैं झुलमली झलकति आपे अपार।
सुरतरु की मनु सिंधु मैं लखति रूपल्लव डार।।

बिहारी के शृंगार–चित्रण की विशिष्टताओं को रेखांकित करते हुए अधिकांश लोग बिहारी के केवल विभिन्न अंगों के सौंदर्य को ही देखते हैं, क्योंकि देहयष्टि, उसके ओप, गौर वर्ण आदि के समग्र प्रभाव को बिहारी ने जिस प्रकार महत्त्व दिया है, वह पक्ष अलक्षित रह जाता है। पीले रंग (गौर वर्ण) को सोनजुही से तुलित करते हुए करूंभि (पुण्य के) रंग की कंचुकी से सज्जित प्रिया (लोगों को 'नायिका' कहना ही अधिक आता रहता है) जब निकलती है तो उसका कैसा मादक प्रभाव पड़ता होगा यह बिहारी के इस दोहे में देखिए – (रंगों की पहचान कोका कलर, लैमन कलर आदि के माध्यम से प्राप्त करने वाली पीढ़ी को 'कुसुंभी' पुण्य रंग की पहचान का बोध कैसे दिया जाए !!)

सोनजुही–सी जगमगाती अँग–अँग जोबन–जोति
सुरंग, कसूँभी कंचुकी दुरँग देह–दुति होत।।

सोनजुही के पीत रंग में जब लाल कुसुंभी रंग की झलक पड़ती होगी तो प्रिया का वह रूप अपरूप हो उठता होगा। इस रूप–चित्रण में नेत्रों का विशेष महत्त्व है, नेत्रों के विशाल आकार (विशालाक्षी), उनकी चितवन, भंगिमा तथा चांचल्य का चित्रण कवि ने विविध रूपों में किया है। सबसे अधिक कवि झीने पट के बीच से झाँकते चंचल नयनों पर रीझा है –

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन।।

यहाँ नेत्रों को केवल जल में उछलते युग मीन ही नहीं कहा गया है, देव नदी गंगा के निर्मल जल में उछलता बता कर कवि इन नेत्रों और प्रेम के पावित्र्य को प्रकट करना चाहता है। गौर वर्ण पर नीले अचंल की बात अनेक कवियों ने की है किंतु उसमें छिपे मुख (नेत्रों) को देश की सबसे अधिक पवित्र मानी जाने वाली सरिताओं में प्रतिबिम्बित दिखाने में बिहारी का कला–कौशल है। ऊपर सुर–सरिता गंगा में पड़ता प्रतिबिम्ब था, तो यहाँ कालिंदी में पड़ता यह प्रतिबिम्ब दर्शनीय है –

छिप्पौ छबीले मुँहु लसै नीलैं अधर चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी कैं नीर।।

उपर्युक्त दोहे में 'नीर' कह कर कवि अभिव्यंजित करना चाहता है कि यमुना की मंद लहरों में मानो चंद्रमा झलक रहा है। 'नीर' धीर समीर में बहता जल है, इस रूप में कवि का शब्द–चयन–कौशल भी दर्शनीय है।

राधा (नायिका) का चित्रण तो बहुत कवियों ने किया है किंतु प्रेम में वशीकरण प्रभाव का चित्रण कम किया गया है, बिहारी यहाँ श्रीकृष्ण के इसी रूप–प्रभाव का चित्रण करते हुए कहते हैं कि पल–भर को भी उस पर दृष्टि पड़ते ही नेत्र खुले के खुले रह जाते हैं, पल–भर को भी नेत्र झपकते नहीं हैं –

लाल, तिहारे रूप की, कहौ रीति यह कौन
जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौ न।

संयोग शृंगार की अनेक लीलाओं – क्रीड़ाओं, विभिन्न क्रिया–कलापों का चित्रण भी कवि ने किया है। प्रेमिका की अनेक क्रियाएँ प्रिय को लुभाती हैं बिहारी का मन वहाँ रमा है जहाँ प्रिया का रूप–प्रभाव और भी मादक हो उठता है। दहेड़ी पर मटकी रखती प्रिया इसलिए उसके लिए विशेष आकर्षक हो जाती है कि उस स्थिति में उसकी वक्ष और उन्नत होकर प्रिय को आकर्षित कर रहा है, वह चाहता है कि वह इसे 'चिर मुद्रा' बना कर खड़ी रहे –

अहे, दहैंड़ी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि।
नीकैं है छींकैं छुवै, एसेंई रहि, नारि।।

जहाँ तक प्रेम के भाव–प्रकाशन की बात है, प्रेमिका–प्रेमी कितना ही एक–दूसरे से अपनी बात कह लें, कितनी ही लम्बी–लम्बी पातियाँ लिख लें, किंतु फिर भी कुछ अनकहा रह जाता है किंतु संतोष यही है कि वे एक दूसरे की बात समझ रहे हैं। ऐसी ही एक पाती का वर्णन यूँ हुआ है –

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात।।

प्रेमी पर यह अटूट विश्वास है कि वह मेरे हिय की बात अवश्य बूझ रहा होगा, केवल रूप–चित्रण पर बल देने वाली पारंपरिक आलोचना हिय की बात नहीं समझ सकी जबकि बिहारी यहाँ बल इसी हृदय की बात पर दे रहे हैं। प्रेमाभिव्यक्ति के लिए बिहारी ने कितने ही इंगित अपनी नायिका से कराये हैं, प्रेम की ये चेष्टाएँ नायक के हृदय में विविध रूपों में प्रीति उत्पन्न करती हैं, एक उदाहरण द्रष्टव्य होगा–

भौंह ऊँभै, आँचर उलटि, मौर–मोरि, मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, डीठि डीठि सों जोरि।।

दृष्टि से दृष्टि मिलाने की यह मनोहारी क्रिया (चेष्टा) प्रिय को लुभाने के लिए पर्याप्त है। मुरली लुकाने, अधरामृत पान–अभिलाषा, रति, विपरीत रति, चित्रण और संयोग शृंगार के एक से एक मनोहारी चित्र बिहारी ने अपने दोहों में कभी स्पष्टतः तो कभी इंगित में प्रस्तुत किए हैं जिनसे उनकी संयोग शृंगार–चित्रण की अभिरुचि का परिचय मिलता है। अनेक प्रकार की शास्त्रोक्त नायिकाओं की विविध काम–चेष्टाओं का भी चित्रण वे करते हैं, किंतु इनमें वे ही सुन्दर बन पड़े हैं जहाँ बिहारी नायक–नायिका के हृदयगत भावों में अवगाहन करते हैं।

वियोग शृंगार के चित्रण में बिहारी अधिक सफल नहीं हो सके हैं, यहाँ बल उक्ति–वैचित्र्य, अतिश्योक्ति और ऊहात्मक वर्णनों पर अधिक रहा है। एक तो इन दोहों में दरबारी संस्कृति में वाहवाही लूटने का भाव है, कदाचित् बिहारी की प्रतिस्पर्द्धा फारसी शायरों से भी रहती हो जो दूर की कौड़ी लाकर दाद बटोरने के आदि थे, बिहारी के यहाँ भी स्थान–स्थान पर ऐसा देखा जा सकता है। विरह में नायिका के क्षीण हो जाने का ऐसा ही चित्रण बिहारी ने कितने ही दोहों में किया है, हाथ के मसले हुए फूल के समान दूबर गात नायिका सदैव समीप रहने वाली सखियों से भी पहचानी नहीं जा पा रही है –

करकै मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाइ।
सदा समीपिनी सखिनु हूँ नीठि पिछानी जाइ।।
इसी प्रकार इस दूबरि–गाता विरहणि को मृत्यु भी चश्मा लगा कर नहीं देख पा रही है –
करीं बिरह ऐसी, तऊ गैल न छाड़तु नीचु।
दीनैं हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु।।

विरह की तप्त साँसों में हिंडोले–सी छः–सात हाथ इधर से उधर चले जाना और विरह में इतनी तप्त और दग्धावस्था को पहुँच जाने की बात कि जाड़े की ऋतु में भी आले (गीले) वसन ओढ़ कर नायिका के पास जाने की बात बिहारी के वियोग शृंगार के ऊहात्मक चित्रण के चर्चित उदाहरण हैं। ये सब दोहे चमत्कृत भले ही करते हों किंतु रस–दशा का उनमें नितांत अभाव है। इनसे भी उत्तम विरह का उनका यह दोहा कहा जा सकता है जिसमें स्वयं प्रेमी से चल कर नायिका की दशा चुपचाप देखने का आग्रह किया गया है–

जो वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आपु
तो बलि, नैंक बिलौकियै चलि अचकाँ, चुपचापु।।

किंतु ऐसे उदाहरण बिहारी के विरह–वर्णन में अधिक नहीं है, अधिकांशतः तो विभिन्न नायिकाओं को लक्षित कर उक्ति वैचित्र्य प्रदर्शन ही है।

बिहारी के भक्ति और नीति विषयक दोहों का भी अपना साहित्यिक महत्त्व है जिनमें भक्ति और शांत रस की धारा है। कुछ आचार्यों ने भक्ति को स्वतंत्र रस न मान कर, उसे शांत रस के अंतर्गत ही माना है किंतु परवर्ती समय में भक्ति रस की स्वतंत्र सत्ता स्वीकृत हो गयी। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप बिहारी श्रीराधाकृष्ण के भक्त हैं। यद्यपि कुछ लोगों ने 'सतसई' के मंगलाचरण रूप में रखे गये दोहे के आधार पर यह दूर की कौड़ी लाने वाली बात कही कि शृंगारी कवि होने के कारण बिहारी श्रीराधा को श्रीकृष्ण से अधिक महत्त्व दे रहे हैं क्योंकि इसमें भव–बाधा दूर करने का निवेदन पहले श्रीराधा से ही किया गया है –

मेरी भव–बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै स्यामु हरित–दुति होइ।।

किंतु ऐसा नहीं है, अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण की रूप माधुरी, गुण–कथन, आदि का चित्रण वे एक सच्चे कृष्ण–भक्त की भाँति करते हैं, यथा –

सीस–मुकुट कटि–काछनी, कर–मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ, बिहारी लाल।।

श्रीकृष्ण के प्रति बिहारी के हृदय का यह अनुराग विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है, कहीं वे अत्यंत कातर रूप में अनेक तारे हुए भक्तों का उदाहरण देते हुए सख्य भक्ति के अनुरूप अपने आराध्य को चुनौती देते हैं, सूरदास की ही भाँति खुंम ठोंक कर, अकड़ कर खड़े हो जाते हैं कि 'मुरारि' अब देखूँगा कि किस प्रकार मेरा उद्धार आप नहीं करते,–

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबौ, मुरारि।
बीधे मोझौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि।।

कई जगह वे उन्हें सूरदास के समान ही उपालंभ देते हुए श्रीकृष्ण से अपना नैकट्य दर्शाते हैं कि कर दिया होगा, अपने जिस–तिस का उद्धार किंतु मुझे तो आपकी प्रतिज्ञा झूठी दिखाई देती है, आप इसी में इतराते फिरते हो–

बंधु भए का दीन के, को तार्‌यौ रघुराई।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ।।

भाव यही है कि मैं तो आपको तभी दीनबंधु मानूँगा जब आप मेरा उद्धार कर दोगे। इसी शैली में 'जगनायक' को 'जग–बाइ' दुनिया की हवा लग जाने का उपालंभ दिया गया है।

कहीं वे प्रभु की अपार माया का ध्यान करते हुए अपने को आत्म–ग्लानि में गलाते हैं कि हे जीव तूने प्रभु को क्यों नहीं पहचाना–

जगत जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि।।

कहीं वे जीव को लताड़ते हैं कि वह दुख में ही 'हरि–सिमरन' करता है, सुख में उसे पूरी तरह भूल जाता है –

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साई हिं न भूलि।
दई–दई क्यों करतु है, दई–दई सु कबूलि।।

मनुष्य जीवन में भौतिक सुख–समृद्धि के लिए कितनी ही भाग–दौड़, आपाधापी कर ले किंतु उसकी वास्तविक निधि तो प्रभु–भक्ति ही है, बिहारी इस सत्य को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं –

कोऊ कोरिक संग्रहों, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति–बिदारनहार।।

इन सब पदों में भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है, केवल कहीं–कहीं भक्ति में भी वे उक्ति–वैचित्र्य तथा अलंकार–ज्ञान–प्रदर्शन का सहारा लेते हैं, यथा –

अजौं तरयौना ही रह्यो श्रुति सेवत इक रंग,
नाक–बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग।।

किंतु उक्ति–वैचित्र्य के ऐसे दोहे बिहारी की कृष्ण–भक्ति में बहुत कम हैं, श्रीकृष्ण–राधा में अनन्य भक्ति के उनके दोहे भक्ति रस की सरिता से परिचित कराते हैं।

बिहारी के नीति विषयक दोहों में शांत रस के दर्शन होते हैं। छोटे–से दोहे छंद में आये ये नीति वचन सूक्ति रूप में लोक में काफी प्रचलित रहे हैं, यथा –

कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ्यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे के चाम।।

इसी प्रकार –

नर की अरू नल–नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीची ह्वै चलै, तेतो ऊँचौ होइ।।

इन नीतिपरक दोहों में कवि ने अपने जीवन–दर्शन को प्रस्तुत किया है जो उनके जगत् और जीवन को गहरी दृष्टि से देखने के परिणामस्वरूप निसृत हुए हैं। कहीं–कहीं ये दोहे इस रूप में प्रभावित करते हैं कि उन्हें गाँठ बाँध कर रख लेने का मन होता है, यथा –

बड़े न हुजै गुनन बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सौं कनक, गहनो गढ़ो न जाय।।

12.4 सारांश

इस प्रकार बिहारी–काव्य में शृंगार, भक्ति और शांत रस का मनोहारी चित्रण प्राप्त होता है।

12.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने बिहारी की रस योजना का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) बिहारी अधिकांश शृंगार के किस पक्ष के कवि हैं–

क) सहयोग पक्ष ख) वियोग पक्ष ग) मिलन पक्ष घ) भाषा पक्ष

2) ''बिहारी सतसई" में कवि ने मंगलाचरण में किसकी वंदना की है–

क) कृष्ण ख) शिव ग) राधा घ) गणेश

3) बिहारी के नीति विषयक दोहों में किस रस का प्रयोग किया गया है–

क) शांत रस ख) करुण रस ग) वीर रस घ) शृंगार रस

4) बिहारी ने अपने दोहो में किस अलंकार का अधिकांश प्रयोग किया है–

क) उपमा अलंकार ख) अनुप्रास अलंकार

ग) यमक अलंकार घ) दीपक अलंकार

5) बिहारी नीतिपरक दोहो में किस दर्शन को प्रस्तुत करते हैं–

क) भक्ति दर्शन ख) योग दर्शन ग) जीवन दर्शन घ) मुक्ति दर्शन

प्र2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें..

क) ..... के चित्रण में बिहारी अधिक सफल नहीं हुए है।

ख) बिहारी चंद्रमा के परमपरित उपमान को नई .....के साथ प्रयुक्त किया गया है।

ग) संयोग श्रृंगार में प्रिय के ..... पर आसक्त होना स्वाभाविक है।

घ) बिहारी का जन्म ..... में हुआ है।

प्र3) सही/गलत :–

क) बिहारी काव्य में प्रकृति–चित्रण स्वतंत्र रूप में हुआ है। ( )

ख) कवि का शब्द–चयन कौशल भी दर्शनीय है। ( )

ग) बिहारी ने नायिका–वर्णन में उक्ति वैचित्र्य का प्रदर्शन किया है। ( )

घ) 'नर की अरु नल–नीर की गति एकै करि जोई'' केशव की पंक्ति है। ( )

12.6 कठिन शब्द

क) आविष्ट– काम में लगा हुआ

ख) सूक्ति – अच्छी उक्ति

ग) भंगिमा – कुटिलता, वक्रता

घ) 'उपालंभ– शिकायत, निंदा

ङ) परिपाक –पकाया जाना

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. बिहारी रीति–सिद्ध कवि होने के साथ–साथ रस सिद्ध कवि भी थे स्पष्ट करें ?

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०2. बिहारी की रस योजना पर प्रकाश डालें ?

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०3. बिहारी के भक्ति एवं नीति विषयक दोहों के साहित्यिक महत्व का विवेचन करें ?

_____

_____

_____

_____

_____

12.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. संयोग पक्ष 2. राधा 3. शांत रस 4. यमक अलंकार 5. जीवन–दर्शन

रिक्त स्थानः 1. वियोग श्रृंगार 2. भंगिमा 3. रूप–सौन्दर्य 4. 1595

सही या गलतः 1. गलत 2. सही 3. सही 4. गलत

12.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2018, प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर
2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे
3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त
4. बिहारी सतसईः तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र 1970, प्रकाशक; इलाहाबाद लोकभारती
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह 2021, प्रकाशक; इलाहाबाद लोकभारती

बिहारी की बहुज्ञता

रुपरेखा

13.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
13.2 प्रस्तावना
13.3 बिहारी की बहुज्ञता
13.4 सारांश
13.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

13.6 कठिन शब्द
13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
13.8 उत्तर कुंजी
13.9 पठनीय पुस्तकें

13.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियों! इस अध्याय का उद्देश्य आपको बिहारी की बहुज्ञता से अवगत कराना है।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप

– किन दोहों के आधार पर बिहारी की बहुज्ञता प्रमाणित की जाती रही है इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– बिहारी ज्योतिष विद्या के अच्छे ज्ञाता थे इससे परिचित हो सकेंगे।

– बिहारी अपने लोक और परम्परा के सूक्ष्म द्रष्टा थे इससे अवगत हो सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

महाकवि बिहारी की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए उनको बहुज्ञ–बहुल शास्त्रों, आदि का ज्ञाता, सिद्ध करने की परंपरा रीतिकालीन साहित्य की आलोचना में बनी हुई है। कुछ लोगों ने दूर की कौड़ी लाकर ऐसी–ऐसी विद्याओं में बिहारी की गति बतायी है। जिनसे उनका दूर का भी सम्बन्ध नहीं रहा है। इस सम्बन्ध में डॉ. बच्चन सिंह ने बहुत सुचिंतित मत व्यक्त किया है, "परंपरा का रुढ़ अंश बिहारी में एक प्रकार से और मिलता है – निजी जानकारी और पांडित्य प्रदर्शन के रूप में। ऐतिहासिक चेतना के लिए यह आवश्यक है कि परंपरा में रक्षित ज्ञान–विज्ञान की अच्छी जानकारी प्राप्त की जाय, पर उसका उपयोग निजी जानकारी के प्रदर्शन के रूप में नहीं होना चाहिए। यह पांडित्य और जानकारी जब तक चेतनागत नैरंतर्य का अनिवार्य अंग नहीं बन जाती, तब तक कारयित्री प्रतिभा उसका काव्योचित उपयोग नहीं कर सकती।

13.3 बिहारी की बहुज्ञता

बिहारी के कुछ दोहों के आधार पर उन्हें चोटी का गणितज्ञ, वैद्य या ज्योतिषी मान लेना अर्थ का अनर्थ कर बैठना है। यह बात अब इतनी घिस–पिट गयी है कि उसका उल्लेख भी बासीपन की गंध से खाली नहीं है। निजी जानकारियाँ पांडित्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंग है, इसलिए सच्चे कवि को, लोक–हृदय की पहचान करने वाले कवि को – उससे पलायित होना होगा। इस प्रकार का पांडित्य–प्रदर्शन साहित्य के किसी भी क्षेत्र में अभिनंदनीय नहीं कहा जा सकता।" इस दृष्टि से बिहारी को समझने में बिहारी–काव्य को पारंपरिक मूल्यांकन से भी मुक्ति मिल सकेगी। किंतु फिर भी विद्यार्थियों को इस तथ्य से परिचित होना चाहिए कि किन दोहों के आधार पर बिहारी की बहुज्ञता प्रमाणित की जाती रही है। इनमें वे दोहे विशेष आकर्षक बन पड़े हैं जो पांडित्य–प्रदर्शन के लिए नहीं लिखे गए, अपितु उनमें बिहारी का सहज लोक–ज्ञान और परंपरा–ज्ञान सहज रूप में प्रकट होता है। बिहारी की बहुज्ञता का आधार उनके काव्य में प्राप्त तीन प्रकार का शास्त्रीय और लोक परंपरा का ज्ञान है –

(क) शास्त्रों का ज्ञान

(ख) इतिवृत्त का ज्ञान तथा

(ग) लोक–परंपरा का ज्ञान।

शास्त्रीय ज्ञान में बिहारी को निश्चित रूप से ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था जो कुछ उन्हें ज्योतिष विद्या से तो कुछ लोक–परंपरा से प्राप्त हुआ था। ज्योतिष सम्बन्धी उनके ज्ञान–विषयक दोहों में किंचित् दुरूहता भी आ गयी है, उनको सीधे–सीधे समझना सरल कार्य नहीं है। इसीलिए वे दोहे विद्यार्थियों के लिए भी नीरस और जटिल सिद्ध होते हैं। ज्योतिष ग्रन्थ 'जातक–संग्रह' के राजयोग प्रकरण में वर्णित है कि यदि शनि ग्रह तुला, धनु या मीन में हो अथवा इनकी लग्न में पड़ा हो तो वह राजा होता है। ज्योतिष की इस परिगणना को आधार बना कर बिहारी लाल कहते हैं –

सनि–कज्जल चख–झख लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देह।।

प्रसंग इस प्रकार है कि किसी सुअवसर पर नायिका के काजल रंजित नेत्रों की दृष्टि नायक पर पड़ी तो उसके हृदय में प्रेम का उदय हुआ, जिससे उसका शरीर पूरी तरह प्रिया का हो गया, उसने उस पर अधिकार जमा लिया। उसकी इस दशा का वर्णन सखी नायक से कर नायिका को उससे मिलाना चाहती है। इसी बात को ज्योतिष के रंग में रंग वह इस प्रकार कहती है कि काजल सज्जित (शनि का रंग भी काला माना गया है) नेत्र रूपी मीन की लग्न में स्नेह (प्रेम) रूपी बालक का जन्म हुआ है। अतः वह स्नेह–रूपी बालक नृपति – राजा – के रूप में (अपने अबाध अधिकार का प्रयोग करते हुए) समस्त शरीर रूपी देह का शासन कर रहा है, अर्थात् उसके सर्वांग पर प्रेम का प्रभाव है। यहाँ मुख्य बल 'नृपति' होकर शरीर को संपूर्ण रूप में भोगने में है। स्पष्ट है कि ऐसे दोहों का अर्थ करने वालों के भी छक्के छूट जाने की स्थिति है।

इसी प्रकार ज्योतिष का एक और सिद्धांत है कि यदि चन्द्र के अन्तर्गत बुध जैसे सौम्य ग्रह का योग पड़ा हो और वह केन्द्र में ग्याहरवें स्थान पर अथवा त्रिकोण में पड़ा हो तो धनागम, राजमान, संतान–प्राप्ति, आदि अनेक सुख प्राप्त होते हैं। इस सिद्धांत पर आधारित बिहारी का दोहा यह है –

तिय–मुख लखि हीरा–जरी बेंदी बढ़ै विनोद।
सुत सनेह मानौ लियौ विधु पूरन बुध गोद।।

सखी नायक से नायिका की हीरा–जड़ी बिंदी की शोभा प्रशंसा कर उससे मिलने का अति उत्तम अवसर बताती है – स्त्री के मुख पर हीरा–जड़ी बेंदी देख कर, आनन्द बढ़ता है। उसकी शोभा ऐसी शुभ तथा मनोहर है कि मानो पूर्ण चन्द्रमा (मुख) ने सुत–स्नेह से बुध (बिंदी) को अपनी गोद में ले लिया है अर्थात् इस समय नायिका से मिलने में नायक को आनन्द, सुख तथा पुत्र–प्राप्ति का योग है। कहना न होगा कि ऐसे चमत्कृति उत्पन्न करने वाले दोहे दरबारी संस्कृति के परिवेश की देन हैं जिन पर उस समय खूब वाहवाही (दाद) मिलती होगी पर आज ये पाठक को भाव–विभोर नहीं करते। इनसे अच्छे तो उनके वे दोहे हैं जिनमें ज्योतिष के सामान्य लोक–ज्ञान का प्रयोग है, यथा – नायिका का मुख इतना गोरा, उजासपूर्ण है कि चारों ओर उसका प्रकाश पूनम के चन्द्रमा की भाँति ही विकीर्ण रहता है, लोग केवल ज्योतिषी के पत्रे से पता चला पाते हैं कि पूर्णिमा किस दिन है –

पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौई रहै आनन–ओप–उजास।।

इस प्रकार इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि बिहारी को ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था, सामान्य व्यक्ति से अधिक ज्ञान था।

आयुर्वेद–ज्ञान के सम्बंध में उद्धृत किए जाते रहे दोहों में बिहारी का आयुर्वेद के विषय में सामान्य लोक–परंपरा प्राप्त ज्ञान ही दिखाई देता है, उनके आधार पर उन्हें आयुर्वेद का ज्ञाता या पंडित बताना बहुत तर्क संगत नहीं है। उस समय जो बुखार, आदि की सामान्य बीमारियाँ थीं, वैद्यराज नब्ज–ज्ञान द्वारा ही उनका निदान बता देते थे। बुखार में सुदर्शन–रस (एक वनस्पति विशेष) का रस या चूर्ण एक प्रसिद्ध औषधि थी। बिहारी 'सुदर्शन' को श्लेष के चमत्कार से प्रिय दर्शन से सम्बद्ध कर दोहे में चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं –

यह बिनसतु नगु राखि कै जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी विषम जुर जाइयै आई सुदरसनु देहु।।

विषम विरह ज्वर से पीड़ित नग (श्रेष्ठ स्त्री) की रक्षा की कामना है, इसलिए हे प्रिय, तुम शीघ्र आकर इन्हें 'सुदर्शन' – अपने श्रेष्ठ दर्शन रूपी – औषधि देकर इनकी रक्षा करो। सुदर्शन रस अथवा चूर्ण रूप में उस समय इतना ही ख्यात था जितना आज बुखार के लिए 'क्रोसिन' या 'पैरासिटामोल'। अपने इसी लोक–ज्ञान का प्रयोग कर बिहारी ने कई दोहों में सुदर्शन रस की बात कही है। मीराबाई ने भी तो वैद्य से नाड़ी देखने के लिए मना किया था, इसी आधार पर मीराबाई को आयुर्वेदिक का ज्ञान रखने वाली नहीं माना जा सकता–

बाबुल बैद बुलाइया, पकड़ि कै देखि मोरि बाँह।
जाओ बैद घर आपने, करक कलैजे माहिं।।

लगभग इसी रूप में बिहारी कहते हैं कि इस नायिका का रोग एक ही है, वह है प्रिय–मिलन का रोग, वही रोग है, वही निदान है। हाँ, बिहारी इसे अपने श्लेष–प्रयोग की कला से विशिष्ट अवश्य बना देते हैं 'नारी ज्ञानु' में श्लेष है – नाड़ी ज्ञान और दूसरा अर्थ है नारी शरीर और मन का ज्ञान जो उसके प्रिय को है –

मैं लखि नारी–ज्ञानु करि सख्यौ निरधारु यह।
बहई रोग–निदानु वहै, बैदु, औषधि बहै।।

श्लेष आश्रित पद का पहला अर्थ है नाड़ी–ज्ञान अर्थात् नाड़ी–परीक्षा और दूसरा अर्थ नारी–ज्ञान। यहाँ नायिका विरह से व्याकुल है, अर्थात् विरह–ज्वर से पीड़ित है, सखियाँ अनेक उपाय करती हैं किंतु कुछ लाभ नहीं होता। तब

एक सखी उसके रोग का मूल समझ गयी है, उसके प्रेम–रोग का जो आदि कारण है, वही उसका निदान है, वही वैद्य है और वही उसकी औषधि है अर्थात् उसका प्रिय लाकर इस विरह–ज्वरग्रस्ता से मिला दिया जाय– यही रोग का एकमात्र निदान है। इस दोहे में कोई गंभीर आयुर्वेदिक ज्ञान प्रदर्शित नहीं होता, यह तो सामान्य ज्ञान है कि प्रिया के लिए प्रिय ही उसके समस्त रोगों का निदान है। इसी प्रकार यह भी एक लोकप्रसिद्ध ज्ञान है कि पारा नंपुसकता दूर करने की एक प्रसिद्ध औषधि है। जब यही औषधि स्वयं एक नंपुसक वैद्य द्वारा बहुत अधिक धन लेकर तथा बड़े अहसान से किसी को दी जा रही है तो वैद्य की पत्नी भेद–भरी मुस्कान से अपने पति को देखती है (कि अपना तो इलाज कर नहीं सकते, दूसरे को रति–सुख बढ़ाने के लिए पारा दे रहे हैं) –

बहु धनु लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि।
वैद–बधू, हँसि भेद सौं, रही नाह–मुँह चाहि।।

कहना न होगा कि इस पद में भी बिहारी का कोई गंभीर आयुर्वेदिक ज्ञान दिखाई नहीं देता, यह तो सामान्य लोक–ख्यात बात है। इसी प्रकार गर्मियों में बहुत अधिक प्यास, ऐसी प्यास जो कितना भी पानी पी लो बुझ नहीं पाती है, लगना बड़ी सामान्य–सी बात है, बिहारी उसे अपनी श्लेष कला से इस रूप में अभिव्यक्त करते हैं –

नेहु न, नैनहु, कौं कहू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर–भरे नित प्रति रहैं, तउ न प्यास बुझाइ।।

'नीर भरे' का विषम रूप तो भी 'प्यास न बुझाइ' के रूप में दर्शाया गया है। इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बिहारी का आयुर्वेदीय ज्ञान लोक–परंपरा से प्राप्त ज्ञान है, मात्र ऐसे दोहों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना तर्क संगत नहीं होगा कि बिहारी आयुर्वेद के पंडित थे।

कुछ दोहों में बिहारी के दर्शन सम्बन्धी ज्ञान की छाया जबरदस्ती देखने की चेष्टा की गयी है। ऐसे दोहों में भी यही कहा जा सकता है कि यह बिहारी का सामान्य लोक–सुलभ ज्ञान है। ईश्वर की सर्वव्यापक सत्ता को कौन नहीं जानता है, बिहारी भी इसी रूप में नंद किशोर की सर्वव्यापकता देखते हैं –

मैं समुझयो निरधार, यह जग काँचौ काँच सौ।
एक रूपु अपार प्रतिबिम्बित लखियत तहाँ।।

अथवा यह दोहा उद्धृत किया जाता है –

अपने अपने मत लगे बादि मचावत सोरु।
ज्यों त्यों सबकौ सेइबो एकै नंदकिशोर।।

विभिन्न मतवादी दुराग्रही लोगों को सुनाते हुए बिहारी अपना जीवनगत अनुभव बताना चाहते हैं कि जो ब्रह्म को विभिन्न रूपों में व्याख्यायित करते हैं, वे व्यर्थ का शोर मचाते रहते हैं, मेरा दृढ़ मत यही है कि सबका ध्यान करने के बजाय एक नंदकिशोर श्रीकृष्ण का ध्यान ही श्रेयस्कर है। इसी प्रकार ब्रह्म की महिमा वे सहज भाव से प्रकट करते हैं, उसमें किसी प्रकार का कोई दार्शनिकवाद उनके यहाँ नहीं है –

जगतु जनायो जिहि सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यों आँखिन सबु देखिए, आँखि न देखी जाँहि।।

यहाँ कवि अपनी कवि प्रतिभा से आँखों का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार आँखें सब कुछ देखती हैं और कोई उन्हें ही नहीं देख पाता है, यही गति ब्रह्म, हरि की है, वे ही जगत के कर्ता, स्रष्टा हैं, वे ही मनुष्य को

अपनी लीलाएँ देखने की सामर्थ्य देते हैं। इसी प्रकार नायिका की सूक्ष्म कटि की प्रशंसा में उसे ब्रह्म की तरह अलक्ष्य माना गया है –

बुधि अनुमान, प्रभान श्रुति किऐं नीठि ठहराइ।
सूक्ष्म कटि परब्रह्म की अलख, लखी न जाइ।।

नायिका की कटि की सूक्ष्मता का ध्यान करते हुए ब्रह्म की सूक्ष्मता का ध्यान आना श्रृंगारी कवि की सहज मनोवृत्ति की उपज है, इसमें किसी प्रकार की दार्शनिकता खोजना निरर्थक ही होगा। इसी प्रकार कर्णचुम्बी नेत्रों का वर्णन करते हुए प्रिय से अद्वैतता, मिलन, की कामना की गयी है –

जोग जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता काननु सेवत नैन।।

इसमें अद्वैतवाद और योग (जोग) का प्रभाव खोजा गया है किंतु यह वास्तविकता से दूर की बात है। असल बात यही है कि कवि अपनी श्लेष–प्रयोग की कला से अर्थ में चमत्कृति उत्पन्न करता है – योग की सारी युक्तियाँ अर्थात् मिलन की सारी युक्तियाँ, प्रिय–मिलन के व्यवहार सम्बन्धी कलाएँ और प्रिय अद्वैतता की कामना (चाहत प्रिय अद्वैतता) – से सब श्रृंगारी कवि की प्रिय वर्णन–युक्तियाँ हैं। इसी प्रकार उनके दोहों में ब्रह्म की सर्व–व्यापकता तथा तलाशने की चेष्टा की गयी है। वस्तुतः इन सभी दोहों में बिहारी अपने लोकानुभव से अपने आराध्य हरि, श्रीकृष्ण की महिमा विभिन्न रूपों में देखते हैं, उनका मुख्य उद्देश्य तो नायक या नायिका के भावों का चित्रण ही है, किसी दार्शनिक मतवाद की प्रस्थापना नहीं।

बिहारी दरबारी कवि थे, अतः उन्हें राजधर्म की अनेक बातों का ज्ञान था किंतु इसी आधार पर उन्हें राजधर्म का ज्ञाता नहीं माना जा सकता, वह तो कवि का राज–संस्कृति का सूक्ष्म निरीक्षण है। निम्न दोहे को लोगों ने राजधर्म विषयक उनके ज्ञान के रूप में उद्धृत किया है –

अपने अंग के जानि कै जोबन–नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितम्ब कौ बड़ौ इजाफा कीन।।

राजा अपने अंग के (सभासदों) को अपनी उन्नति में सहायक जान (अपने पक्ष के) उनके वेतन आदि में इजाफा (वृद्धि) कर देता है, यहाँ यौवन रूपी नृपति ने अपने अंग के (सहायक रूप में) जान उनकी वृद्धि कर दी है। यौवनागम पर नायिका के शरीर में विकास (वृद्धि) देख कवि स्तन, मन, नैन और नितंब को बढ़ा पाता है। इसी स्थिति को श्रृंगारी कवि के रूप में उन्होंने अपने परिवेश से उपमान – 'जोबन' को 'नृपति' रूप में – चयन कर किया है। यह उनका अपने परिवेश से सहज परिचय है, किसी प्रकार का शास्त्रीय ज्ञान यहाँ प्रदर्शित नहीं किया गया है। बिहारी ने निकट से युद्धों को भी देखा होगा। सभी जानते हैं कि युद्ध–प्रयाण में एक हरावल दस्ता – मुख्य सेना के आगे–आगे चलने वाली सैनिक टुकड़ी के रूप में – होता है। अपने एक दोहे में कवि ने झीने चीर के घूँघट को सेना के हरावल दस्ते के रूप में देखा है जिसका अतिक्रमण कर मुख्य सेना – दोनों के नेत्र–आपस में मिल जाते हैं और वे परस्पर विभिन्न प्रकार के कटाक्ष करते हैं। प्रीति उत्पन्न होने की इस रीत को बिहारी इस नए रूप में प्रस्तुत करते हैं। खोजी विद्वानों ने इसे बिहारी के सैन्य–ज्ञान के रूप में देखा है –

जुरे दुहुन के दृग झमकि, रुके न झीनैं चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं परै गोल पर भीर।।

इसी प्रकार बिहारी के ऐतिह्य ज्ञान, इतिहास–पुराण सम्बन्धी ज्ञान की पुष्टि में अनेक दोहे उद्धृत किये जाते हैं किंतु रामायण–महाभारत की कथाओं–प्रसंगों का ज्ञान अनपढ़ समाज को भी परंपरा से प्राप्त रहा है। द्रौपदी के चीर–हरण, दुर्योधन की कुटिलता, सीता की अग्नि–परीक्षा, कामदेव दहन, बलि प्रसंग, वामनावतार, गज–ग्राह–मुक्ति प्रसंग, आदि कथाओं का लोक–परंपरा में व्यापक प्रसार है। यदि किसी दोहे में इन प्रसंगों को इंगित किया गया है तो इसका अर्थ यह नहीं कि कवि ने समस्त महाकाव्यों तथा पौराणिक साहित्य का अध्ययन किया होगा। इस सम्बन्ध में दो–एक उदाहरण द्रष्टव्य होंगे। राम–कथा में हनुमान् के सागर पार करते समय एक छाया–गृहिणी राक्षसी का उल्लेख मिलता है, इसे भव–सागर से पार उतरने की बाधा के रूप में नारी के रूप में कल्पित किया गया है –

या भव–पारावार को उलँघि पार को जाइ।
तिय–छवि–छायाग्रहिणी गहै बीचहिं आइ।।

इसी प्रकार शिवजी द्वारा कामदेव को भस्म कर देने की कथा अत्यंत प्रसिद्ध है, बिहारी इस प्रसंग को श्रीकृष्ण के रूप–वर्णन में इस प्रकार अपनाते हैं –

मोर–मुकुट की चन्द्रिकन यौं राजत नंद नंद।
मनु ससिसेखर की अकस किय शेखर सत चंद।।

मोर मुकुट की चन्द्रिकाओं से श्रीकृष्ण ऐसे विराजमान हैं मानो महादेव जी (शशि शेखर) कामदेव से वैर (अकस) सूचित करते हुए मस्तक पर सौ चन्द्रमाओं से सुशोभित हैं। यहाँ कवि का उक्ति वैचित्र्य कौशल ही प्रकट हुआ है।

इसी प्रकार कभी उनके दोहों में चित्रकला के रंग–ज्ञान का परिचय ढूँढ लिया गया है – नीले, लाल, पीले, रंगों की कल्पना कर ली गयी है। मुरली बजाते श्रीकृष्ण का यह चित्र देखिए –

अधर धरत हरि कैं, परत ओठ, डीठि–पठ–जोति।

हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रंग होति।।

अधरों का लाल रंग, श्रीकृष्ण का नील वर्ण, दृष्टि का काला रंग, पीतांबर का पीला रंग, बाँसुरी का हरा रंग सब मिल कर इन्द्रधनुष की छटा दे रहे हैं। इसी प्रकार मंगलाचरण के दोहे में श्रीकृष्ण की आभा हरी (प्रसन्न) हो जाती हैं। यहाँ भी बिहारी का रँग–ज्ञान, सामान्य व्यक्ति का है जिसे उक्ति–वैचित्र्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार कवि को खेलों–चकरी, पंतगबाजी, आदि से परिचित दिखा कर उनकी बहुज्ञता को प्रमाणित किया गया है।

13.4 सारांश

बिहारी बहुज्ञ थे – एक सशक्त कवि–कल्पना के स्वामी के रूप में, उनका उपमान चयन, बिम्ब योजना, आदि सब अपने परिवेश की लौकिक ज्ञान–परंपरा पर आधारित हैं। उन्हें बहुज्ञ न कह कर अपने लोक और परम्परा का सूक्ष्म द्रष्टा कवि कहना अधिक उपयुक्त होगा। उनका विविध क्षेत्रीय ज्ञान पांडित्य प्रदर्शन के रूप में नहीं, उनकी काव्य–कला का अंग बन कर आया है।

13.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने बिहारी की बहुज्ञता का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1) 'बिहारी की बहुज्ञता का आधार उनके काव्य में कितने प्रकार का है

   क) चार ख) तीन ग) आठ घ) पांच

2) ''तिय–मुख लखि हीरा' जरी बेंदी बढ़ै विनोद'' में बिहारी के किस सिद्धांत का चित्रण मिलता है–

   क) ज्योतिष ख) आयुर्वेद ग) शास्त्रीय घ) योग

3. शास्त्रीय ज्ञान में बिहारी को निश्चित रूप से किसका अच्छा ज्ञान था

   क) आयुर्वेद ख) ज्योतिष ग) ऐतिहासिक घ) पुराण संबंधित

4. बिहारी के संबंध में किस आलोचक का मत है "परंपरा का रूढ़ अंश बिहारी में एक प्रकार से और मिलता है– निजी जानकारी और पांडित्य प्रदर्शन के रूप में।"

   क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ख) पद्मसिंह शर्मा. ग) ग्रियसन घ) डॉ बच्चन सिंह

5) बिहारी की बहुतता में कौन शास्त्रीय और लोक परंपरा ज्ञान के अंतर्गत नहीं आतारू–

   क) शास्त्रों का ज्ञान ख) इतिवृत्त का ज्ञान

   ग) संवादों का ज्ञान घ) लोक परंपरा का ज्ञान

प्र2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1) ज्योतिश ग्रंथ ..... के राजयोग प्रकरण में वर्णित है।

2) बिहारी ..... को श्लेष के चमत्कार से प्रिय दर्शन से संबंध कर दोहे में चमत्कार उत्पन्न करते हैं।

3) बिहारी को ..... की अनेक बातों का ज्ञान था।

4) 'बिहारी सतसई' की टीका लल्लू लाल ने ..... नाम से लिखी।

प्र3) सही / गलत :–

1) बिहारी बहुज्ञ थे। ( )

2) बिहारी के दोहों में दर्शन संबंधी ज्ञान की छाया जबरदस्ती देखने की चेष्टा की गयी है। ( )

3) बिहारी भक्तिकाल के कवि हें। ( )

4) बिहारी ने अधिकतर नीति दोहे लिखे हैं। ( )

13.6 कठिन शब्द

1) रंजित – प्रसन्न

2) दुराग्रही – हठी, जिद्दी

3) मनोवृत्ति – मन की स्वाभाविक स्थिति

4) इतिवृत – कहानी

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बिहारी की बहुज्ञता पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

_____

2. बिहारी की काव्य कला को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

_____

13.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. तीन 2. ज्योतिष 3. ज्योतिष 4. डॉ. बच्चन सिंह 5. संवादों का ज्ञान

रिक्त स्थानः 1. जातक संग्रह 2. सुदर्शन 3. राजधर्म 4. लाल–चन्द्रिका

सही या गलतः 1. सही 2. सही 3. गलत 4. गलत

13.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2018 प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर

2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे

3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त

4. बिहारी सतसई तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र 1970, प्रकाशक; इलाहाबाद लोकभारती
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह 2021, प्रकाशक; इलाहाबाद लोकभारती

बिहारी की काव्य–कला

रुपरेखा

14.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
14.2 प्रस्तावना
14.3 बिहारी की काव्य कला
14.3.1 बिहारी काव्य का भाव पक्ष
14.3.2 बिहारी काव्य का कला पक्ष
14.4 सारांश
14.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

14.6 कठिन शब्द
14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.8 उत्तर कुंजी
14.9 पठनीय पुस्तकें

14.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपकोः–

बिहारी की काव्य–कला व बिहारी काव्य के भाव–पक्ष से अवगत कराना है।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आपको इस आलेख सेः–

– बिहारी ने किस तरह काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– बिहारी काव्य के भाव–पक्ष से अवगत हो सकेंगे।

– बिहारी काव्य के कला–पक्ष को जान सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

बिहारी रीतिकाल के तो प्रसिद्ध कवि हैं ही, पूरे हिंदी काव्य–इतिहास में भी उनका अप्रतिम महत्त्व है। उनसे पूर्व भक्ति की जो धारा काव्य में लगभग छह सौ वर्ष पूर्व से चली आ रही थी, उन्होंने उसका प्रवाह मोड़ कर सीधे उसे जगत और जीवन से जोड़ा। भक्ति–काव्य जीवन की क्षणभंगुरता की बात करता है तो बिहारी का काव्य इस

अनुपम जीवन को पूर्ण रूप से जीने में विश्वास करता है। विश्भर मानव उनके इस अवदान को इस रूप में देखते हैं, "....उन्होंने अपने से पूर्व के छः सौ वर्षों के काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा। यही काम आज के युग में यदि किसी ने किया होता तो वह 'काव्य में विद्रोह' कहलाता। लौकिक जीवन के एक बड़े पक्ष के सौंदर्य, क्रीड़ा और आनन्द का जैसा सजीव वर्णन बिहारी में पाया जाता है, वैसा आज तक के किसी काव्य में नहीं। यह जीवन कहीं–कहीं गंदला है, पर धरती का जीवन ऐसा ही है, क्या किया जाए। इतना तो निश्चित ही है कि उनके काव्य का एक ऐतिहासिक महत्त्व है।" उपर्युक्त कथन में भक्ति–काल के महत्त्वपूर्ण अवदान को कमतर करके नहीं देखा जा रहा है अपितु बल इस बात पर है कि जीवन का लौकिक पक्ष जो पहले अनचीन्हा रह गया था, बिहारी और उनके युग के अन्य कवियों ने उसे पूर्ण मन से रेखांकित किया। बिहारी के युग की परिस्थितियाँ भी ऐसी थी कि जीवन के उस पक्ष को भरपूर रूप में उजागर किया गया। एक और बात के लिए बिहारी को सराहा जा सकता है, वह है कि उन्होंने बहुत थोड़ा लिख कर बहुत ख्याति पायी। मात्र लगभग सात सौ उन्नीस (जगन्नाथदास रत्नाकर विरचित 'बिहारी रत्नाकर' के अनुसार केवल 713) दोहों की सतसई की रचना कर उन्होंने अपार लोकप्रियता और सम्मान प्राप्त किया। वस्तुतः बिहारी का काव्य आज भी रसिकों का हृदयहार बना हुआ है जिसका श्रेय उनकी अतुलनीय काव्य–कला को दिया जा सकता है।

14.3 बिहारी की काव्य–कला

बिहारी की काव्य–कला पर विचार दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है – बिहारी काव्य का भाव–पक्ष तथा बिहारी काव्य का कला–पक्ष।

14.3.1 बिहारी काव्य का भाव–पक्ष

बिहारी रसराज श्रृंगार के अतुलनीय कवि हैं। उन्होंने श्रृंगार का चित्रण शास्त्रीय पंरपरा के अनुसार भी किया किंतु उनमें श्रृंगार–मुक्तक परंपरा अधिक दिखाई देती है। व्यंग्य, लाक्षणिक वक्रता, अलंकार, नायिका भेद, नख–शिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन की समस्त शास्त्रीय परंपराओं का वे अनुपालन तो करते हैं किंतु लक्षण–ग्रंथ लिखने के झंझट में वे नहीं फँसे। उन्होंने लक्षण ग्रंथ के रूप में सतसई की रचना नहीं की किंतु उसका प्रचार लक्षण ग्रंथों से अधिक हुआ। बिहारी सतसई की जितनी टीकाएँ हुई हैं, वे उसकी लोकप्रियता का अकाट्य प्रमाण है, इन टीकाकारों ने उन्हें श्रृंगार रस का अधिष्ठाता ही बना दिया। श्रृंगार रस बिहारी सतसई का मुख्य प्रतिपाद्य है किंतु साथ ही उसमें भक्ति और शांत रस का भी चित्रण मिलता है। लोगों ने जबरदस्ती उसमें हास्य, वीर रस, आदि के उदाहरण खोजे हैं, किंतु वह दूर की कौड़ी लाने जैसी बात ही है।

श्रृंगार रस के दो पक्ष हैं – संयोग और वियोग। यद्यपि बिहारी ने वियोग के भी कुछ दोहे रचे हैं किंतु अधिकांश में उनकी कृति संयोग चित्रण में ही रमी है जो तत्कालीन परिस्थितियों तथा विशेषतः दरबारी संस्कृति के कारण सहज ही है। संयोग–दशाओं का चित्रण वे शास्त्रीय लक्षणों तक ही करके नहीं रुक जाते, अपने जीवनानुभव से नये–नये प्रसंगों, प्रकरणों, चेष्टाओं – हाव–अनुभावों की वे नवीन कल्पनाएँ करते हैं। संयोग श्रृंगार में सर्वाधिक महत्त्व प्रिय के रूप–चित्रण का ही है, बिहारी नायिका और नायक दोनों के रूप के एक–से–एक मनोहारी चित्र प्रस्तुत करते हैं जिनमें आधिक्य नायिका, प्रिया, के रूप–चित्रण का ही है। रूप की बहुत बड़ी विशेषता उसका प्रत्येक क्षण नवीन होते चले जाना है, इतने विचित्र रूप में कि बड़े–बड़े चित्रकार भी उसकी छवि (शबीह) को अपनी तूलिका से पकड़ नहीं पाते हैं, यही कठिनाई कवि की है कि वह उसके अपरूप का चित्रण कैसे करे। इसी रूप में अंकुरित यौवना नायिका की सखि नायक से उसका रूप वर्णन करने में अपनी असमर्थता दिखाती है –

लिखनि बैठि जाकी सबी गहि गहि गरव गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।

सखि नायिका की प्रतिक्षण बढ़ती शोभा का वर्णन करने में अपनी असमर्थता बताते हुए कह रही है कि मैं अपनी क्षण–क्षण बढ़ती शोभा का वर्णन कैसे कर सकती हूँ जिसका चित्र–सबी–शबीह– बनाने के लिए बडे–बड़े गर्वीले (प्रसिद्ध) चित्रकार भी अपने को सक्षम नहीं पाते हैं। रूप–चित्रण में बिहारी के वे दोहे विशेष आकर्षक बन पड़े हैं, जहाँ रूप–माधुरी के समग्र प्रभाव का चित्रण किया गया है। महाकवि कालिदास को सुन्दर देहयष्टि के लिए दीपशिखा उपमान का प्रयोग करना अत्यंत प्रिय है। दीपशिखा का अपना सौंदर्य है – ऊपर से पतली, बीच में थोड़ी चौड़ी, नीचे फिर पतली – नारी–शरीर का भी यही सुन्दर अनुपात है। बिहारी इस सौंदर्य में इतना और जोड़ते हैं कि वह पूरे घर को प्रकाशित कर देने वाला सौंदर्य है, अतएव दीपक के बढ़ने पर भी पूरे घर में इस अपरूप का उजास रहता है –

अंग–अंग नग जगमगै, दीप सिखा–सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह।।

सौंदर्य की बहुत बड़ी परिभाषा यह है कि वह आँखों को प्रिय लगे, उसे देख कर नयन तृप्त हों, बिहारी की नायिका का रूप भी ऐसा ही है कि उसे देख कर आँखों में भी एक उजास, खुशी की रोशनी, भर जाती है –

कहा कुसुम, कँह कौमुदी, कितिक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखै, आँखि उजरि होत।।

नायिका के रूप में सर्वाधिक आकर्षक नेत्र ही होते हैं। नेत्रों की आकारगत सुंदरता, चांचल्य, प्रीति रीति को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता, उनका मारक प्रभाव, आदि का चित्रण कवि ने विविध रूपों में किया है।

पहले इन नेत्रों की शोभा से परिचित हुआ जाए, देव नदी गंगा – सुर सरिता – में उछलते हुए 'जुग मीन' बिहारी का प्रिय उपमान है जिसका प्रयोग वे कई दोहों में अलग–अलग प्रसंग कल्पित कर करते हैं, यह उदाहरण द्रष्टव्य है–

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानहुँ सुर–सरिता विमल, जल उछरत जुग मीन।।

इन आँखों के चांचल्य पर भी कवि की दृष्टि बार–बार जाती है। चंचल नेत्रों की विविध भंगिमाओं से वे 'भरे भौन' में बतियाते हैं–

कहत नटत रीझत, खिजत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु हीं सब बात।।

कमलों, खंजनों, हरिणों, आदि को तो इन नेत्रों ने लज्जित किया ही है, ये नागर जनों का 'सिकार' भी करते हैं, काम–बाण भी चलाते है, वस्तुतः वे ऐसे अद्‌भुत नयन हैं जो कभी देखे ही नहीं गये –

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैननु तैं, हरि, नीके ए नैन।।

बिहारी इन नेत्रों को माध्यम बना कर प्रेम की कितनी ही मनोदशाओं का चित्रण करते हैं। बहुत बड़ी–बड़ी बातें, विस्तृत बातें करने वाले ('स्पीक्स वाल्यूम' की स्थिति) ये नेत्र अपनी भंगिमाओं से प्रेम–क्रीड़ाओं का परिचय देते हैं –

बतरस–लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं, भौंहनि हँसै, दैन कहै नटि जाइ।।

बिहारी प्रेम–क्रीड़ाओं का ऐसा चित्रण करते हैं जो सामान्य व्यक्ति के जीवन में भी जब–तब घटती रहती है। प्रिय मिलन की चाह में नायिका जो विभिन्न इंगित करती है, उसका मनोहर चित्रण यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि बिहारी किस प्रकार प्रेम की विभिन्न स्थितियों की कल्पना करने में सक्षम हैं –

त्रिबली, नाभि दिखाइ, कर सिर ढकि, सकुचि समाहि।
गली, अली की ओट कै, चली भली विधि चाहि।।

नायक का सामना होने पर नायिका ने अपने मनोभाव को इस प्रकार प्रकट किया – संकोच के कारण घूँघट करने के मिस (बहाने) से, हाथ उठा कर अपनी मनोहर त्रिबली तथा नाभि दिखा कर, सखी की आँख बचाते हुए, मेरी ओर आँख भर कर (पूरे प्रेम से) देख कर गली में चली गयी। प्रिय को या किसी को भी आकर्षित करने के लिए नाभि–दर्शाना साड़ियों, टॉप्स–जीन्स का जमाना तो बाद में आया, बिहारी लाल मध्यकाल में भी उसकी कल्पना कर सहृदय पाठकों का मन मोहते हैं। इसी प्रकार प्रेमी को झरोखे से छिप–छिप कर देखने की क्रिया बहुत स्वाभाविक है, यद्यपि लोगों ने इसे परकीया प्रेम के रूप में देखा है, किंतु ध्यान देने की बात है कि बिहारी इस मनोदशा का कितना सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत करते हैं। नायिका संकोच में विवश है, इसीलिए वह स्थिर नहीं है, एक जगह टिक नहीं पा रही है। बारम्बार झरोखे में उचकती है, फिर छिप जाती है, आ जाती है – इस प्रकार वह अपनी प्रीति प्रकट करती है –

समरस–समर सकोच बस, बिबस न ठिक ठहराइ।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति, दुरि दुरि उझकति आइ।।

प्रेम की ऐसी कितनी ही मनोदशाओं, क्रिया–व्यापारों, आदि का मनोहारी चित्रण बिहारी संयोग शृंगार में करते हैं, जिसके कारण बिहारी–सतसई रसिकों का हृदयहार है।

वियोग शृंगार का चित्रण करने में बिहारी को वैसी सफलता नहीं मिली है जितनी संयोग पक्ष का चित्रण करने में। जब वे विरहिणी नायिका का वर्णन करते हैं, उनकी दृष्टि उसकी विरह–व्याकुल दशा पर और उसके शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव पर ही जाकर रुक जाती है। विरहणी नायिका का चित्रण करते हुए तो वे पूर्णरूपेण दरबारी कवि की संस्कृति में ढल जाते हैं। फारसी कवियों से टक्कर लेने के लिए उन्हीं की शैली पर नायिका का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र या उससे भी आगे बढ़ कर ऊहात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं, जिससे उन्हें श्रोताओं की वाह–वाही, ज्यादा से ज्यादा दाद, मिल सके। उनकी विरहणी "नायिका कभी प्राण बचाने के हेतु चन्द्रमा और समीर के सामने दौड़ती फिरती है (जिससे विरहाग्नि में झुलसती को कुछ राहत मिले), कभी जुगनुओं को अँगारे समझ कर भीतर छिप जाने की सलाह देती है। साँस लेती है तो (इतनी दुबली है कि) कभी छः–सात हाथ इधर कभी छः–सात हाथ उधर खिसक जाती है। रोती है तो आँसू छाती पर पड़ते ही भाप बन कर उड़ जाते हैं। कोई उस पर गुलाब जल छिड़क देता है तो वह बीच में ही सूख जाता है (गोया नायिका नहीं विरह में जलती भट्टी हो गयी हो)। दुर्बल इतनी हो गयी है कि मृत्यु चश्मा लगा कर भी उसे देखना चाहे तो देख नहीं पाती। पड़ोसी उससे परेशान हैं। जाड़ों की रातों में गीले कपड़े आगे कर उसके पास पहुँच पाते हैं और ग्रीष्म में तो उसके पड़ोस में रहना ही असंभव हो गया है।" ये सभी वर्णन उनके काव्य में चमत्कृति तो पैदा करते हैं, उनमें उक्ति वैचित्र्य–कौशल है किंतु वे हृदय पर सीधे–सीधे प्रभाव डाल कर सहृदय को नायिका के भावों का सहभोक्ता नहीं बना पाते हैं। उन्हें पढ़ कर नायिका के प्रति किसी प्रकार की संवेदना नहीं उपजती। दो–एक ऐसे उदाहरण द्रष्टव्य होंगे –

इत आवति, चलि जात उत, चली छसातक, हाथ।
चढ़ी हिडोरैं सीं रहैं लगी उसासनु साथ।।

• • • • •

करी बिरह ऐसी; तऊ गैल न छाड़त नीचु।
दीने हू चसमा चखनि चाहै लहै न मीचु।।

• • • • •

आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहस ककै सनेह बस सखी सबे ढिग जाति।।

ऐसा भी नहीं है कि विरहिणी नायिका के कुछ स्वाभाविक सरस चित्र बिहारी के यहाँ हैं ही नहीं किंतु ऊहात्मक चित्रों की प्रसिद्धि, अतिशय चर्चा, के कारण उन दोहों की ओर कम ध्यान दिया गया है, हैं भी वे अल्प मात्रा में। ऐसे रसपूर्ण दोहों से परिचय पाना भी अपेक्षित है। प्रिय से सम्बन्धित वस्तुओं को देखकर उसकी स्मृति आना स्वाभाविक है। गोपियाँ भी जब श्रीकृष्ण के साथ बिताये मधुर क्षणों की स्मृति उन स्थलों को देख कर करती हैं तो उनकी स्थिति यह है कि –

जहाँ जहाँ ढाढ़ौ लख्यौ स्याम सुभग–सिरमौरु।

बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु दृगन अजौं वह ठौरु।।

जिन–जिन स्थानों पर श्रीश्याम को खड़े देखा था, उन स्थानों में उनके ससंर्ग से ऐसी रमणीयता आ गयी कि अब श्रीकृष्ण के न रहने पर भी वे स्थान पुनः आँखों को प्रिय लगते हैं क्योंकि उन्हें देख कर पुनः श्रीकृष्ण के ध्यान में डूब कर मन उन्हीं में रमा रहता है। यह प्रिय–स्मृति का अत्यंत स्वाभाविक मनोभाव है। इसी प्रकार विरहिणी नायिका को नींद न आ पाना, एक स्वाभाविक क्रिया–व्यापार है जिसका प्रिय चला गया हो, उसकी आँखों में नींद कहाँ। बिहारी इस मनःस्थिति को इस प्रकार प्रकट करते हैं –

जब तब बै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि।
आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाँहि।।

जब–जब उनकी स्मृति आती है, तब समस्त चेतना शून्य हो जाती है। उनकी आँखों की स्मृति में ही आँखें लगी रहती हैं किंतु आँखें नहीं लगती हैं, नींद नहीं आ पाती है। यहाँ यमक की अलंकृति का स्वाभाविक प्रयोग कर कवि ने नायिका की दशा का स्वाभाविक अंकन किया है। फिर भी, यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि बिहारी शृंगार के वियोग पक्ष का उतना सजीव चित्रण नहीं कर सके हैं जितना सफल वे संयोग–पक्ष के चित्रण में हुए हैं।

बिहारी ने भक्ति और नीति विषयक दोहे भी रचे हैं। दोनों क्षेत्रों में ही उन्हें अपेक्षित सफलता इसी प्रकार मिली है जिस प्रकार संयोग शृंगार के चित्रण में। वस्तुतः प्रेम और भक्ति का मूल भाव चित्त का राग है, जब अनुरक्ति सखी के प्रति होती है तो वह शृंगार का रूप लेती है और जब वह अलौकिक के प्रति होती है तो भक्ति का रूप ले लेती है, इसीलिए देखा गया है कि विद्यापति, सूरदास, आदि प्रेम–चित्रण करने वाले कवियों की भक्ति–भावना भी उतनी ही उत्कट है। बिहारी भी इसी परंपरा के कवि हैं। दोहे जैसे छोटे छंद में अपने भक्ति–भाव को विस्तार से वर्णित करने की सुविधा तो उन्हें नहीं थी किंतु दोहे की छोटी सीमा में भी उनके भक्त हृदय के दैन्य, आराध्य के प्रति सख्य, मैत्री

भाव, दिये गये उपालंभ, आदि की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है, जिनसे उनके भक्ति–भाव का परिचय मिलता है। अपने आराध्य श्रीकृष्ण का ध्यान वे सदैव इसी रूप में करना चाहते हैं –

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल।।

उनका दृढ़ विश्वास है कि इस भवसागर से पार लाने का एकमात्र उपाय हरि–स्मरण, हरि–नाम, ही है। इस भावना को वे एकाधिक बार व्यक्त करते हैं, यथा –

पतवारी माला पकरि और न कछु उपाउ।
तीर संसार पयोधि कौं, हरि–नावै करि नाउ।।

विनय और दैन्य भक्ति के अनिवार्य तत्त्व हैं। दोनों ही बिहारी में भरपूर मात्रा में हैं, यथा –

हरि कीजति तुमसों यहै, बिनती बार हजार।
जेहि तेहि भाँति डरयो रह्यी पर्यी रहौ दरबार।।

कभी वे अंतरंग सखा की तरह प्रभु को उपालंभ भी देते हैं कि वे उनकी सहायता क्यों नहीं कर रहे हैं, यह उनकी सख्य भक्ति का बहुत सुंदर उदाहरण है –

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्यार सहाइ।
तुम्हु लगी जगत–गुरु, जग–नाइक, जग बाइ।।

प्रभु को ऐसा उपालंभ कोई मुँह लगा भक्त ही दे सकता है। उनकी श्रीकृष्ण–चरणों में असीम आस्था है, इसीलिए वे 'एकै नंद–किशोर' को 'सेईबो' की बात करते हैं। अपने 'गुन–औगुन' न गिनने की बात 'गोपीनाथ' से कहते हें। वे भक्ति के विधि–विधान, ताम–झाम के भी विश्वासी नहीं हैं, वे केवल सच्चे मन से 'रामु' का स्मरण करने के विश्वासी हैं – 'साँचे' राँचौ रामु'। बिहारी का मन भक्ति में खूब रमा है किंतु वे जिस युग में पैदा हुए थे, उसका मुख्य सरोकार श्रृंगार से था।

बिहारी ने नीति सम्बन्धी जो दोहे लिखे हैं, वे उनके जीवनानुभव से निसृत हैं। उनमें जगत, दुनिया को गहरी दृष्टि से देख कर जीवन–भर का पगा अनुभव है, इसीलिए वे इतने मार्मिक बन पड़े हैं कि लोक में सूक्ति रूप में प्रचलित हैं, पग–पग पर उन्हें उद्धृत कर सीख दी जाती है। इन सूक्तियों में अलंकार–प्रदर्शन और उक्ति–वैचित्र्य बिलकुल नहीं है, वे सीधे–सीधे अपनी बात कहते हैं, यथा –

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ्यो न जाइ।।

इसी प्रकार निम्न दोहे का दूसरा चरण तो इतना लोकप्रिय है कि प्रायः ही सुना दिया जाता है –

मीत, न नीति गलीतु ह्वै, जो धरियै धनु जोरि।
खाए खरचौं जो जुरै, तो जोरिए करोरि।।

कहीं इन नीतिपरक दोहों में भक्ति का ऐसा समावेश देखा जा सकता है कि यह कहना कठिन हो जाए कि वहाँ बल भक्ति पर है या नीति पर –

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साई नहि भूल।
दई–दई क्यों करत है, दई दई सो कबूल।।

यहाँ यमक का प्रयोग कर भी उक्ति–वैचित्र्य प्रकट नहीं किया गया है, इसीलिए इस दोहे के दूसरे चरण का प्रयोग लोक में बारम्बार होता है।

बिहारी ने अपनी सतसई में प्रकृति का भी सरस चित्रण किया है, यद्यपि वह उद्दीपन रूप में ही है। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर, आदि का वर्णन उनके साहित्य में मिलता है। वसंत ऋतु में प्रकृति चारों ओर शृंगारिता होती है, बिहारी उसका चित्र यूँ खींचते हैं, एक में बसंत के मादक समीर का वर्णन है, दूसरे में आम्र–बौर की सुगन्ध और मकरंद–पान से मस्त भ्रमरों का चित्रण कर बसंत के मादक प्रभाव को अंकित किया गया है –

रनित भृंग–घंटावली, झरति दान मधु नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज समीरू।।
छकि रसाल–सौरभ, सने मधुर माधुरी–गंध।
ठोर–ठोर झौरँत झँपत भौर–भौर मधु अंध।।

इसी प्रकार अन्य ऋतुओं में प्रकृति की शोभा उस ऋतु के वातावरण के अनुरूप चित्रित की गयी है।

14.3.2 बिहारी काव्य का कलापक्ष

यद्यपि किसी कवि की कला भाव–पक्ष और कला–पक्ष के सम्मिलित रूप से ही प्रभावी बनती है, तो भी यहाँ कला से तात्पर्य उसके अभिव्यक्ति पक्ष से है जिसमें भाषा, अलंकार और छंद विधान पर विचार किया जा सकता है। बिहारी ब्रज भाषा के निष्णात कवि हैं, उन्होंने परंपरा से चली आती भाषा को उसका टकसालीपन, शुद्धता, प्रदान की। उनका यह कार्य सूरदास सरीखे महाकवि से आगे का कार्य है। यहाँ विषय–विवेचन को भाषिक उदाहरणों से, विभक्तियों, शब्दों के रूप–विधान को उदाहरणों से, बोझिल न बनाते हुए उनके भाषिक वैभव को मात्र कुछ दोहों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। कहीं उसमें ऐसा सारल्य है –

भाल लाल बेंदी, ललन आखत रहे बिराजि।
इन्दु कला कुज मैं बसी मनौ राहु भय भाजि।।

कहीं अनुभाव–चित्रण में भाषा में इतना लालित्य भर दिया गया है कि वह सहज ही मन मोह लेती है –

कहत नटत रीझत, खिजत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु सौं सब बात।।

इतनी सारी आंगिक चेष्टाओं को दोहे की एक पंक्ति में भर देना बिहारी का ही कौशल है। इसीलिए उनके दोहे 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

इसी प्रकार विरोधी मुहावरों का प्रयोग कर वे भाषा को कितना अर्थ–सक्षम कर देते हैं –

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरित चतुर–चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन–हियें, दई नई यह रीति।।

दृगों के उलझने से कुटुम्बों से सम्बन्ध टूटना, चतुर जनों की प्रीति जुड़ने से दुरजनों के हृदय में गाँठ पड़ना जैसे प्रयोग उनकी काव्य कला को विशिष्ट उत्कर्ष प्रदान करते हैं। इसी प्रकार वे अपनी भाषा को उपमा, रूपक,

उत्प्रेक्षा, सांगरूपक, प्रतीप, आदि अलंकारों का कुशल प्रयोग कर और अधिक मोहक रूप प्रदान कर देते हैं। कदाचित् ही उनका कोई दोहा होगा जिसमें किसी न किसी अलंकार की छटा दिखाई न देती हो। उत्प्रेक्षा का यह उदाहरण देखिए –

लसतु सेतसारी ढप्यौ, तरल तर्यौना कान।
पर्यौ मनौ सुरसरि–सलिल रबि प्रतिबिम्ब बिहान।।

बिहारी ने दोहे जैसे छोटे से छंद को जितनी भाव–समृद्धि और गरिमा प्रदान की है, वह अतुलनीय है। दोहा अर्ध–सम 24 मात्राओं का छंद है जिसके प्रथम तथा तीसरे चरण में 13–13 तथा दूसरे तथा चौथे चरण में 11–11 मात्राएँ होती हैं। बिहारी इसका कहीं भी व्यतिक्रम नहीं करते हैं, दोहे के साथ–साथ उन्होंने कहीं–कहीं सोरठा छंद का भी प्रयोग किया है। वस्तुतः दोहे को बिहारी ने उतनी ऊँचाई दी जितनी कवि रहीम ने अपेक्षित की थी –

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे माहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमट कूदि चढ़ि जाहिं।।

इससे भी आगे बढ़ कर उन्होंने दोहे को इतना मार्मिक बना दिया कि लोक में यह प्रचलित हो गया –

सतसइया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करें गंभीर।।

14.4 सारांश

वस्तुतः बिहारी की काव्य–कला अत्यंत श्रेष्ठ है, जो निश्चय ही उन्हें महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

14.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने बिहारी की बहुज्ञता का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) जगन्नाथ रत्नाकर कृत 'बिहारी रत्नाकर' में कितने दोहे हैं–

क) 713 ख) 719 ग) 715 घ) 720

2) बिहारी के नीति संबंधी दोहों में क्या निमृत है–

क) आत्मानुभूति ख) भाषानुभव ग) जीवनानुभव घ) शास्त्रानुभव

3) बिहारी ने शृंगार रस के अतिरिक्त किन दोहों को भी रचा है–

क) शांत और वीर ख) भक्ति और नीति ग) भक्ति और शांत घ) करुणा और रोंद्र

4) किस विद्वान का कथन है कि यूरोप में बिहारी सतसइ के समकक्ष कोई रचना नहीं है–

क) डॉ. नगेन्द्र ख) मिश्रबन्धु ग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल घ) डॉ. ग्रियसर्न

5) बिहारी किस भाषा के निष्णात कवि हैं–

क) ब्रज ख) अवधि ग) भोजपुरी घ) पहाड़ी

6) बिहारी ने दोहों के अलावा ओर किस छंद का प्रयोग किया है–

क) सवैया ख) चौपाई ग) सोरठा घ) कवित्त

प्र2) रिक्त स्थान भरो :–

1) बिहारी ..... के प्रसिद्ध कवि हैं।
2) बिहारी ..... के अतुलनीय कवि हैं।
3) बिहारी की नायिका के रूप में सर्वाधिक आकर्षक ..... ही होते हैं।
4) 'बिहारी सतसई' में प्रकृति का .....रूप मिलता है।
5) बिहारी की ..... अत्यंत श्रेष्ठ है।

प्र3) सही / गलत :–

1) दोहे के प्रथम और तीसरे चरण में 13–13 मात्राएँ होती हैं। ( )
2) 'जब तब बै सुधि कीजियै' घनानंद की पंक्ति है। ( )
3) बिहारी के दोहों में रूप चित्रण आकर्षण है। ( )
4) विनय और वैन्य भक्ति के अनिवार्य तत्व हैं। ( )

14.6 कठिन शब्द :–

1) तूलिका– कूँची
2) मार्मिक – मर्म संबंधी
3) असीम– जिसकी सीमा न हो, अपार
4) अवदान – पराक्रम
5) दृष्टव्य – दिखाई देने योग्य
6) ऊहात्मक – काल्पनिक

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बिहारी रसराज श्रृंगार के अतुलनीय कवि हैं स्पष्ट करें ?

_____

_____

_____

_____

_____

2. बिहारी काव्य में वर्णित संयोग पक्ष का चित्रण कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

3. बिहारी काव्य के कला पक्ष पर प्रकाश डालिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

14.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. 713 2. जीवनानुभव 3. भक्ति और नीति 4.डॉ. ग्रियर्सन 5. ब्रज 6. सोरठा

रिक्त स्थानः 1. रीतिकाल 2. रसराज 3. नेत्र 4.उद्दीपन 5. काव्य–कला

सही या गलतः 1. सही 2.गलत 3. सही 4. सही

14.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2018 प्रकाशक; विनाद पुस्तक मंदिर
2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे
3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त
4. बिहारी सतसईः तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र 1970 प्रकाशक; इलाहाबाद लोकभारती
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह 2021, प्रकाशक; इलाहाबाद लोक भारती

काव्य घनानन्द की भक्ति भावना

रुपरेखा

15.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
15.2 प्रस्तावना
15.3 घनानन्द की भक्ति भावना
15.3.1 कृष्णभक्ति
15.3.2 राधा भक्ति
15.3.3 ब्रजभूमि
15.3.4 यमुना
15.4 सारांश
15.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

15.6 कठिन शब्द
15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.8 उत्तर कुंजी
15.9 पठनीय पुस्तकें

15.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपकोः–

घनानन्द की भक्ति स्वरूप की जानकारी देना तथा इससे अवगत कराना कि घनानन्द आनन्द प्रेम–वैराग्य मार्ग से गुजरते हुए किस भक्ति में परिणत हुए।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप

– घनानन्द की भक्ति स्वरूप को जान पाएंगे।

– घनानन्द कृष्ण प्रेम, तथा राधा प्रेम को समझेंगे।

– घनानन्द के आनन्द प्रेम–वैराग्य मार्ग से गुजरता हुआ किस भक्ति में परिणत हुआ समझेंगे।

15.2 प्रस्तावना

भक्ति की उत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजन अथवा उपासना करना। नारदमुनि ने इसे परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा कहा है जिसे प्राप्त कर मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति साधन हैं। भगवान् तक पहुंचने के लिए भक्ति माध्यम है, भक्ति–मार्ग का प्रमुख आधार भागवत धर्म है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसका उदय ईसा के लगभग 1400 वर्ष पूर्व हुआ था। इससे भी पूर्व वैदिक काल में – ऋग्वेद में इसके संकेत मिलते हैं। ब्राह्मणकाल में कर्मकाण्ड की प्रधानता रही और उपनिषद्–काल में शिव, रुद्र और विष्णु की उपासना पर बल दिया गया। इस काल में निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिए मन, आकाश, सूर्य, यज्ञ आदि कई प्रतीक चुने गए। यद्यपि उपनिषद्कारों ने इन प्रतीकों को प्रचलित करने का भरसक प्रयत्न किया तथापि सामान्य जनता को ये ग्राह्य नहीं हो सके। सगुण से सम्बंधित होने पर भी ये प्रतीक अव्यक्त रहे। भागवत धर्म में मानव–देहधारी भगवान की उपासना अस्तित्व में आई। भागवत के अनुसार नर और नारायण नामक ऋषियों ने नारायणी धर्म को मान्यता दी जो कालान्तर में कृष्ण के समय सात्वती धर्म के नाम से अस्तित्व में आया, बाद में यह 'भागवत धर्म' कहलाने लगा।

15.3 घनानन्द की भक्ति भावना

भागवत धर्म के अनुसार केवल परमात्मा ही सृष्टि का उत्पत्तिकर्त्ता है। वह अनन्त, अनश्वर, सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापक है। जीव उसका ही अंश है। जब–जब भक्तों पर संकट पड़ता है तब–तब वह अवतार धारण कर उनके कष्टों को दूर करता है। राम और कृष्ण उसके प्रमुख अवतार हैं। इन अवतारों की भक्ति करने से जीव मोक्ष प्राप्त करता है। जीव चार प्रकार के हैं – बद्ध, मुमुक्षु, केवल और मुक्त। मुक्त जीव पार्थिव देह का त्याग कर लिंग–देह धारण करता है और इस देह में रहकर उसका पूर्णतः भोग करने के बाद वह परम अनुभूति में लीन हो जाता है। तत्पश्चात् वह भगवान् के चार व्यूहों में लीन हो जाता है – अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सकर्षण और वासुदेव।

भागवत धर्म में शंकराचार्य के अद्वैतवाद और मायावाद का खंडन कर ब्रह्म के सर्वगुण रूप की स्थापना की गई है। रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय हो या माध्वाचार्य का ब्रह्म सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी का रुद्र सम्प्रदाय हो या निम्बार्काचार्य का सनकादिक सम्प्रदाय, सभी में भगवान् के सगुण रूप को ही स्वीकारा गया है। श्रीमद् –भगवद्गीता, सात्वत् संहिता, शांडिल्य सूत्र, भागवत पुराण, हरिवंश पुराण तथा नारदीय भक्ति सूत्र, भागवत धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। भागवतकार के अनुसार भक्ति का विकास इस प्रकार हुआ 'मैं द्रविड़ में उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढ़ी, कभी–कभी महाराष्ट्र में पोषण हुआ, गुर्जर में जीर्ण हो गई, घोर कलि के कारण खंडितांग हो गई, दुर्बलता को प्राप्त हो पुत्रों–सहित धीरे–धीरे वृन्दावन में आयी जहां मैं सुन्दर रूप प्राप्त कर युवती हो गई और अब उत्कृष्ट रूप वाली हूं।' (श्रीमद्भागवत् माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 48, 49, 50)

इधर उत्तर भारत में छठी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक जब भागवत धर्म लगभग लुप्त–सा हो गया था तब इसी काल में दक्षिण भारत में भागवत धर्म का प्रचार हुआ। आलवार भक्तों ने इस परम्परा को अक्षुण्ण रखा। बारह आलवार भक्तों के भावपूर्ण गीत 'प्रबन्धम्' में संकलित हैं। इन भक्तों ने विष्णु, वासुदेव, नारायण तथा उनके अवतार राम और कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति–भाव प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कृष्ण–गोपियों की लीला–क्रीड़ा का वर्णन किया है और उनके प्रति दास्य, वात्सल्य और माधुर्यभाव की भक्ति प्रकट की है। आचार्य रंगनाथ मुनि (824. 924 ई0) ने तमिलवेद का उद्धार करके श्रीरंगम के प्रसिद्ध मन्दिर में उसके गायन की व्यवस्था की। रंगानाथ मुनि के पौत्र यामुनाचार्य ने 'गीतार्थ–संग्रह', 'सिद्धिगम' आदि ग्रन्थों का प्रवचन कर मायावाद का खण्डन किया और विष्णु की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।

15.3.1 कृष्ण भक्ति

ब्रजमण्डल में कृष्णभक्ति का प्रचार–प्रसार हुआ। वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय और चौतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण के कई रूपों की कल्पना की गई है। आचार्य वल्लभ के अनुसार भगवान् कृष्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं, सत्चित आनन्दस्वरूप हैं। वे सर्वत्र स्वतन्त्र, व्यापक, सर्वशक्तिमान, स्वजातीय, विजातीय–भेद रहित हैं। नानारूपा भगवान् कृष्ण जगत् के निमित्त कारण हैं। वे आनन्ददायिनी लीलाएं करते हैं, उन्हीं के समान उनकी लीलायें भी नित्य हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण के वामांग में राधा को प्रतिष्ठित कर उनकी उपासना की गई है। जगत् नियामक कृष्ण भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अवतार धारण करते हैं। दैन्यभाव से वन्दना करने से ही, प्रेमपूर्वक स्मरण करने से ही उनकी प्राप्ति होती है। शिव भी कृष्ण की वन्दना करते हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा उनकी परा प्रकृति है। वह निजशक्तिरूपा है, आल्हाददायिनी है। सम्पूर्ण जगत् रसिक राधा–कृष्ण का प्रतिबिम्ब है। भगवान् कृष्ण ईश्वर के ईश्वर और ब्रह्म के भी आदि कारण हैं। वे प्रेम–माधुर्य की मूर्ति हैं और गोप–गोपियों के साथ विहार करते हैं। वे राधापति हैं, 'राधावल्लभ' उनका उपास्य नाम है। हरिदासी सम्प्रदाय में भी नित्य बिहारी कृष्ण की कुंज–लीलाओं का गान किया गया है। वे न सृष्टि की रचना करते हैं और न उसमें लीन रहते हैं। सृष्टि–सम्बन्धी सभी कार्यों को ईश्वर पर छोड़ वे केवल विहार में ही मग्न रहते हैं। कुंजविहारी कृष्ण की उपासना करना ही हरिदासी भक्तों की प्रमुख कामना है। श्रीकृष्ण की अनेक शक्तियों में से आल्हादिनी भक्ति भी एक है जिसका एक रूप राधा है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण की किशोरावस्था का वर्णन किया गया है। माधुर्यभाव भगवान–लीला का आधार है।

सुजान के प्रति घनानन्द का आनन्द प्रेम–वैराग्य मार्ग से गुजरता हुआ भक्ति में परिणत हो गया। जिस प्रकार रीतिकाल के अन्य कवियों का राग कालान्तर में वैराग्य में बदल गया, उसी प्रकार घनानन्द का निरन्तर वियोग भक्ति में बदल गया। वस्तुतः सुजान की निरन्तर निष्ठुरता और बेरुखी ने कवि को कृष्णभक्त बना दिया। जीवन के प्रति घोर निराशा ने उसे भगवदोन्मुख बना दिया। पहले उसने अपने–आपको सुजान के प्रति समर्पित किया और बाद में भगवान् कृष्ण के प्रति। जीवन के अन्तिम दिनों में जाकर उसने सुजान से प्रेम छोड़, कृष्ण से प्रेम करना उचित समझा, क्योंकि कृष्ण के चरणों में ही उसकी आस्था को बल मिल सकता था। संसार की कोई भी वस्तु–व्यक्ति उसकी स्नेहिल आस्था को विकसित करने में समर्थ नहीं था, इसलिए वह कृष्ण में केन्द्रित हो गया –

सब ओर तें एंचि कैं कान्ह किसोर मैं राखि भलों थिर आस करैं।

कृष्ण के अतिरिक्त उन्होंने राधा के प्रति भी अनन्त भक्ति प्रकट की है। कृष्ण और राधा दोनों ही घनानन्द के उपास्यदेव हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं कि निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा को कृष्ण के वामाँग में प्रतिष्ठित कर उसकी उपासना की गई है। ब्रह्मा और शिव भी कृष्ण की वंदना करते हैं, क्योंकि कृष्ण जगत् नियामक हैं, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अवतार धारण करते हैं। दैन्य–भाव से भक्ति करने से भी भगवान् कृष्ण की प्राप्ति होती है। ये भक्ति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल भाव से की जाती है। घनानन्द ने दैन्यभाव से भगवान् की भक्ति की है। राधा की उपासना की है। राधा–कृष्ण की युगल मूर्ति ही इसके लिए आलम्बन है। दोनों के प्रति उसने अपनी अनन्यता प्रकट की है। वैसे मनः स्थिति के अनुरूप उसने राधा–कृष्ण तथा उनसे सम्बन्धित वस्तु–व्यापार के प्रति भी अपना प्रेम व्यक्त किया है। यहीं घनानन्द की भक्ति की विशेषता है ब्रज, गोवर्धन, यमुना के अनन्त वैभव के प्रति वे तन–मन से अनुरक्त हैं।

सूर, तुलसी और मीरा के समान घनानन्द भगवान् कृष्ण के गुणों का गान बार–बार करते हैं, क्योंकि भगवान् समर्थ हैं और घनानन्द असमर्थ। उन्होंने असमर्थता, समर्थता, सुख–दुःख, हानि–लाभ सब कुछ भगवान् के प्रति समर्पित कर दिया है – क्योंकि वे गुणों का आगार है। यह अनश्वर संसार–प्रवंचनामय है इसलिए वे छल–छद्म से उबरना

चाहते हैं। केवल भगवद्कृपा से ही वे सांसारिक तृष्णा से मुक्त हो सकते हैं। ऐसा लगता है कि अन्य भक्त कवियों के समान घनानन्द भी सांसारिक मोह–माया के जंजाल से उबरना चाहते हैं। सांसारिक चक्र में वे अपने–आपको भूल गए। जिस प्रकार सूर बेबस होकर भगवान् से यह कहते हैं कि हे गोपाल ! अब मैं विषय–वासना की माला पहन, संसार में नाच–नाच कर थक चुका, तुम्हीं मुझे उबारो, उसी प्रकार घनानन्द भी भगवान् से यह कहते हैं कि वे उन्हें दुःखों से मुक्त करें।

1. **जग जंजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ बहुत नाचौ।**
   अब आनन्द घन सुरस सींचिये लगै नहीं दुख आँचौ। (घनानन्द)

2. **अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।**
   काम क्रोध कौ पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।
   महामोह के नूपुर बाजत निन्दा सब्द रसाल।
   भ्रम–भौयौ मन भयौ पखावज चलत असंगत चाल।।
   तृष्ना नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
   माया कौ कटि फेंटा बांध्यौ लोभ–तिलक दियौ भाल।
   कोटिक कला काछि दिखराई जल–थल सुधि नहिं काल।
   सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल।

घनानन्द अपने पापों का कच्चा चिट्ठा खोलते चले जाते हैं और भगवान् सुनते चले जाते हैं। वे सिर झुकाकर अपने पापों को स्वीकार कर लेते हैं, अपने कर्मों के लिए पश्चाताप करते हैं, भगवान के सामने गिड़गिड़ाते हैं। भगवान को ही सर्वशक्तिमान मानकर सच्चे हृदय से पुकार करते हैं कि उनके पाप–पाश खुल जायें, सभी विकारों को साथ ले वे भगवान के द्वार जाते हैं, क्योंकि वे ही समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं –

आयौ सरन विकार भर्‌यौ।
तुम सरबज अज्ञ हौं बहु बिधि जु कछु न करिबे सु कछु कर्‌यौ।

अनगिनत पापों को करने के बाद वे भगवान की शरण में जाते हैं, उनकी कृपा–वत्सलता की दुहाई देते हैं। बार–बार आर्त्त हो यह कहते हैं कि हे भगवान, अब मेरे पापों को भूल कर तुम मेरा उद्धार करने के लिए आ ही जाओ। मेरे अवगुणों को न देखकर अपने गुणों को ही ध्यान में रख कर मेरा उद्धार करो। यदि मै पापी हूं तो तुम पापों से उद्धार करने वाले हो। लगता है भगवान और भक्त में होड़–सी लगी है, एक पाप करता है दूसरा क्षमा करता है और भक्त इसी गुण–निधानता को चुनौती देता हुआ कहता हैः–

भूल भरे की सुरति करौ।
अपनी गुन निधानता उर धरि मो अनेक औगुन बिसरी।

घनानन्द अपने भगवान की शक्ति के प्रति सजग हैं। यदि भगवान चाहें और घनानन्द बंधनमुक्त न हो, यह असम्भव है। कवि सब कुछ भूल कर भगवान की चरण–शरण में जाना चाहता है। भगवान उसके लिए प्राणों से भी प्रिय है, वह भगवान से कुछ नहीं माँगता, केवल उसका सान्निध्य चाहता है, उसकी गोद में बैठना चाहता है।

गोविन्द गुसाईं त्यौं ही माँगत हौं गोद–गेह,
गिरा अगराई गुन–गरिमा गनन कौं।

घनानन्द का भावुक हृदय अपने आराध्य के सामने सब कुछ खोलता चला जाता है। उसका अच्छा है या बुरा, सब कुछ भगवान के सामने है, वही उसके बारे में जानते हैं फिर भला वह क्या कहे या न कहे। गोपियों के समान वे भी पूरी तरह समर्पित हो जाते हैं। उसे विश्वास है कि कभी–न–कभी उसका आराध्य उसकी सुधि लेगा, कब तक वह उसकी पुकार को अनसुनी करता रहेगा। सूर और तुलसी के समान घनानन्द भगवान की बाट जोहता रहता है, मीरा के समान पलकों के पाँवड़े बिछाता है तब भी भगवान के न आने पर वह उससे शिकायत करता है कि वह कब उसकी सुधि लेगा –

हमारी सुरति कब धौं तुम लैहों।
अवसर बीत्यौ जात जानमनि बहुरि आय कहा कैहौ।

प्रियतम की बाट जोहते–जोहते वह थक गया है, उससे मिले बगैर चैन नहीं है और प्रतीक्षा भी नहीं की जा सकती। व्याकुलता इतनी बढ़ गई है कि उसे कहा भी नहीं जा सकता। उससे मिलना बहुत आवश्यक है, क्योंकि उसके बगैर रहा नहीं जा सकता। वियोग की विषम–वेदना उसके हृदय को जला रही है। और इस जलन का कष्ट असह्य है। जिस प्रकार मीरा केवल अपने आराध्य की स्तुति करती है, उसी प्रकार घनानन्द भी कृष्ण को छोड़ किसी और का ध्यान नहीं करता। जिस प्रकार अतिथि की प्रतीक्षा की जाती है उसी प्रकार घनानन्द अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करता है, उससे भी पहले उसके सत्कार की सामग्री जुटाता है, पदचाप सुनता है, आँखों के जल से उसके चरण पखारने की तैयारी करता है, क्योंकि प्रियतम का सान्निधय ही उसका जीवन है, प्राण है।

मोरे मितवा तुम बिन रह्यौ न जाय।
विषम वियोग–जरावै जियरा सह्यौ न जाय।
निपट अधीर पीर बस हियरा गह्यौ न जाय।
आनन्दघन पिय बिछुरन को दुःख कह्यौ न जाय।

वह अपने हृदय–दीप को नेह से भरकर यत्न से सजाता है। रूप के आगार ब्रजमोहन के आने की प्रतीक्षा करता है, आरती उतारता है और भावना से उसकी मूर्ति निहारता है।

नेह सों मोय है संजोय धरी हिय–दीप दसा जु भरी मति आरति।
रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनन्द भूलि वियोग निवारति।
भावना धार हुलास के हाथनि यौं हित मूरति हेरि उतारति।।

15.3.2 राधा–भक्ति

घनानन्द ने राधा के प्रति भी भक्ति–निवेदन किया है, क्योंकि वे भक्तों का मनोरथ पूरा करती है। कवि ने सखी–भाव से भी भक्ति की है। ऐसा कहा जाता है कि इनका 'बहुगुनी' नाम प्रसिद्ध हो गया था। ये अपने आप को भी राधा की 'बहुगुनी' नाम की सखी बताते हैं और बरसाने को निवास–स्थान मानकर राधाजी के कई काम करते हैं। वे राधा को वृन्दावन की रानी और अपना स्वामी मानकर उनकी स्तुति–वंदना करते हैं, क्योंकि राधा अतुल–रूप–गुण सम्पन्न है–

राधा अतुल रूप गुन भरी। ब्रज बनिता कदम्ब–मंजरी।

'बहुगुनी' राधा की सिरचढ़ी सखी है, क्योंकि वही उसका सब काम करती है, उसके चेहरे को निहारती रहती है, चेहरे पर लिखे भावों को पढ़कर ही वह राधा के सभी काम करती है, उन्हें कहने तक की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। वह नाना प्रकार से राधा का शृंगार करती है, उबटन मलती है, काजल लगाती है, बाल बनाती है, वेणी बाँधती है, बिंदी लगाती है। यही नहीं, वह झूम–झूम रस–सिक्त तान सुना, कविता सुना उन्हें रिझाती है, कृष्ण की मुरली का अनुसरण करने वाली तानों को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हो जाती हैं और 'बहुगुनी' को 'लाडली लौंडी' कहती हैं। राधा की और भी परमप्रिय दासियाँ हैं – जैसे ललिता, विशाखा जो उसे बहुत प्यार करती हैं। 'बहुगुनी' राधा को गोपनीय रहस्यपूर्ण संकेतों को भी बताती है, गोपनीय हाव–भावों को समझने वाली राधा कृष्ण को प्रिय है, इसलिए वे भी बाँसुरी द्वारा राधा का नाम ही लेते रहते हैं। कृष्ण को प्रिय लगने वाली राधा की स्तुति 'बहुगुनी' कई प्रकार से करती है – वह राधा–कृष्ण की सेज सजाती है, सुखभोग के उपकरण एकत्रित करती है, प्रेम–पगी बातें कह उनका मिलन कराती है तब और भी ढेर सारे काम करती है जिससे दोनों में प्रेम बढ़ता है। राधा–कृष्ण को एक साथ बैठा उन्हें आँचल करती है। कृष्ण जब राधा का आँचल खींचते हैं तब वह धीरे से मन्द–मन्द मुसकरा छुड़ाने का प्रयत्न करती है। जब कभी कृष्ण उसकी ओर भी रस–भीनी अदा से देखते हैं तब वह सकुचा जाती है –

मोहिं भुज भरै छकनि सों जिय समझि लजाऊँ।

कभी–कभी वह छिपकर भी दोनों की बातें सुनती है – उनकी 'हां' 'नहीं' सुन कर मन–ही–मन प्रसन्न होती रहती है – कभी मंगल–गीत गाती है और कभी वीणा बजाती है। कभी यमुना के तट पर तरु–लता की ओट से देखती है, और कभी राधा के उतारे हुए वस्त्रों को पहन परम सौभाग्य का अनुभव करती है, क्योंकि वह राधा की 'चटकीली चेरी' है, उसकी जूठन खाकर राधा का मंगल मनाती है –

चांपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छुवै सीस राधा कै पाऊँ।।
चरन हलाय जगाए जगौं। बहुरि औंधि नित पाँयनि लगौं।।
राधा धर्‌यौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाए जाऊँ।।
राधा की जूठनि ही जियौं। राधा की प्यासनि ही पियौं।।
राधा कौ सुख सदा मनाऊँ सुख दै दै हौं सुख ही पाऊँ।।

इस प्रकार घनानन्द ने 'बहुगुनी' पर राधा के नित्यप्रति के कार्य श्रद्धा भक्ति से किए हैं। प्रातः से लेकर रात्रि तक का कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो इस लाडली दासी ने न किया हो। मीरा की तरह घनानन्द भी चाकर बनने में गौरव का अनुभव करते हैं। उनका उद्देश्य प्रियतम का नैकट्य है, इसलिए वे चाकर बनकर उनका हर कार्य करते हैं ताकि राधा की कृपा से कृष्ण प्रसन्न हो जाएं। राधा मनोरथ पूरा करने वाली है इसलिए घनानन्द उनकी सेवा–टहल करते रहते हैं।

15.3.3 ब्रज भूमि

घनानन्द के हृदय में सम्पूर्ण ब्रज प्रान्त के प्रति श्रद्धा–अनुराग का भाव है। ब्रज कृष्ण–राधा की पावन लीलाभूमि है। यहाँ श्री है, शोभा है। पवित्रता है और गरिमा है जिसमें प्रत्येक भक्त डुबकी लगाकर अपने आप को कृत–कृत्य समझता है। इस भूमि का पावन–स्पर्श केवल अनुभव किया जा सकता है, शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। ब्रज सौन्दर्य–रस अगम–अगोचर है, इसका यश वाणी नहीं गा सकती। इसकी छवि आँखों द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इसका सौन्दर्य–सुख ही केवल अपने बारे में कह सकता है –

1. **सबतें अगम अगोचर ब्रजरस। रसना कहि न सकति याको जस।**

2. **गोकुल छवि आँखिनि ही भावै। रहि न सकै रसना कछु गावे।**

3. **यह सुख मुख हौ को उच्चरै। सुख ही निज सुख बरनन करै।**

ब्रज राधा–कृष्ण की प्रेमभूमि है। शेष, महेश, गणेश भी इसकी रज की वन्दना करते हैं। इसके दो कारण हैं – एक हैं कृष्ण का आवास और दूसरा प्राकृतिक सौन्दर्य। कृष्ण के निवास करने से यहां के निवासी आपस में आत्मीयता से रहते हैं। घर–घर में मंगलगान होता है, नित्य प्रसन्नता का वातावरण होता है। यहाँ के गैल–गलियारे लिपे–पुते साफ–सुथरे हैं। चारों तरफ सुन्दर श्यामल ऊँचे–ऊँचे वृक्ष हैं जिनके प्रतिबिम्ब से सरोवर का रंग भी गहरा हो जाता है। वस्तुतः कृष्ण की गन्ध ही यहाँ के वृक्षों – सरोवरों और वायु में विद्यमान रहती है जो प्राणी मात्र को आनन्दमग्न कर देती है। यमुना–किनारे कदम्ब की छांह विहार के लिए उद्दीप्त करती है। यहां निरन्तर मेघ बरसते रहते हैं और सम्पूर्ण ब्रजप्रान्त जलमय–रंगमय हो जाता है। कवि न केवल राधा–कृष्ण का प्रेम देखकर आनन्दित होता है अपितु ब्रजवासियों के वैभव–विलास को देखकर भी तन्मय हो जाता है। ब्रज के दर्शन–मात्र से ही भक्त कवि को माधुर्य और आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। इसका वैभव–अनुपमेय है। केवल ब्रज ही ब्रज की बात कह सकता है। कृष्ण की लीलाभूमि पर कवि सौ–सौ बार न्यौछावर होता है –

1. **या ब्रज सों यह ब्रज ही आहि। ब्रज की पटतर दीजै काहि।**

2. **ब्रज वृन्दावन की बलि जेयै। ब्रज वृन्दावन लीला गैयै।**

3. **ब्रज देखन की कृपामनैयै। याही तें यह ब्रज रग पैयै।**

यूं तो सम्पूर्ण ब्रजप्रान्त कवि के लिए आकर्षण केन्द्र रहा है लेकिन गोकुल और वृन्दावन के प्रति उन्होंने विशेष आस्था प्रकट की है गोकुल में कृष्ण के रूप में नन्द–यशोदा को अपने पुण्य–कर्मों की फल प्राप्ति हुई है, क्योंकि इसी कान्हा के कारण उनके द्वार पर हमेशा भीड़ लगी रहती है। कृष्ण को केवल नन्द यशोदा ही प्रेम नहीं करते बल्कि सभी प्राणी उसे अपना प्राण समझते हैं। इससे बढ़कर माँ–बाप के लिए और सौभाग्य क्या होगा कि उनका बेटा उनकी प्रेममय–सीमा रेखा लाँघ व्यापक स्नेहिल लोक में पहुंच जाता है। कृष्ण की एक–एक बात गोकुलवासियों को मुग्ध करती है। कृष्ण का घुटने चलना, हँसना, बात करना, वंशी बजाना सब कुछ स्नेह की दृष्टि करता है, उसका रूप और स्वभाव दोनों ही आनन्द–आल्हाद से परिपूर्ण है, इस आनन्द का वर्णन वही कर सकता है जिसने उसके दर्शन किए हैं। गोकुलवासियों के सुख भी अकल्पनीय हैं। क्योंकि उन्हें कृष्ण का साहचर्य प्राप्त है। इस साहचर्य–सुख के सामने तीनों लोकों की सम्पत्ति भी धूल समान है। वृन्दावन की शोभा का कहना ही क्या। यहां यमुना की श्यामल तरंगें प्राणिमात्र को श्याममय कर देती हैं। इसलिए घनानन्द यमुना और वृन्दावन दोनों की एक साथ आरती उतारता है –

जै जमुना जै जै वृन्दावन।

इसी वृन्दावन में राधा–कृष्ण रमण करते हैं। वृन्दावन अलौकिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है जहाँ प्रेमी–युगल प्रेम की लुका–छिपी खेलता है। यमुना के किनारे एकत्रित होकर वृन्दावनवासी राधा–कृष्ण को निहारते रहते हैं, प्रसन्न होते रहते हैं। यमुना–तीरे रजकण चिन्तामणि के समान अमूल्य हैं। ऐसा लगता है कि कवि को वृन्दावन से कोई अलग नहीं कर सकता। वृन्दावन के प्रति घनानन्द का लगाव देखकर ही सम्भवतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा होगा –

धन्य ये मुनि वृन्दावन वासी।

दरसन हेतु विहंगम है रहे मूरति मधुर उपासी।

15.3.4 यमुना

घनानन्द ने यमुना के प्रति भी अनन्य भक्ति प्रकट की है, क्योंकि यमुना के किनारे जाकर भक्त को ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। तीनों प्रकार के ताप–दुःख दूर हो जाते हैं, मनोकामना पूर्ण होती है, मंगल–सौभाग्य की वृद्धि होती है। इसका कारण है यमुना का जल जिसमें अपूर्व कान्ति है। कृष्ण के अंग–अंग से यह जल लिपटा है अथवा उसके शरीर के राग–रंग से यह कितनी बार तृप्त हुआ है। यह यमुना राधा को भी प्रिय है क्योंकि यहाँ उसे कृष्ण का संसर्ग प्राप्त होता है। यमुना–स्नान का महात्म्य इसलिए है कि यहाँ राधाकृष्ण ने विहार किया है। कवि यमुना की यशोगाथा बार–बार गाता है, गाते रहना चाहता है, यमुना को छोड़ और कहीं जाना नहीं चाहता–

या जमुना की भाग निकाई। मति अति रीझि विचार बिकाई।
या जमुना की हौं ही गाऊँ। या जमुना को सुदरस पाऊँ।
या जमुना मैं नित ही न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ।

15.4 सारांश

घनानन्द ने राधा और कृष्ण दोनों की समान रूप से वन्दना की है। कृष्ण अवतार हैं, वे भक्तों का कष्ट निवारण करने वाले हैं। लीला–विहार से त्रैलोक्य का सुख देने वाले हैं। राधा कृष्ण की प्रेमिका हैं सभी प्रकार की मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाली हैं। इसलिए दोनों ही घनानन्द के पूज्य हैं, उपास्यदेव हैं। वह दोनों के अनुग्रह का आकाँक्षी है। यदि वह कृष्ण की प्रतीक्षा करता है तो 'बहुगुनी' बनकर राधा के नित्यप्रति के कार्य संभालता है। आराध्य के अतिरिक्त वह आराध्य आवास तथा संबंधित वस्तु–व्यक्तियों से भी प्रेम करता है क्योंकि ये आराध्य देव के लीला एक्ल हैं। वह ग्वाल, गोपी, नन्द बाबा, यशोदा माँ सभी के प्रति भक्तिपरक उद्‌गार प्रकट करता है क्योंकि उन्हें उनसे आराध्य का सान्निध्य प्राप्त है। इस प्रकार घनानन्द ने विभिन्न मनः स्थितियों के अनुरूप अपने आराध्य की वन्दना उपासना की है। वह आराध्य के स्वागत के लिए हृदय–दीप भी जलाता है, पलकों के पाँवड़े भी बिछाता है राधा की चाकरी भी करता है। ब्रज में भी विचरता है। उसका हृदयदीप नाना रूपों में उसके काव्य में जगमगाता दिखाई देता है।

15.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने घनानंद की भक्ति भावना का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) भक्ति मार्ग का प्रमुख आधार क्या है?

   क) भागवत धर्म ख) मुक्ति धर्म ग) योग धर्म घ) साधना धर्म

2) बारह आलवार भक्तों के भावपूर्ण गीत किसमें संकलित हें–

क) गीत गोविंद ख) प्रबन्धम ग) योगसार घ) कबीर–पांसऊ

3) कृष्णभक्ति का प्रचार–प्रसार कहाँ हुआ–

क) आगरा ख) महाराष्ट्र ग) बंगाल घ) ब्रजमण्डल

4) घनानन्द किस सम्प्रदाय में दीक्षित थे

क) राधावल्लभ ख) निम्बार्क ग) निम्बार्क घ) रामावत

5) घनानन्द ने किसके प्रति भक्ति–निवेदन किया है–

क) राधा ख) कृष्ण ग) गणेश घ) राम

6) किसके समान घनानन्द भगवान की बाट जोहता रहता है–

क) कबीर और जायसी ख) रामानंद और धर्मदास

ग) सूर और तुलसी घ) मतिराम और भूषण

7) भागवत धर्म के अनुसार सृष्टि का उत्पत्तिकर्त्ता कौन है–

क) जीवात्मा ख) परमात्मा ग) रसात्मा घ) भावात्मा

8) घनानन्द अपने काव्य में किन की आरती एक साथ उतारते थे–

क) गंगा और यमुना ख) सरस्वती और ब्रज

ग) यमुना और वृंदावन घ) आगरा और ब्रह्मपुत्र

प्र2) रिक्त स्थान भरो :–

1) भक्ति की उत्पत्ति ..... धातु से बनता है।

2) ..... से भक्ति करने से भी भगवान कृष्ण की प्राप्ति होती है।

3) घनानन्द के हृदय में सम्पूर्ण ब्रज प्रान्त के प्रति ..... का भाव है।

4) घनानन्द ने .....दोनों समान रूप से वंदना की है।

5) भागवत धर्म में ..... भगवान की उपासना अस्तित्व में आई।

प्र3) सही / गलतः–

1) भगवान तक पहुंचने के लिए भक्ति माध्यम नहीं है। ( )

2) धनानन्द अपने भगवान की शक्ति के प्रति सजग है। ( )

3) ब्रज राधा–कृष्ण की प्रेम भूमि है। ( )

4) धनानन्द राधा को वृन्दावन की रानी और अपना स्वामी मानकर स्तुति वंदना नहीं करते। ( )

15.6 कठिन शब्दः–

1) बहुगुनी – अनेक गुणों से सम्पन्न

2) अनन्य – एकमात्र

3) आवास – ठहरने का अस्थायी स्थान

4) सौभाग्य – कल्याण, मंगल

5) अनुराग – प्रेम

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्नः

1. घनानन्द की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द के काव्य में व्यक्त राधा भक्ति पर लेख लिखिए।

_____

_____

_____

_____

_____

3. घनानन्द ने अपने काव्य में कृष्ण भक्ति का निरुपण किस प्रकार किया है ? स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

15.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. भागवत धर्म 2. प्रबन्धम 3. ब्रजमंडल 4. निम्बार्क 5. राधा 6. सूर और तुलसी 7. परमात्मा 8. यमुना और वृन्दावन

रिक्त स्थानः 1. भज् 2. दैन्य–भाव 3. श्रद्धा–अनुराग 4. राधा और कृष्ण 5. मानव–देहधारी

सही या गलतः 1. गलत 2.सही 3. सही 4. गलत

15.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2018 प्रकाशकः विनोद पुस्तक मंदिर
2. घनानन्द की काव्य कला – विजयपाल सिंह
3. घनानन्द – डॉ. गणेश दत्त सारस्वत
4. घनानन्द काव्यदर्शन – डॉ. सहदेव वर्मा
5. घनानन्द संवेदना और शिल्प – राजबुद्धिराजा

घनानन्द का शृंगार वर्णन

रुपरेखा

16.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
16.2 प्रस्तावना
16.3 घनानन्द का शृंगार वर्णन
16.3.1 गुण कथन
16.3.2 अभिलाषा
16.3.3 स्मृति
16.3.4 प्रलाप
16.4 सारांश
16.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

16.6 कठिन शब्द
16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.8 उत्तर कुंजी
16.9 पठनीय पुस्तकें

16.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको–

घनानन्द के काव्य में अभिव्यक्त शृंगार वर्णन से अवगत कराना।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप

– घनानन्द के काव्य में अभिव्यक्त शृंगार वर्णन को समझ पाएगें।

– घनानन्द के काव्य में व्यक्त शृंगार की दोनों अवस्थाएँ संयोग तथा वियोग को जान पाएंगे।

16.2 प्रस्तावना

समस्त आचार्यों न शृंगार को प्रमुख मान कर इसका रस राजत्व स्वीकार किया है। मानव हृदय की भावना के मूल में प्रेम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेम की यह भावना पशु–पक्षियों में भी पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होती है। अखिल विश्व में प्रेम तत्व की सत्ता भासित हो रही है। इस सृष्टि का विकास इसी तत्त्व का परिणाम है। इसी के मूल रति

नामक भाव से शृंगार की उत्पत्ति होती है। पं0 राम दहिन मिश्र ने 'काव्य–दर्पण' में भरत आदि आचार्यों के मत को इस प्रकार उद्धृत किया है – नव रसों में शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार रस ऐसा महत्वपूर्ण रस है जो मानव–जीवन की सम्पूर्ण परिस्थितियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। जबकि अन्य रसों में यह स्थायित्व नहीं है।

16.3 घनानन्द का शृंगार वर्णन

कालिदास से लेकर अब तक प्रायः सभी कवियों ने शृंगार रस का आधार नारी को ही माना है। वीरगाथा काल तथा भक्तिकाल में भी यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही। रीतिकाल में तो यह धारा अपने पूर्ण विकसित रूप में दृष्टिगोचर होती है। इतना अवश्य है कि भक्तिकाल में शृंगार को आध्यात्मिकता के आवरण में आवृत कर दिया गया, किन्तु कृष्ण–काव्य में वह प्रायः पूर्ण रूप से लौकिक पक्ष का समर्थक रहा, बाद में तो अत्यन्त अश्लीलता एवं कामुकतापूर्ण चित्रों पर भी बलात् भक्ति का आरोप करने का असफल प्रयास किया गया, किन्तु यह सब कुछ आश्रयदाताओं की कुत्सित मनोवृत्ति को तृप्त करने के लिए ही किया गया था। किन्तु घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि कुछ स्वतन्त्रचेता कवियों ने अपने–आपको इस असंयत प्रवाह से रोकने का प्रयत्न किया। यह सर्वमान्य है कि घनानन्द वियोगी थे। उन्होंने हिन्दी–साहित्य को अनेक अनूठी रचनाएँ प्रदान कीं। उनकी रचनाओं में शृंगार की धारा स्पष्ट गोचर होती है, किन्तु इन रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है, शृंगार रस की विश्वपरक भावभूमि को अपने हृदय की सच्ची टीस से अभिमण्डित करना। यद्यपि वह टीस सुजान पर अनुरक्ति का कारण है। सुजान के प्रति घनानन्द का प्रारम्भिक मांसल अनुराग भी बाद में वासना रहित हो राधा के प्रति पद्यमय रूप में निखर उठा। उनके इन रूपों में सौम्य तथा भव्य दोनों रूपों को सरलता से देखा जा सकता है। संयोग, वियोग की बाह्य एवं आन्तरिक दशाओं का सूक्ष्म एवं मार्मिक वर्णन उनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। अस्थिचरममय देह के विकार को विशुद्धता व पावनता शरीरी–धर्म के रूपों में स्थित किया है और जहाँ बन पड़ा है वहां आध्यात्मिक स्तर व भक्तिभावना से भी मण्डित किया है। यही इनके शृंगार की सबसे बड़ी विशेषता है।

शृंगार का स्थायी भाव 'रति' है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से शृंगार जीवन का आधे से भी अधिक पक्ष है। हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रेम ही मानव हृदय की मूल भावना है, वही शृंगार रस का मूलाधार है। संस्कृति का विकास इसी प्रेम का प्रतिफलन है। नायक नायिका ही इस रस के अवलम्बन हैं। यह रस मानव के अंग–प्रत्यंग में निहित है। निस्सन्देह प्रेम का साम्राज्य असीम है। सूरदास ने प्रेम के महत्व का प्रतिपादन इन शब्दों में किया हैः–

प्रेम प्रेम तें होई प्रेम में पार ही पइए,
प्रेम बंध्यों संसार प्रेम परमारथ लहिये।
एकै निश्चय प्रेम की जीवन मुक्ति रसाल,
सांचो निश्चय प्रेम की जहिरै मिले गोपाल।।

न केवल हिन्दी साहित्य में वरन् विश्व–साहित्य में भी प्रेम का सर्वोत्कृष्ट स्थान है जो शृंगार का मूल है। शृंगार भावना की चरम सीमा प्राकृत एवं अपभ्रंश के मुक्तकों में पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। इसका कारण वाममार्गीय प्रभाव प्रतीत होता है।

हिन्दी में शृंगार वर्णन का प्रवेश जयदेव के गीत–गोविन्द से माना जा सकता है। गीत गोविन्द में स्थान–स्थान पर असंयत तत्त्व भी प्रवेश पा गये हैं। जयदेव से सर्वप्रथम प्रेरणा प्राप्त करने वालों में विद्यापति हैं। उन्होंने अपनी पदावली में राधा व कृष्ण के जीवन को सर्वांगीण रूप में न देखकर उनकी विलासमय लीलाओं को प्रेममय रूप देने का प्रयत्न किया है। यद्यपि विलासता की गन्ध उनमें भी झांकने लगती है किन्तु उस समय की भक्ति का रूप भी

अनेक धर्माचार्यों के द्वारा इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया था जहाँ विशुद्ध शृंगार पर भी भक्ति का आरोप कर ही लिया जाता था।

रीतिकालीन काव्य में शृंगार भावना की भक्ति–मण्डित भव्यता के स्थान पर स्पष्ट वासनात्मक रूप दिखाई देता है। प्राकृत की 'गाथा सप्तशती', 'आर्या सप्तशती' आदि से शृंगार की नग्न भावना हिन्दी में आई। विद्यापति पर भी इनका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। रीतिकालीन कृष्ण व राधा मात्र सामान्य नायक–नायिका रह गये। गोपियों का स्थान अनेक नायिकाओं ने ले लिया और वृन्दावन की कुंज गलियाँ महलों में आ बिराजीं, जहाँ कवि स्वयं ही अपनी सत्ता को खो बैठे और राज्याश्रित होने के कारण बालकृष्ण को जगाने के स्थान पर वासना को जगा कर ही यश तथा धन अर्जित करने लगे। इन कवियों में आचार्य बनने का चाव भी उत्तरोत्तर बढ़ रहा था अथवा कहना चाहिये आचार्य ही कवि बनने के विशेष प्रयासी रहे। परिणाम यह हुआ कि रीतिकालीन कविता इतनी अलंकार–युक्त हो गई कि उस भार को न सम्भाल सकी और संस्कृत काव्य–शास्त्र के लक्षण–ग्रन्थ एवं सतसई आदि को आधार मानकर यह काव्य–धारा प्रवाहित होती रही। इस काव्य में अनेक अश्लील चित्र निर्मित किये गये। प्रजा–रक्षक राजा–महाराजा, कमसिन कामिनियों के केशपाशों को सुलझाते हुए स्वयं उनमें उलझे रहे। आन्तरिक मनोवृत्तियों का प्रायः परित्याग कर बाह्य मनोवृत्तियों का ही चित्रण प्रधान हो गया। इस युग की शृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता तथा सूक्ष्म आन्तरिकता की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राधान्य है। इस घोर शृंगारिक वातावरण में भी कतिपय कवियों ने अपने व्यक्तित्व को इस धारा में नहीं बहाया और निराश्रित होकर भी मथुरा वृन्दावन के सुरम्य सुरभित वातावरण में बैठकर आप–बीती आन्तरिक मनोदशा का हृदय–बेधक चित्रण किया है। इस दृष्टि से घनानन्द का स्वर रीतिकाल के कवियों से भिन्न है। प्रेमी कवियों के ये मुकुटमणि हैं।

घनानन्द ने शृंगार के दोनों पक्षों (संयोग तथा वियोग) की बाह्य एवं आन्तरिक मनोवृत्तियों का सूक्ष्म एवं हृदयग्राही वर्णन किया है। कृष्ण–राधा तथा सखियों को घनानन्द ने अपने काव्य का आलम्बन व प्रमुख पात्र बनाया। 'सुजान' शब्द को कहीं कृष्ण तो कहीं राधा के सम्बोधन में प्रयोग किया गया है। यह सकारण है क्योंकि घनानन्द का तन–मन, शरीर–धर्म अस्थि चरममय सुजान के प्रति आसक्त था और जब वे रंगीले के दरबार में अपमानित होकर इस प्रेम को पाने में असफल हुए तो उसी भौतिक शरीर को जो हृदय में पहले ही समा चुका था काव्य का चोला पहनाकर मूर्त रूप दे दिया, उन सुन्दर सुखद स्मृतियों को जिनकी रूप–लिप्सा में मन स्वयं को विस्मृत कर विकल होकर रोता तड़पता है। उसी हृदयबेधी तड़पन को वृन्दावन की कुंज–गलियों में घूम–घूम कर घनानन्द ने ऊँचे स्वर में गाया। वही उनका संयोगी तथा वियोगी काव्य है। उसी नाम को उन्होंने प्रभु मानकर आह्०ान किया।

वियोगी कवि घनानन्द ने पहले संयोग द्वारा अपने काव्य में मिलन व मान का वर्णन करके रंगीले तथा उसके दरबारियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। पहले ये रसिक मुंशी थे। अतः उस रसिक ने अपने हृदय–कपाट कृष्ण के मन्दिर में आकर खोल दिये और सारा रस उसी के चरणों में उडेल दिया। यह माना कि ये कृष्ण रीति–युग के कृष्ण हैं। भोगी विलासी और घोर–शृंगारी। यह वर्णन इनका संयोग के अर्न्तगत है। संयोग शृंगार में इन्होंने संयोग को उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति को उद्दीपन–रूप में ग्रहण किया है।

घनानन्द के प्रेम में रूप–लिप्सा का योग तो है, परन्तु साहचर्य का उतना व्यापक वर्णन जितना सूरदास के काव्य का है इनमें नहीं मिलता। साथ ही इन्होंने कृष्ण की लीलाओं को उतना स्थान नहीं दिया जितना सूर ने। यौवनकालीन क्रीड़ाओं को भी इन्होंने महत्व नहीं दिया है। हाँ इन्होंने कृष्ण की रूप–माधुरी का वर्णन किया है और उसमें वैसी ही मार्मिकता, तन्मयता तथा तल्लीनता है जैसा अन्य उत्कृष्ट कृष्ण–भक्त कवियों में। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद्य देखिये–

मोर चन्द्रिका सिर धरैगो गुंज की माल।
धातु चित्र करि पीतपट मोहन मदन गुपाल।।

इसी प्रकार राधा के रूप–सौन्दर्य का वर्णन किया है। घनानन्द की गोपियाँ कृष्ण की इस रूप–लिप्सा पर मोहित हैं। वे मुरली के पंचम स्वर को सुनते ही फड़क उठती हैं। राधा की चारुतम रूप माधुरी भी कृष्ण को अपनी और आकृष्ट करती है और राधा कृष्ण के प्रति नैन–सैन चलाती है। राधा के रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

लाजनि लपेटि चितवनि भेद भाय भरी,
लसलित ललित लोल चख तिरछीन मै।
छवि की सदन गोरो बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मधु मुस्कयानि में।
दसन दमकि फैलि हिये मोती लाल होति;
पियसों लड़कि प्रेम पगी बतरानि में।
आनन्द की निधि जगमगाती छबीली लाल,
अंग न अनंग–रंग दुरी मुरजानि में।

सूर की भांति घनानन्द भी किसी प्रकार अपने कृष्ण और राधा के मुंह पर ताला नहीं लगाते हैं वरन् वे भी उन दिनों की बात को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं। गोपी कृष्ण से कहती है–

'छैल नये नित रोकत' गैल–सुफैलत कापै अरैल भये हो।
लै लकुटि हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन–तए हो।
लाल अंचौ बिन काज खगो तिनहि सों शैगो जिन रंग रए हो।
ऐंड़ सबै निकसेगी अबै घन–आनन्द आनिकहा अनए हो।

यहाँ सूर की ही भाँति व्यंजनात्मकता व सजीवता है। घनानन्द के कृष्ण भी चुप होने वाले नहीं हैं। वे गोपी से स्पष्ट कहते हैं कि तू हमारी अकड़, चाल आदि का क्या ताना मारती है। तुझे अपने विशाल नेत्रों पर गर्व है, पर कृष्ण बिना कर लिये नहीं जाने देगा। जो पहले बचकर निकल गई, सो निकल गई। पर अब अछूती नहीं जा सकती–

हैं उन्नए सुनए न कछु उघटैकत ऐंड़ अमैंड अयानी।
बैन बड़े–बडे नैनन के बल बोलती क्यों हो इती इतरानी।
दान दिये बिना जान न पाई है आई जो चलि खोरि बिरानी।
आगे अछूती गई सु गई घन–आनन्द आज भई मनमानी।

घनानन्द के प्रेम में हृदय की आन्तरिक भावना है। उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता या चातुरी का प्रदर्शन नहीं है। उसमें वासनात्मक प्रकृति की झलक शनैः शनैः लुप्त हो जाती है। घनानन्द ने अपने मार्ग की व्याख्या स्वयं ही की है:–

अति सूघो सनेह को मारग है, जहां नेक सयानप बांक नहीं।
तहां सांचे चले तजिं आपुनपों झझकें कपटी जै निसाँक नहीं।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहां एक ते दूसरों आंक नहीं।
तुम कौन छौ पाटि पढ़े हाँ कहौ मन लैहू पै देहु छंटाक नहीं।

इस प्रकार की घोषणा रीतिकालीन कवियों के लिये स्पष्ट ही एक चेतावनी है। प्रेम का मार्ग तो सर्वथा सरल है यह तो हृदय का हृदय से सीधा सम्बन्ध है। इसमें किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं।

घनानन्द के शृंगार में चाहे वह संयोग हो या वियोग उनका ध्यान विशेष रूप से भाव–गाम्भीर्य की ओर रहा है और यही कवि की सफलता का रहस्य है। शृंगार भावना का चित्रण करते हुए घनानन्द ने नायक–नायिका की मनोदशा का ही विशेष रूप से ध्यान रखा है। संयोग शृंगार में भी उसका विवरण उतना प्रस्तुत नहीं किया जितना हार्दिक भावनाओं का।

वस्तुतः वियोग शृंगार के बिना न तो संयोग का पूर्ण रूप से आस्वाद प्राप्त होता है और न उनके मूल्यों का अंकन ही किया जा सकता है। रति की आध्यात्मिक परिणति वियोग शृंगार द्वारा ही सम्भव है। विरह काव्य की कसौटी है। विरह द्वारा मन शुद्ध हो जाता है। उसमें से शारीरिक वासनात्मक दुर्गन्ध दूर हो जाती है। यह भी कहा जा सकता है कि इससे स्वार्थ भावना निर्मूल हो जाती है। वास्तव में विरह ही जीवन है और विरह ही प्रेम की जागृत अवस्था है। वियोगी कवि की भावना हृदय से प्रकट हो प्रपात की भाँति प्रवाहित होने लगती है और काव्य का रूप धारण कर पाठक के हृदय को मथ डालती है। विरह की कोई एक ही तो दशा नहीं। न जाने कब प्रेमी हृदय प्रेयसी को पुकार उठे। वे बातें जो प्रतिपल हृदय में वास करती हैं जिन्हें प्रकट करने का अवसर दिन में अर्थात् जागृतावस्था में नहीं मिलता वहीं स्वप्न में चल–चित्रवत दृष्टिगत होने लगती हैं और दबी भावनाएँ एक–एक कर साकार हो नाच उठती हैं। सुप्तावस्था में अन्तर्मन की भावना सजीव हो जाती है। मानसिक भावना का एक सरस चित्रण देखियेः–

जगि सोवनि में जगियै रहै चाह वहै वरराय उठै रतियां,
भरि अंक निसंक ह्वै भेंटन की अभिलाष अनेक भरी छतियां।
मनतै मुख लो नित फैर बड़ौ कित ब्यौरि सकों हित की बतियां,
घन–आनन्द जीवन प्राण लखौ सुलिखी किही भाँति परै पतियां।

जब प्रेमी अपने प्रेम में रंग कर सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है तो प्रेमिका (राधा) प्रेमी (कृष्ण) को उपालम्भ देती है कि मुझे क्यों मझधार में डूबाने की ठान ली। अब निष्ठुर क्यों बन गये। मैंने तो विश्वास किया तुम विश्वासघात कर बैठेः–

पहले अपनाय सुजान सनेह सों,
क्यों अब नेह तो तोरिये जू।

संयोग के सुखद क्षणों की स्मृति से वियोगिनी के हृदय में पीड़ा का संचार होता है। अपने प्रियतम की छवि की स्मृति में प्रियतमा व्यथित होती है। वह अपने रूपपिपासु नेत्रों को कृष्ण के दर्शनों से तृप्त करने को व्याकुल है। उसे कृष्ण की मुरली बजाने की मुद्रा, उनकी मन्द–मन्द मुस्कराहट, मीठी–मीठी उक्तियाँ सुनने की अभिलाषा जागृत होती है यह विरह–ताप दर्शन से ही मिट सकता हैः–

छवि की सदन सौदमण्डित बदन चन्द,
तृसित चखन लाख कबधौ दिखाय हौ।
चटकीलो भेस करै मटकीली भाँति सौं ही,
मुरली अधर धरै लटकत आये हौ।
लोचन दुराय कछु मृदु मुस्काय नेह,
भीनी बतियानी लड़काय बतराय हौ।

बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि आनन्द को घन बरसाय हौ।

प्रिय के गुणों का स्मरण वियोगिनी के लिये वियोगावस्था में दृढ़ संबल होता है। उन गुणों के स्मरण से ही वह अपने प्रेम को दृढ़ता देती है। उसके आकर्षण का कारण यही तो थाः–

रावरैं रूप की रीति अनूप,
नयो–नयो लागत ज्यों–ज्यों निहारिये।

विरहिणी तड़प रही है अपने प्रिय के लिये। किन्तु इस तड़पन में भी प्रिय के लिये सुख तथा आनन्द की ही कामना रहती है। प्रेम की इसी त्याग–भावना का चित्रण देखियेः–

घन आनन्द जीवन प्रान सुजान, तिहारी पै वातनि लीजियै जू।
निरतनीकै रहौ चाटुकाई, असीस हमारियो लीजियै जू।।

घनानन्द ने वियोगिनी के नेत्रों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। वियोग के कारण वे वैसे ऊबे रहते हैं फिर प्रियतम के दर्शनों की लालसा से उत्कण्ठित, अतः नेत्रों में जलन रहती है। अनेक प्रयत्न करने पर भी सुधार की सम्भावना नहीं। लगता है इन्हें भस्मक रोग ने ग्रस्त कर लिया है। इस कारण प्रिय के वियोग में नेत्र लंघन कर रहे हैः–

घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन,
आनन्द अराति राती साधनि भरति हैं।

जीवन अधार जनरूप के अधार बिन,
व्याकुल विकार भरी खरी सुजरति हैं।

संयोगावस्था में ही ये नेत्र आकर्षक सौन्दर्य को देखने से आह्लादित होते थे, किन्तु अब इनकी अवस्था विपरीत हो गई है। विकसित कमलों को देखने से इनमें उदासी छा जाती है, शीतल मन्द समीर का झोंका इन नेत्रों के लिए दाहक हो जाता है। प्रिय के रूप के गुण के अभाव में वेदना की गाँठ पड़ जाती है। इस अवस्था को सुलझाने का कोई उपाय ही दृष्टिगोचर नहीं होताः–

विकच नलिन लखैं सकुच मलिन होति,
ऐसी कुछ आंखिन अनौखी उरझनी हैं।
सौरभ समीर आये बहकि बहकि जाये,
राग भरे हिय में विराग मुरझनि हैं।

यों तो रीतिकालीन अन्य अनेक कवियों ने संयोग–वियोग के अनेक चित्रण किये हैं, किन्तु वियोगिनी की विरहाकुल दशा से महाकवि घनानन्द जितने परिचित थे वैसी अनुभूति अन्य किसी कवि में दृष्टिगोचर नहीं होती। वियोग की दुर्दमनीय दशा में निष्प्राण होकर जीना तथा बिना मृत्यु ही मरना पड़ता है। सोते–जागते चैन नहीं पड़ता। रोना भी यहाँ लाभदायक प्रतीत नहीं होता। विरहिणी का यह अगाध विश्वास ही दृढ़ सम्बल है कि उसका प्रियतम उसके हृदय में विद्यमान है। इस दशा का अन्य कोई भी अनुमान नहीं कर सकताः–

अन्तर उदेग दाह आंखिन प्रवाह आँसू,
देखि अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोइबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोइबो है,

खोए खोए आप ही में चेटकी लहनि है,
जान प्यार प्राननि बसत है आनन्द घन,
विरह विषम दसा मूक लौं कहनि है।

विरही की दशा चेतन–अचेतन का भेद करने में भी असमर्थ हो जाती है क्योंकि उसके सामने इस दशा में केवल येन केन प्रकारण प्रियतम के पास अपनी दयनीय दशा का भान कराने की ही चाह मन में पड़ी रहती है। प्राचीन काल से ही यह परम्परा चली आई है। कालिदास ने यक्ष को मेघ का सन्देशवाहक बना कर भेजा। जायसी में भी इस भावना के दर्शन होते हैंः–

मकु तेहि मारग उड़ि परे कन्त धरै जेहि पाँय।
नागमती ने अपने विरहोद्‌गारों को भौरें तथा कौवे के द्वारा ही प्रिय के समीप भेजा है।
पिउ सों कहत सन्देसड़ा है भौंरा ! हे काग !
उहि धनि विरहै जरि मुंई तेहिक धुआ हम लागि।।

सूर तथा नन्ददास ने भी इसी प्रकार के साधनों से काम लिया है। इन बातों में चाहे ऐतिहासिक तथ्य भले ही न हों परन्तु यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि विरहिणी अपने प्रेम की भावना को प्रियतम तक पहुंचाने का उपक्रम अवश्य करना चाहती है। घनानन्द की विरहिणी भी इस प्रकार के अनेक संदेशों को अन्य साधनों से प्रेषित करती है। वह बादल को परोपकारी मानती हुई अपने आँसुओं को प्रियतम के आँगन में बरसने को कहती है जिससे उसे विरहिणी के प्रेम का परिचय मिल सकेः–

परकाजहि देह को धारे फिरौं वरजन्य जथारथ ह्वै बरसो,
निधि नीर सुधा के समान करौ सबहि विधि सज्जनता सरसो।
घन आनन्द जीवनदायक हो कछु मेरीयौ पीर हिये परसो,
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आंगन मां अँसुवान को ले बरसो।

इसी प्रकार विरहिणी पवन से भी अपना सन्देश कहती हैः–

ऐरे बीर पौन तैरो सबै और गौ, बारी,
तो सौ और कौन, मनैं ढरकोहीं बानि दे।
जगत के प्राण औछे बड़े तौं समान धन।
आनन्द निधान सुखदान अख्यानि दै।
जान उजियारे गुनभारे अति मोहि प्यारे।
अब ह्वै अमोहि बैठे पीठि पहिचानि दै।
विरह बिथा की मूरि आंखिन में राखौ पूरि,
धूरि तिन पायन की हाहा नैकुं आनि दै।

आचार्यों ने विरह की अनेक दशायें मानी हैं। जैसे गुण–कथन, अभिलाषा, स्मृति, मूर्च्छा, उन्माद, प्रलाप, मृत्यु आदि। घनानन्द की विशेषता यह है कि उन्होंने इन सभी दशाओं का चित्रण गम्भीरता एवं भावुकता से किया है और अपनी सच्ची अनुभूति से काव्यों को अलंकृत किया है। इन अवस्थाओं के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैंः–

16.3.1 गुण कथन –

प्रियतम के गुणों के कथन तथा उनके स्मरण से विरहिणी को एक आधार प्राप्त होता है। प्रथम अवस्था में प्रेम का कारण गुणों का ही आकर्षण होता है:–

छवि को सदन मोद मण्डित बदन–चन्द,
तृसित चलन लाल कब धौं दिखाय हो।

16.3.2 अभिलाषा –

वियोगिनी के हृदय से असंख्य अभिलाषाएँ जागृत होती हैं जिनमें प्रियतम के दर्शनों की लालसा सर्वाधिक बलवती है। उसकी वाणी प्रियतम का ही नाम रटती रहती है। इसी कारण प्रिय के दर्शनों की अभिलाषा हृदय में विद्यमान है:–

दृग नीर सों दीठही देहुँ बहाव पै वामुख की अभिलाख रहि।
रसना विष बोरि गिराही गसैं यह नाम सुधा निधि भाखि रही।।

16.3.3 स्मृति –

स्मृति की भावना से तो घनानन्द का समस्त काव्य ही ओत–प्रोत है। विरहिणी स्मृति के कारण ही रुदन करती है:–

हित भूलि न आवत है सुधि क्यों हूं,
सु यों हूं हमें सुधि कीजत है।
मूर्च्छा तथा उन्माद – यह दशा वियोग की चरम अवस्था है।
घन आनन्द जान तुम्हें बिनयों गति पंगु भई मति घावति ना,
सुधि देन कहीं सुधि लेन चही, सुधि पाये बिना, सुधि आवति ना।

विरह–वेदना के आधिक्य से ही उन्माद की अवस्था उत्पन्न हो जाती है:–

खोय दई बुधि सोय गई सुधि रोय हँसै उन्माद जग्यौ है।
मौन गहै चकि चाकि रहै, चलि बात कहै, तनदाह दयौ है।
जानि परै नहीं जान तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आनि खग्यो है।
सोचनि ही पचिये घनआनन्द हैत पग्यौ किंधौ प्रेत पग्यौ है।।

16.3.4 प्रलाप –

विरह के कारण अत्यधिक व्याकुलता से विरहिणी प्रलाप करने लगती है:–

अन्तर हौ किंधौं अन्त रहौं दृग फेरि फिरौं कि अभागिन भीरौं।
आगिजरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं, हिय का विधि धीरौं।।

ऐसी निराश दशा में विरहिणी मृत्यु की कामना करती है। किन्तु मृत्यु भी तो उसकी उपेक्षा करती है:–

बनी है कठिन महा मोहि घन आनन्द यौं।
मीचौ मरि गई आसरौ न जिन ढूकिये।।

16.4 सारांश

श्री परशुराम चतुर्वेदी के कथनानुसार– 'घनानन्द ने विरह के महत्व को भली–भाँति समझाया। इसलिये प्रेमी के विरह–दग्ध हृदय तथा उसके सूक्ष्मतिसूक्ष्म एवं अनिवर्चनीय मानसिक व्यापारों का जैसा सुन्दर वर्णन अपनी कविता द्वारा उन्होंने किया है वैसा बहुत कम कवि कर पाये हैं। घनानन्द की यह विशेषता है कि प्रेमी की दशा व उसकी परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते समय वह बहुत से अन्य कवियों की भाँति केवल शब्दाडम्बर का आश्रय नहीं लेते और न अन्योक्तियों का गाढ़ा रस चढ़ाकर किसी कोमल भाव को भद्दा बनाते हैं। उनके विरह–वर्णन में एक आश्रित का अनुरोध एवं मर्यादित आत्मनिवेदन है जो अपनी स्वाभाविकता के कारण सुनने वाले का मन बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। घनानन्द के काव्य में सुजान शब्द मात्र मौलिकता का परिचायक नहीं है।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – घनानन्द ने अपनी कविता में सुजान शब्द का बराबर प्रयोग किया है। इसे शृंगार पक्ष में नायक के लिये तथा भाव पक्ष में कृष्ण के लिये मानना चाहिए। कृष्ण और नायक का एकीकरण समय की मांग थी जिसे उन्होंने भली प्रकार पूरा किया। सच तो यह है कि घनानन्द का काव्य उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है और अपने भावों को मूर्तरूप प्रदान करके वे समस्त रीतिकालीन कवियों के सिरमौर बन गये हैं।

घनानन्द के इस शृंगार रस के प्रतिपादन का रहस्य है अपनी गहन अनुभूति को काव्य–रूप में सरसता से परिणत करना। उनका कवि विरह–अग्नि की ज्वाला में तप कर कुन्दन बन चमक उठा है। कवि के हृदय की टीस में भगवत् प्रेम की निष्ठा भी है और नायक के प्रति शुभकामना भी। रति–भाव में कामुकता का स्थान विरह ने ले लिया है। घनानन्द का शृंगार वस्तुतः हिन्दी साहित्य में महान् विरही कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखता है – यह निर्विवाद है।

16.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने घनानंद के काव्य में अभिव्यक्त शृंगार वर्णन का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) शृंगार रस का स्थायी भाव क्या है?

   क) रति ख) निर्वेद ग) शोक घ) ह्रास

2) हिन्दी में शृंगार वर्णन का प्रवेश किस रचना से माना जाता है?

   क) गीत–गोविंद ख) पदावली ग) बीसलदेव रासो घ) दोहा कोश

3) किस विद्वान का कथन हे ''घनानन्द ने अपनी कविता में सुजान शब्द का बराबर प्रयोग किया है?

   क) विश्वनाथ त्रिपाठी ख) नामवर सिंह

   ग) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त घ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

4) 'काव्य–दर्पण' किसकी रचना है?

क) घनानन्द ख) डॉ. राम दहिन मिश्र

ग) सुदन घ) चिंतामणि

5) रीतिकाल में प्रेम कवियों में मुकुटमणि किसे कहा जाता है?

क) पद्माकर ख) ठाकुर ग) घनानन्द घ) रहीम

6) घनानन्द के प्रेम में हृदय की कौन–सी भावना है?

क) बहारी ख) शाब्दिक ग) भाशिक घ) आन्तिरक

7) किस विद्वान का कथन है ''घ्नानन्द ने विरह के महत्व को भली–भांति समझाया।''

क) श्री परशुराम चतुर्वेदी ख) राम दहिन मिश्र ग) डॉ. नगेन्द्र घ) डॉ. भगीरथ मिश्र

प्र2) रिक्त स्थान भरो :–

1) घनानन्द ने .....के नेत्रों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है।

2) ..... ने यक्ष को मेघ का सन्देशवाहक बना कर भेजा।

3) रति की आध्यात्मिक परिणति ..... द्वारा ही सम्भव है।

4) जयदेव से सर्वप्रथम प्रेरणा प्राप्त करने वालों में ..... है।

5) घनानन्द ने राधा व कृष्ण के लिए ..... शब्द का प्रयोग किया है।

प्र3) सही / गलत :–

1) घनानन्द राजमुंशी पद पर कार्यरत थे। ( )

2) नव रसों में श्रृंगार प्रमुख रस नहीं है। ( )

3) मानव हृदय की भावना के मूल में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है। ( )

4) घनानन्द के प्रेम में रूप–लिप्सा का योग नहीं है। ( )

5) स्मृति की भावना से घ्नानन्द का समस्त काव्य ओत–प्रोत है। ( )

16.6 कठिन शब्दः–

1) अनुभूति – अनुभव

2) स्मृति – याद

3) विरह – वियोग

4) प्रलाप – पागलों जैसी बात करना

5) अभिलाशा – इच्छा

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. घनानन्द के शृंगार वर्णन पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द के काव्य में व्यक्त संयोग वर्णन का आकलन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

3. घनानन्द के काव्य में व्यक्त वियोग वर्णन का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

16.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. रति 2. गीत–गोविंद 3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल 4. डॉ. रामदहिन मिश्र 5. घनानन्द 6. आंतरिक 7. श्री परशुराम चतुर्वेदी

रिक्त स्थानः 1. वियोगिनी 2. कालिदास 3. वियोग शृंगार 4. विद्यापति 5. सुजान

सही या गलतः 1. सही 2. गलत 3.सही 4. गलत 5. सही

16.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2018 प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर
2. घनानन्द की काव्य कला – विजयपाल सिंह
3. घनानन्द – डॉ. गणेश दत्त सारस्वत
4. घनानन्द काव्यदर्शन – डॉ. सहदेव वर्मा
5. घनानन्द संवेदना और शिल्प – राजबुद्धिराजा

घनानन्द की काव्य कला

रुपरेखा

17.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
17.2 प्रस्तावना
17.3 घनानन्द की काव्य कला
17.3.1 भाषा
17.3.2 अर्थ गाम्भीर्य
17.3.3 छन्द विधान
17.4 सारांश
17.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

17.6 कठिन शब्द
17.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.8 उत्तर कुंजी
17.9 पठनीय पुस्तकें

17.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको–

घनानन्द की काव्य कला के अंतर्गत उसकी भाषा, अर्थ गाम्भीर्य, छन्द विधान से अवगत कराना।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप

– घनानन्द की काव्य कला के बारे में जानेंगे।

– घनानन्द के काव्य में भाषा का सुन्दर प्रत्यक्षीकरण हुआ है, जानेंगे।

– घनानन्द के काव्य में व्यक्त शैली विज्ञान को जानेंगे।

17.2 प्रस्तावना

रीतियुगीन स्वच्छन्द काव्य परम्परा के अग्रण्य कवि घनानन्द के काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति–दोनों स्तरों पर लीक से हटकर चलने की परम्परा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उनकी कविता उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। उनका कथन – 'लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहि तो मेरे कबित बनावत' उनके सम्पूर्ण काव्य पर घटित होता है। कविता

हृदय की स्वाभाविक भावनाओं के उच्छलन की सहजाभिव्यक्ति है। उसे सहज रूप में कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति करने में ही कलाकार की सफलता है। घनानन्द ने जैसा देखा, अनुभव किया – उसे उसी रूप में अभिव्यक्त कर दिया।

17.3 घनानन्द की काव्य कला

17.3.1 भाषा

साहित्य प्रतिभा–विशिष्ट और परिष्कृत आत्मानुभूति का सरस प्रत्यक्षीकरण होता है। भाषा का सुन्दर आवरण ही इस प्रत्यक्षीकरण को रमणीय रूप प्रदान करता है। भाषा का यह आवरण तभी सुन्दर होगा जबकि उसमें भावानुरूप अभिव्यंजना, सरसता, प्रांजलता, स्पष्टता तथा धारावाहिकता आदि साहित्योपयुक्त गुण होंगे। रीतिकाल ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा। इस युग की ब्रजभाषा में कलात्मकता अधिक आ गई थी। भाषा की मार्मिकता, लाक्षणिकता तथा भाव–प्रवणता युग की विशेष देन है। घनानन्द से पूर्व ब्रजभाषा का पूर्णतः विकास हो चुका था। उन्हें विरासत में एक विकसित भाषा प्राप्त थी। अतः उन्होंने पूर्ण साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया। घनानन्द की काव्य भाषा में कालिदास की भाषा की–सी मधुरता तथा माघ जैसी नवीनता पाई जाती है। घनानन्द ने तत्कालीन स्वीकृत काव्यभाषा का अत्यन्त साफ–सुथरा और प्रांजल रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। इनकी भाषा के सम्बन्ध में डॉ. रामफेर त्रिपाठी का अभिमत है – 'वह साहित्यिक, लाक्षणिक, रसानुकूल, व्याकरणिक व्यवस्थानुकूल, संगीतात्मक, ध्वन्यात्मक, मुहावरे एवं लोकोक्तियों से भरी कोमल, सरस तथा सजीव थी।'

घनानन्द की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। उन्होंने ब्रजभाषा को परिष्कृत करके उसे रमणीय बनाया है। ब्रजभाषा में उनके पूर्व अनेक महारथियों ने रचनाएं की थीं किन्तु घनानन्द जैसा लालित्य, उनकी–सी मधुरता पहले नहीं मिलती। घनानन्द के प्रशस्तिकार 'ब्रजनाथ' ने उनके काव्य का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए लिखा है –

नेही महा ब्रजभाषा–प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानै।
जोग–बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना–भेद–स्वरूप को ठानै।
चाह के रंग मैं भोज्यौ हियो, बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा–प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कबित्त बखानै।।

ब्रजनाथ ने उक्त कथन में घनानन्द के काव्य की सभी विशेषताओं को समेट लिया है। वे ऐसे 'नहीं' थे जो ब्रजभाषा में पारंगत थे। इसी से सरसता उनके काव्य में आद्यन्त मिलती है। उनका भाषा पर असाधारण अधिकार था। वे ब्रजभाषा की नाड़ी पहचानते थे। उन्होंने बड़ी सुन्दरता से शब्द प्रयोग किया है। उन्होंने एक–एक शब्द चुन–चुनकर रखा है। उनके शब्द प्रयोग अभीष्ट लक्ष्यापूर्ति में सहायक हैं।

घनानन्द के काव्य में ब्रजभाषा का ठेठ रूप प्रयुक्त हुआ है। ब्रजभाषा के साथ–साथ पंजाबी, अरबी, राजस्थानी, खड़ी बोली तथा संस्कृत के शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है। इसका कारण उनका भाषा–प्रवीण होना है। विभिन्न भाषाओं के शब्द–समूह आ जाने पर भी उनकी भाषा दोषमुक्त है। विभिन्न भाषाओं के शब्द प्रयोग द्वारा उनकी भाषा अत्यन्त समृद्ध है।

घनानन्द की भाषा साहित्यिक होते हुए भी उसमें ब्रजभाषा की ठेठ शब्दावली की प्रचुरता है। ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों में ओटपाय (उपद्रव), आवस (भाप), औंड (गहरा), सल (पता), तेंह (क्रोध), दुहेली (दुःखपूर्ण), आवरी (व्याकुल), न्यार (चारा), सौंज (सामग्री), डेल (ढेला), अगिलाई (अग्निदाह) इत्यादि शब्द उल्लेखनीय हैं। इन ठेठ शब्दों के प्रयोग से कवि की भाषा अत्यन्त समृद्ध हुई है।

ब्रजभाषा के ठेठ रूप के साथ घनानन्द ने नवीन और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे–ऊक (लुक), गादरौ (शिथिल), अंगेटसौनि (कुंदन का लाल वर्ण), बिरचौं (विमुख होना), हटतार (एकटक देखने की वृत्ति), चाड़ (उत्कंठा), उखिल (अपरिचित), बहीर (सेना की सामग्री), सवादिली (स्वादिष्ट), तबै (तपना), निरौंठी (मस्त) इत्यादि।

भाषा–प्रवीण घनानन्द ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। जैसे – मीन, पंकज, प्राण, विष, कुरंग, मलय, विभाकर आदि। संस्कृत के तत्सम शब्दों की संख्या उनके तद्भव शब्दों से कम है।

घनानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीरमुंशी थे। इस कारण उन्हें अरबी–फारसी साहित्य का गम्भीर ज्ञान था। तत्कालीन दरबार का शाही कामकाज इसी भाषा में होता था। इसी से कवि की भाषा में अरबी–फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जो इस प्रकार हैं – यार, हुस्न, चस्का, दिलदार, मजनूं, हुकम, आशिक, इश्क, बेदरद, कमाने–तीर, दिलपसंद, तलब, सरसाँदा, कहर, दुसाला, इश्कमजाजी, दरदबन्द, दिलराज, जरद, चस्मदा, सैन–कटारी, तकदीर, तकसीर, चिमन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

घनानन्द के शब्द भण्डार से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। उन्होंने भाषा की बारीकियों को समझा है और उसका सम्भल कर प्रयोग किया है। मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में रहने के कारण उनका सम्पर्क अरबी–फारसी और उर्दू के शायरों से रहा है। इन भाषाओं में जो लचक और व्यंजना है उसे कवि ब्रजभाषा में उतारने में सफल हुआ है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधि के शब्दों का प्रयोग भी निम्न सवैये में देखा जा सकता है –

हिम सौ दित के कित को नित ही गस बीच वियोगहि पोई चले।
सु अखैबट बीज लौ कैलि परयो बनमाली कहां कूँ समोई चले।।
इसमें 'पोई', 'समोई' आदि अवधी भाषा के शब्द हैं।

घनानन्द ने भाषा का व्यंजनात्मक प्रयोग अधिक किया है। उनकी भाषा में ध्वन्यात्मकता अधिक है। कवि ने अपनी भाषा को लाक्षणिक बनाने की भी चेष्टा की है। रीतिकाल उक्ति–चमत्कार और वाग्वैदग्ध के लिए प्रसिद्ध है। घनानन्द के उक्ति–चमत्कार और वाग्वैदग्ध का ढंग ऐसा है कि उसमें सहजाकर्षण की प्रवृत्ति है। उनकी अनुभूति घनीभूत होकर अभिव्यक्त होती है। घनानन्द के उक्ति–वैचित्रय की सबसे बड़ी विशेषता है – विरोधाभास के माध्यम से प्रस्तुतिकरण। घनानन्द की उक्तियां अत्यन्त मधुर, रसीली एवं अनूठी हैं, क्योंकि ऐसी उक्तियां प्राचीन कविताओं में बहुत कम दिखाई देती हैं। सूरदास के 'भ्रमरगीत' में उक्ति–वैचित्रय के दर्शन होते हैं, किन्तु घनानन्द तो सूर को भी मात कर गये हैं, क्योंकि उन की उक्तियां सूर से भी अधिक मार्मिक, सरस हैं, विलक्षण हैं जैसे –

1. उत ऊपर पायं लगी मिहंगी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै।
2. घनानन्द जीवन मूल सुजान की कौंधनि हूँ न कहूँ दरसै।

उनमें मुहावरे भी मिलते हैं और लाक्षणिकता भी। मुहावरों के प्रयोग में तो घनानन्द बेजोड़ हैं। इनके मुहावरों में उक्ति सौन्दर्य के साथ–साथ अर्थ गाम्भीर्य भी भरा हुआ है –

क) चातक रे घातक है तू हू कान फोरि लै

ख) आनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है।

ग) कारी कूर कोकिला, कहाँ कौ बैर काढ़ति री।

घ) तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला।

17.3.2 अर्थ गाम्भीर्य –

घनानन्द की भाषा में कोरा शब्द–वैचित्र्य ही नहीं है, अपितु उसमें अर्थ–गाम्भीर्य भी है और कहीं–कहीं वह बड़े ही विलक्षण भावों अर्थों आदि से भरी हुई दिखाई देती है । इसका मूल कारण यह है कि कवि की बात (कथन) रूपी दुल्हन मौन का घूंघट डालकर इनके हृदयरूपी भवन में छिपी बैठी है और केवल समझदार काव्य–मर्मज्ञ ही उसे समझ पाते हैं ।

उर–मौन के मौन को घूंघट दै दुरि बैठि विराजति बात–बनी।
घनआनंद बूझनि अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान धनी।

क्योंकि इनके शब्दों में जो अर्थ गाम्भीर्य है, वह शब्दों द्वारा पूर्णतया व्यक्त नहीं होता, उसे तो कोई सहृदय ही पहचान पाता है और कवि–हृदय ही उसके मर्म तक पहुंच पाता है। जैसे प्रायः संसार में प्रेमियों के विशेष रूप से विरहियों के दो उपमान प्रसिद्ध हैं। – एक मछली और दूसरा पतंग। इन दोनों को उत्कृष्ट प्रेमी कहा गया है किन्तु घनानन्द कहते हैं कि मेरा प्रेमी हृदय वियोग में रात–दिन अपने प्रिय के लिए तड़पता रहता है और मिलन की आशा में असह्य पीड़ा सहता है। दूसरे पतंग अपने प्रिय के रूप पर मुग्ध होकर अपने को सम्भाल नहीं पाता और दीपशिखा में जलकर भस्म हो जाता है किन्तु मेरा हृदय अपने प्रिय के रूप की अग्नि में निरन्तर तपता रहता है। निम्नलिखित पद में घनानन्द का अर्थ–गाम्भीर्य द्रष्टव्य है –

मरिबौ बिसराम गनै वह तो यह वापुरौ मीत–तज्यौ–तरसै।
वह रुप–छटा न सहारि सकै यह तेज तबै चितबै बरसै।
घनआनन्द कौन औखी दसा, मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरे–मिलै मीन–पतंग दसा कहा मो जिय की गति कौ परसै।

घनानन्द का सम्पूर्ण काव्य ब्रजभाषा में निबद्ध है। ब्रजभाषा की प्रमुख विशेषता उसकी मसृणता तथा कोमल–कान्त पदावली है। कवि ने अपनी भाषा को इस गुण से पूर्णतः समृद्ध किया है। कवित्त और सवैयों की मधुरता का कारण उनकी कोमल वर्ण–योजना है। घनानन्द एक बहुत अच्छे संगीतकार थे। इसी संगीत के कारण वे घर से बेघर हुए तथा अपनी जान सुजान से भी हाथ धो बैठे। संगीतज्ञ होने के कारण वे प्रत्येक वर्ण के प्रयोग और उसके वजन को जानते थे। इसी से उनका काव्य स्वर–लालित्य से पूर्ण है। साधारण कवित्त भी इसी स्वरलालित्य के कारण विशिष्ट हो गए हैं। ब्रजभाषा की मधुर पद–संघटना की दृष्टि से निम्न छन्द दृष्टव्य है –

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बीरी
तो सो और कौन, मन ढरकौंही बानि दै।
जगत के प्राण, ओछे बड़े सो समान, घन–
आनँद–निधान, सुखदान, दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन–भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै।
बिरह–बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिनि पायन की हा हा ! नेकु आनि दै।

संगीत तत्व के संकेतक अनेक शब्द इसमें मिलते हैं। यह पद पूर्णरूपेण वर्ण–संगति तथा लय से युक्त हैं। इसमें विरह–वेदना की सफल अभिव्यक्ति हुई है। घनानन्द की भाषाशक्ति से प्रभावित होकर आचार्य शुक्ल ने कहा है –

'इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशाली ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ है। विशुद्धता के साथ–साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व है।'

घनानन्द की काव्य शैली कहीं भाव–प्रधान, कहीं फारसीयत से युक्त, कहीं चमत्कार–युक्त तथा कहीं प्रतीकात्मक है। वियोग मग्नता में कवि का हृदय भावनाओं की गहराई में डूब जाता है। कवि ने अनेक भावों को एक ही पद्य में प्रस्तुत किया है –

बरसै तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ, दरसैं इहि छाक हुई।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजी अभिलाषनि लाख जई।
घनानन्द की उनए इन मैं बहुभांतिनि ये उन रंग रई।
रसमूरति स्यामहिं देखत ही सजनी अखियां रसरासिभई।।
चमत्कार युक्त भाषा से कवि ने विरह को तीव्रता प्रदान की है।

17.3.3 छन्द विधान

काव्य में छन्दों का प्रयोग काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति में प्रेषणीयता का गुण लाने के लिए किया जाता है। कविता का स्वभाव छन्द में लयमान होना है। रीति–काल में वीरगाथा काल और भक्तिकाल में प्रचलित सभी छन्द प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु कवित और सवैया के प्रति विशेष अनुराग है। कवित्त के प्रयोग के साथ–साथ घनानन्द ने जिन विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है उसमें दोहा, चौपाई, दुर्मिल, छप्पय, निसानी, सुमेरु, पद, लिभंगो और शोभन छन्द मुख्य हैं। घनानन्द के सवैया तो हिन्दी जगत् में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं और उन्हें सवैया छन्द का सरताज कहना सर्वथा समीचीन ज्ञात होता है। सवैया के विविध भेदों में से घनानन्द के काव्य में दुर्मिल, मत्तगयंद, किरीट, अरसात और मुक्तहरा भेद अधिक मिलते हैं। दुर्मिल सवैया जिस में आठ सगण और 24 वर्ण होते हैं उसका उन्होंने बड़ा ही सजीव प्रयोग किया है–

पहिलें / घनआ / नॅदसी / चिसुजा / नकहीं
वतियां / अतिप्यार / रपगी
सगण / सगण सगण सगण सगण सगण सगण

मत्तगयंद सवैया जिसमें सात भगण और अन्त में दो गुरू होते हैं और 23 वर्ण होते हैं इस का बहुत ही सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है –

रैन–दिना घुटिबो करैं प्रान, झरै अखियां दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर में कसकै सखिज्यौं पंसुरीनिमें गांसी।
चौचंद–चार चवाइन के चहुं ओर मचैं बिरचै करि हांसी।
यौ मारिये भरियै कहि क्यों सु परौ जिन कोऊ सनेह की कांसी।।

कवित्तों में मनहरण कवित्त का प्रयोग अधिक हुआ है। इसमें 16 और 15 वर्णों के विराम से प्रत्येक चरण में 32 वर्ण होते हैं और अन्त में गुरू आता है जैसे –

लाजनि लपेटी चितवनि भेद–भाय–भरी, लासतिललित लोल चख तिरछानिमैं।
छवि को सदन गोरो वदन रूचिरभाल, रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानिमैं।

अलंकार योजना – काव्य में भव्यता और चारूता लाने के लिए अलंकारों का प्रयोग होता है। कविकल्पना की ऊँची उड़ान अलंकारों के माध्यम से ही काव्य में स्फुरित होती है। अलंकार काव्य के शोभाकारक धर्म होते हैं। घनानन्द के काव्य का अलंकार की दृष्टि से विवेचन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि उन्होंने लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग भावों में तीव्रता प्रदान करने के लिए किया गया है। कहीं भी प्रदर्शन के लिए अलंकारों का विनियोग नहीं है। उन्होंने कविता–कामिनी को सजाने–सँवारने के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। उनके काव्य में अलंकार उनकी कलात्मक उच्चता तथा प्रतिभा के परिचारक बनकर आये हैं। काव्यसृजन में वे कलात्मक श्रेष्ठता के प्रति पूर्ण सजग थे। उन्होंने अपने अभिमत को स्पष्ट करते हुए कहा है –

तीछन–ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप मायल घायल चोप बढ़ावत।
यौं घनआनँद छाबत भावत जान–सजोवन–ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत माहिं तौं मेरे कबित्त बनावत।।

उपर्युक्त छन्द से घनानन्द की काव्यदृष्टि स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने जो कुछ कहना चाहा, वह सायास नहीं कहा, अपितु उनके हृदय की सहज भावाभिव्यक्ति सरल और निश्छल रूप में प्रकट हुई है। काव्य में अलंकार भावों का उत्कर्ष दिखाते हैं और दूसरे वस्तुओं के रूप, गुण और क्रियानुभव को तीव्रता प्रदान करते हैं। अलंकारों में रस और भावानुकूल होने पर ही काव्य में सरसता आती है। अलंकारों के माध्यम से काव्यात्मक सरसता घनानन्द के काव्य में चरमसीमा पर दिखाई देती है। घनानन्द ने शब्दालंकार और अर्थालंकार – दोनों को अपनाया है किन्तु उन्होंने विरोधमूलक और साम्यमूलक अलंकारों का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है।

विरोधाभास घनानन्द का सर्वाधिक प्रिय अलंकार है। उनके काव्य में विरोधाभास का आधिक्य है। जीवन में विरोध की प्रधानता होने से उनके काव्य में विरोधी अप्रस्तुतों की योजना अपेक्षाकृत अधिक हुई है। वास्तव में घनानन्द की कविता वैषम्य में ही साँस लेती, कराहती और गुनगुनाती है। वैषम्य के कारण ही घनानन्द की कविता अलग से पहचानी जाती है। उक्ति वैषम्य उनकी प्रकृति की सहज देन है। डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा के शब्दों में, 'स्पष्ट ही उनके काव्य में विरोध ने जिस आलंकारिक सौन्दर्य की सृष्टि की है, उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार, उनका जीवन है, जो विषमता का कोष था। उनका जीवन विषम परिस्थितियों और मनः स्थितियों का केन्द्र हो गया था, इसलिए अपने प्रेम को बिना बाँकपन के, बिना स्थिति वैषम्य के निदर्शन के और कुछ नहीं तो बिना शब्द विरोध के वे व्यक्त ही नहीं कर पाते थे।' यही कारण है कि विरोधाभास ही उनकी आलंकारिक सौन्दर्य चेतना का केन्द्रबिन्दु हो गया है –

घनानंद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे इन चातक प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तौ इन थ्यावस हो न सु क्यौं करि यौं अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि के नित ही अँखियां उघरी बरसैं।।

घनानन्द के काव्य में विरोधमूलक प्रवृत्ति की बहुलता को देखते हुए आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का अभिमत है, 'विरोधाभास के अधिक प्रयोग की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में यह प्रवृत्ति दिखाई न दें, उसे (बेखटके) घनानन्द की कृति से पृथक् किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे, उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।

17.4 सारांश

घनानन्द की भावुकता निराली तथा शैली अनोखी थी। प्रत्येक छन्द में विरोधाभास का निदर्शन, रूपकों का सौन्दर्य तथा अन्यान्य अलंकारों द्वारा भाव–भंगिमा को सम्प्रेष्य बना देना घनानन्द के काव्यशिल्प की प्रमुख विशेषता है। अलंकारों का प्रयोग करते समय कवि की दृष्टि भाव–व्यंजना पर अधिक रही है। अलंकारों का वैयक्तिक प्रयोग, भाषा की मार्मिकता और नवीनता, घनानन्द को ब्रज भाषा के श्रेष्ठ शिल्पकारों में अग्रणी कर देता है।

17.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने घनानंद के घनानन्द की काव्य कला के अंतर्गत उनके कलापक्ष एवं भावपक्ष का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) घनानन्द रीतियुगीन किस धारा के कवि हैं–

   क) रीतिबद्ध ख) रीतिसिद्ध ग) रीतिमुक्त घ) रीतियुक्त

2) घनानन्द की भाषा कौन–सी है?

   क) अबधी ख) ब्रज ग) सिन्धी घ) संस्कृत

3) घनानन्द किसके दरबार में मीरमुंशी थे?

   क) अकबर ख) नादिर शाह ग) मुहम्मदशाह रंगीले घ) अहम्द शाह अब्दाली

4) रीतिमुक्त कवि घनानन्द का सर्वाधिक प्रिय अलंकार कौन–सा है?

   क) यमक अलंकार ख) उपमा अलंकार ग) श्लेष अलंकार घ) विरोधावास अलंकार

5) किस विद्वान का मत है ''विरोधाभास के अधिक प्रयोग की सारी रचना भरी पड़ी है।''

   क) आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ख) डॉ. बच्चन सिंह

   ग) मिश्र बुंध घ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

6) घनानन्द ने भाषा के किस रूप का अधिक प्रयोग किया है–

   क) अभिधामूलक ख) लक्ष्मणामूलक ग) व्यंजनात्मक घ) प्रयोजनमूलक

प्र2) रिक्त स्थान भरो :–

1) घनानन्द के काव्य में ..... का ठेठ रूप प्रयुक्त हुआ है।

2) इनकी भाषा में कोरा ..... नहीं है।

3) ..... के संकेतक अनेक शब्द मिलते हैं।

4) घनानन्द की ..... निराली तथा शैली अनोखी थी।

5) घनानन्द ने ..... और अर्थालंकार दोनों को अपनाया है।

6) ..... ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा।

प्र3) सही / गलत :–

1) 'सुजान हित' घनानन्द की रचना है। ( )

2) इनकी मृत्यु 1730 में हुई थी। ( )

3) ब्रजनाथ ने घनानन्द पर आलोचना की है। ( )

4) घनानन्द ने अपने काव्य में सवैये का प्रयाग नहीं किया। ( )

5) ब्रजभाषा के ठेठ रूप के साथ घनानन्द ने नवीन और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। ( )

17.6 कठिन शब्द

1) नवीनता – नयापन, नवीन

2) शिल्पकार – कारीगर, शिल्पी

3) अग्रणी – आगे चलने वाला

4) सौन्दर्य– सुंदरता

5) स्वच्छन्द– मनमाना

17.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. घनानन्द की काव्य कला पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

3. घनानन्द के काव्य में व्यक्त छन्द विधान का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

17.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. रीतिमुक्त 2. ब्रज 3. मुहम्मदशाह रंगीले 4. विरोधावास अलंकार 5. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र 6. व्यंजनात्मक

रिक्त स्थानः 1. ब्रजभाषा 2. शब्द–वैचित्र्य 3. संगीत तत्व 4. भावुकता 5. शब्दालंकार 6.रीतिकाल

सही या गलतः 1. सही 2. गलत 3. सही 4.गलत 5. सही

17.9 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना 2018 प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर
2. घनानन्द की काव्य कला – विजयपाल सिंह
3. घनानन्द डॉ. गणेश दत्त सारस्वत
4. घनानन्द काव्यदर्शन – डॉ. सहदेव वर्मा
5. घनानन्द संवेदना और शिल्प – राजबुद्धिराजा

रीति काव्य और वृन्द

रूपरेखा

18.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
18.2 प्रस्तावना
18.3 रीति काव्य
18.3.1 रीतिकालीन नीतिकाव्य और वृन्द
18.4 सारांश
18.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

18.6 कठिन शब्द
18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
18.8 उत्तर कुंजी
18.9 पठनीय पुस्तकें

18.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको–

रीति काव्य, रीतिकालीन नीतिकाव्य में वृन्द के योगदान से अवगत कराना।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप–

– रीतिकालीन काव्य से परिचित हो सकेंगे।

– वृन्द के काव्य की पूर्ण पहचान कर सकेंगे।

– रीतिकाव्य में वृन्द के काव्य का क्या स्थान है, इसका ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।

18.2 प्रस्तावना

रीतिकाल के समस्त रीति–ग्रन्थों पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो इन ग्रन्थों को आसानी से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में उन ग्रन्थों को रखा जा सकता है जिनमें सम्पूर्ण काव्यांगों का विवेचन किया गया है। इनके अतिरिक्त नायिका भेद और अलंकार ग्रन्थ भी इसी कोटि में आते हैं। इन ग्रन्थों के कर्ताओं ने मुख्य रूप से अपनी रचनाओं में काव्य के कलापक्ष को विशेष महत्व प्रदान किया है। द्वितीय वर्ग में वे ग्रंथ आते हैं जिनमें रीतिकाल की परिपाटी की अनुकूलता तो है पर वे लक्षण ग्रंथ नहीं हैं। ये ग्रंथ मूल रूप से कवियों की स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। इन ग्रंथो में मुख्य

रूप से 'बिहारी–सतसई', 'मतिराम सतसई' आदि ग्रंथ आते हैं इन ग्रंथों के रचयिता कवि रीति से सहारा अवश्य लेते थे पर अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी बनाए रखते थे। ये रीति से बँधकर भी स्वतन्त्र थे। इनकी रचनाओं में स्वतन्त्र उद्‌भावनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। तृतीय वर्ग में वे ग्रन्थ आते हैं जिनमें काव्य के भाव पक्ष का प्राधान्य है और कला पक्ष का स्थान गौण है। ये कवि रीति बन्धन से मुक्त थे और मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इनमें घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि मुख्य हैं। इन्हें रीति मुक्त कवि कहा जाता है। यद्यपि रीतिकाल में रीति निरूपण, श्रृंगार और अलंकार की प्रधानता है, फिर भी व्यापक मात्रा में भक्ति और नीति से संबंधित पद भी मिल जाते हैं जो इस युग की एक नई देन है। राधा–कृष्ण लीलाओं में श्रृंगारिकता के साथ भक्ति भावना भी विद्यमान है। दरबारी वातावरण के परिणामस्वरूप इनकी कविताओं में नीति संबंधी उक्तियाँ भी मिल जाती हैं। इस क्षेत्र में वृन्द के नीति दोहे, गिरधर की कुंडलियां तथा दीनदयाल गिरी की अन्योक्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

18.3 रीतिकाव्य

हिन्दी में 'रीति' शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है जिसका आशय काव्य रचना के नियमों से परिचित करवाना है। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल, रीतिवादी आचार्य तथा रीतिग्रन्थादि का प्रयोग इस काल के काव्य–रचना सम्बन्धी नियमों की शिक्षा देने वाले लक्षणग्रन्थों की प्रधानता के कारण हुआ है। हिन्दी में रीति–काव्य लिखने वाले सर्वप्रथम लेखक कृपाराम ही हैं। इनके द्वारा रचित 'हित तरंगिणी' हिन्दी काव्यशास्त्र का पहला ग्रन्थ है इसके पश्चात् गोपा के 'रामभूषण' व 'अलंकार चन्द्रिका' और मोहनलाल मिश्र के 'श्रृंगारसागर' नामक ग्रन्थों के नाम आते हैं। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास की 'रसमंजरी' भी नायिका–भेद का ही ग्रन्थ है। करुणेस का 'करुणाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' आदि ग्रन्थ भी इसी श्रेणी में आते हैं। परन्तु ये सब रीतिकाल की सीमा के भीतर नहीं आते। इस सीमा में आचार्य केशव का नाम आता है। इसके उपरान्त चिन्तामणि के साथ–साथ हिन्दी रीति–ग्रन्थों की जो परम्परा चली, उसका सभी नये आचार्यें ने अनुसरण किया। इन रीतिकालीन ग्रन्थों के लक्षण–ग्रन्थों का आधार प्रधानतया संस्कृत का उत्तरकालीन साहित्यशास्त्र है जबकि लक्ष्य–ग्रन्थों का आधार हाल की 'सतसई' गोवर्धन की 'आर्यासप्तशती', अमरुक का 'अमरु शतक', वात्स्यायन का 'कामसूत्र', कक्कोक का 'रतिरहस्य', ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'पंचसायक', कल्याणमल्ल का 'अनंगरंग', 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र', 'विदुर नीति', 'नीतिशतक', 'चण्डीशतक' 'दुर्गासप्तशती', 'वक्रोक्ति पंचाशिका' (शिव–पार्वती–वन्दना) तथा कृष्ण जीवन से सम्बन्धित 'कृष्णलीलामृत' आदि हैं।

18.3.1 रीतिकालीन नीति–काव्य और वृन्द

रीतिकालीन साहित्य की सृष्टि सामन्तीय वातावरण में हुई। उस समय के राजदरबारी कवि से 'स्वान्तःसुखाय' रचना की आशा नहीं की जा सकती है। उनकी वाणी में सूर–तुलसी जैसी तन्मयता, सात्विकता, और उदात्त चेतना नहीं है। इन कवियों की समस्त अन्तश्चेतना सुरा, सुन्दरी और सुराही के इर्द–गिर्द चक्कर लगा रही थी। दरबारी वेश्याओं तथा रक्षिताओं के मणि–मंजीर की मधुर ध्वनि को छोड़कर वह विशाल जन–कोलाहल को सुनने के लिए कभी भी बाहर नहीं निकला। भाव सौन्दर्य की अपेक्षा उसे रूप सौन्दर्य अधिक आकर्षित करता रहा। रीति कवि की इस प्रवृत्ति का प्रधान कारण उस समय का घुटनशील वातावरण है। वैसे तो रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्ति रीति निरूपण एवं लक्षण ग्रन्थों का निर्माण करना ही है तथापि विलासी राजाओं की विलासवृत्ति को तुष्ट करने के लिए इन्होंने श्रृंगार प्रधान रचनाएं भी लिखीं। अतः श्रृंगारिकता को भी रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्तियों में स्थान दिया जा सकता है। रीतिकाल के अधिकतर कवि राज्याश्रय में रहे थे अतः आश्रयदाताओं के दान, पराक्रम आदि का आलंकारिक वर्णन करने से इन्हें धन प्राप्त होती थी। अतः राज प्रशस्ति भी इन कवियों की प्रवृत्ति रही है। धार्मिक संस्कारों के कारण भक्तिपरक रचनाएं करके ये आत्मलाभ भी प्राप्त करते रहे और जीवन के कटु–तिक्त वैयक्तिक अनुभवों को नीति का

जामा पहनाकर नीति कथनों के रूप में भी व्यक्त करते रहे। कुल मिलाकर भक्ति और नीति को भी इन कवियों की प्रवृत्तियों में सम्मिलित किया जा सकता है। नीति इन कवियों का एक प्रिय विषय रहा है जिसमें व्यावहारिकता का भाव स्पष्ट लक्षित हुआ है। इनकी नीति–सम्बन्धी उक्तियाँ जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियों का परिणाम है। ये रचनाएँ मुख्यतः जीवन और संसार से अर्जित अनुभव, उपदेश तथा किसी वर्ग विशेष के प्रति आक्रोश के भाव को लेकर लिखी गई हैं। जहाँ इनके काव्य में एक ओर निर्गुण सन्तों की परम्परा के समान उपदेश मिलते हैं वहाँ दूसरी ओर संस्कृत के नीति साहित्य की इन पर पूरी–पूरी छाप मिलती है।

रहीम खानखाना की उक्तियाँ जीवन की अनुभूतियों से युक्त हैं। बिहारी, वश्न्द आदि कवि संस्कृत से प्रभावित होकर इस क्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं। गिरिधर, वैताल, आदि की नीति सम्बन्धी उक्तियाँ घरेलू जीवन, कृषक जीवन आदि के अनुभूत रहस्यों को लेकर रची गई हैं। नीति सम्बन्धी रचनाएँ सामान्यतः रीतिनिरूपण सम्बन्धी ग्रन्थों में या तो उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं या स्वतन्त्र रूप में लक्ष्य–ग्रन्थों का निर्माण करते समय किसी प्रसंग के अनुसार अथवा मौज में आकर। इन रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नीति काव्य की परम्परा के अनुरूप होकर भी जहाँ ये एक ओर विषय–वस्तु की दृष्टि से नवीन तथा उपादेय हैं, वहाँ दूसरी और रचयिता के व्यक्तित्व तथा उससे सम्बद्ध भावना की भी द्योतक हैं।

हिन्दी रीतिकाल में श्रृंगारी काव्य धारा के साथ–साथ नीति व सूक्ति साहित्य के निर्माण की प्रक्रिया बराबर चलती रही। काव्य के माध्यम से नीति की शिक्षा देना भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्रिय विषय बना रहा है। पंचतंत्र तथा हितोंपदेश की कथाओं का लक्ष्य लोकव्यवहार एवं नीति का शिक्षण रहा है। भर्तहरि ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तीन शतकों–श्रृंगार शतक, नीति शतक और 'वैराग्य शतक की रचना कर, जनता की विभिन्न रुचियों का परिचय दिया। यदि एक का मन श्रृंगार रस में रमता है तो दूसरे का नीति में और इतर जन भक्ति का आस्वाद करते हैं। समूचे रीति साहित्य में आपको उक्त प्रवृत्ति स्पष्टतः लक्षित होगी। बिहारी और मतिराम आदि के सत्तसई ग्रन्थों में श्रृंगार, भक्ति, नीति तथा अन्य विषयों का प्रतिपादन सहज में मिल जाता है। रीतिकाल के प्रमुख नीति व सूक्तिकारों का सविस्तार ब्यौरा निम्नलिखित है–

कवि वृन्द–किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह के दरबारी कवि व उनके गुरु थे। इनका रचना–काल 18वीं शती का प्रारंभ आंका गया है। इनकी विशेष ख्याति का आधार वृन्द सत्तसई है। प्रसिद्ध नीतिकार कवि वृन्द के नीति–विषयक दोहे मध्य काल में बड़े चाव से पढ़े जाते थे। इनके नीतिमूलक दाहों में जीवन की गहन अनुभूतियाँ निहित हैं–

उतर मध्यकाल में वृन्द के समान एक अन्य कवि–बैताल का जनसंमान्य में, सम्यक् आदर–सम्मान होता रहा है। ये चरखारी (बुन्देलखंड) के प्रसिद्ध सुकवि राजा प्रतापसिंह (प्रसिद्ध रसिक विक्रम साहि) के सभाकवि थे। बैताल की रचनाओं में सर्वत्र विक्रमं को संबोधित किया गया है। यह विक्रम और बैताल की निजंधरी कथा को मन में रखकर, उसके अनुकरण पर किया गया है। ''बैताल कहै विक्रम सुनो'' वाली नीति–संबंधी कथाएँ मध्य–युग मैं बैतालपचीसी के समान बहुत लोकप्रिय रही हैं। बैताल की वर्णन–शैली बड़ी मार्मिक है।

गिरधर कविराय–इनके जीवन–वृत्त के विषय में अभी तक कोई विशेष जानकारी नहीं है। हाँ, इतना निश्चित है कि वे अपनी नीति–विषय के लगभग पाँच सौ कुंडलियों के कारण प्रसिद्ध और कीर्ति में वृन्द और वैताल से कहीं आगे हैं। इनकी कुछ कुंडलियाँ साईं शब्द से आरंभ होती है। किंवदन्ती हैं कि ये कुंडलियाँ इनकी पत्नी द्वारा लिखी गई हैं। गिरधर कविराय की विशेष सफलता का रहस्य जीवन के व्यापक अनुभवों को, व्यावहारिक नीति के माध्यम से कुंडलियाँ छन्द में बहुत ही सहजता से सरल, सरस और प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्त करने में है। गिरधर कवि राय–भारतीय इतिहास के मध्य काल में सद्गृहस्थों के एक बहुत बड़े परामर्शदाता व पथ निर्देशक थे और आज भी

जनता उनकी कुंडलियों को–उतने चांव, प्यार व लग्न से सुनती है। आचार्य हजारी प्रसाद के शब्दों में– ''वस्तुतः साधारण हिन्दी जनता के सलाहकार प्रधानतः तीन ही रहे हैं– तुलसीदास, गिरधर कविराय और घाघ। तुलसीदास अध्यात्म के क्षेत्र में, गिरधर कविराय व्यवहार और नीति के क्षेत्र में और घाघ खेतीबाड़ी के मामले में।'' जीवन के निगूढ़तम रहस्य को व्यावहारिक जीवन नीति के सामान्य सुन्दर उदाहरणों से पुष्ट करना इनकी कुंडलियों की एक विशिष्ट कला है। जैसे–

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।

उक्त काल के नीतिकारों में सम्मन व रामसहाय दास के नाम भी उल्लेखनीय हैं। सम्मन जाति से ब्राह्मण थे। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के हरदोई जिला के एक गाँव में हुआ था। अतः इनके नीति–विषयक दोहों में ग्रामीण परिवेश सहज में खोजा जा सकता है। इनके नीति–कथन पर्याप्त मार्मिक बन पड़े हैं। रामसहाय दास जाति से कायस्थ थे। ये बनारस जिला के चौबेपुर के निवासी थे। इनकी नीति–विषयक दो रचनाएँ हैं– 'राम सतसई' और 'ककहरा'। भले ही इनकी सतसई में बिहारी जैसी कसावट न हो, किन्तु वह वग्विदग्धता से परिपूर्ण है। 'ककहरा' में नीति–संबंधी उपदेश हैं। इसकी रचना अखरावट की पद्धति पर की गई है।

दीनदयाल गिरि– इस दिशा में वे बहुत–ही समर्थ और मेधावी कवि कहे जा सकते हैं। नीतिकाव्य के सृजन में उन्होंने जिस अद्‌भुत प्रतिभा और कला–कौशल का परिचय दिया है, उससे वे, निःसन्देह गिरधर कविराय, वृन्द एवं वैताल आदि से कहीं अधिक उच्च सिद्ध होते हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार–इनका जन्म 1802 ई. में बनारस में गायघाट नामक मुहल्ले में हुआ था। ये मथुरा जिले के बरसाना गाँव के महात्मा थे। ये जाति से गोसाईं थे। संभवतः बाद में इंनका आगरा से भी सम्बन्ध रहा हो। अपने समय के ये सिद्ध बाबा माने जाते रहे होंगे। इन्होंने हिन्दी साहित्य के प्रणयन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं–अन्योक्ति कल्पद्रुम, अनुराग वाग, वैराग्य दिनेश, विश्वनाथ नवरत्न तथा दृष्टान्त तरंगिणी। स्व. लाला भगवान दीन ने बाबा दीनदयाल गिरि पर विस्तृत समीक्षा भी लिखी थी और दीनदयाल गिरि ग्रंथावली का संपादन भी किया था। दीनदयाल की विशिष्टः प्रसिद्ध का कारण .है– 'अन्योक्ति कल्पद्रुम'। अन्योक्ति अलंकार के संयोजन व उससे अभिवांछित प्रभाव की सृष्टि के लिए, साहित्यकार में एक विशेष प्रतिभा, कला एवं वाग्विदग्धता अपेक्षित होती है– अन्येक्ति आश्रित नीति–विषयक काव्य के क्षेत्र में गहन–सौन्दर्यानुभूति एवं मार्मिक अभिव्यंजना के कारण दीनदयाल गिरि का विशिष्ट स्थान है। कुल मिलाकर 26 ग्रंथों की रचना की है जिनमें 19 नीति संबंधी हैं। इनमें से 'नीति मंजरी' वैश्य–वार्ता, कुकवि बत्तीसी, विदुर बत्तीसी तथा वचन विवेक पच्चीसी' आदि इनकी मुख्य उल्लेखनीय नीति विषयक रचनाएं हैं। इनके काव्य में जीवन का व्यापक क्षेत्र परिगृहीत हुआ है। कहीं–कहीं कवि ने प्रभावोत्पादक व्यंग्य शैली का सफल प्रयोग किया है–

जस अपजस देखै नहीं, देखै स्वारथ दाय।
जिम तिम कर बणियो रहै, बणियो तेण कहांय।। वैश्य वार्ता

रीतिकाल में अन्य नीति काव्य रचयिताओं में उल्लेखनीय हैं–मनरंग लाल, रघुनाथ, बुध जन। इसके अतिरिक्त विभिन्न–काव्य–संग्रहों में न जाने कितने ज्ञात–अज्ञात नीति कवियों के नीति कथन उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि रीतिकाल के कवि का उद्देश्य अपने काव्ये में अनेक आस्वादों को भरना था– ''कवि बिहारी सतसई भरी अनेक स्वाद''। अतः बिहारी, देव, मतिराम, पद्‌माकर, सेनापति, भिखारीदास, कुलपति मिश्र, विक्रम ग्वाल एवं रसनिधि आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में यथा परिस्थिति व प्रसंग न्यूनाधिक मात्रा में नीति विषय में अपनी लेखनी को कृतार्थ किया है। संभवतः प्रत्येक युग के काव्य में इस प्रद्धति का अनुसरण होता आया है।

कवि वृन्द रीतिमुक्त प्रवाह के नीतिकाव्य के प्रणेता हैं। इनकी ख्याति रहीम, गिरिधर, जैसे सूक्तिकार कवियों के समान है। वृन्द ने शृंगार, भक्ति, वीरता की रचनाएँ भी लिखी हैं, पर लोकनीति के सूक्तिकार के रूप में इनकी प्रतिष्ठा चिरस्थायी है। हिन्दी के नीतिकाव्य के विकास में इनका महत्व अक्षुण्ण है । इनकी विशेष ख्याति का आधार वृन्द सतसई है, जिसमें– वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आदि क्षेत्रों के नीति व्यवहारों का प्रतिपादन कुशलतापूर्वक किया गया है। इनके नीतिमूलक दोहों में जीवन की गहन अनुभूतियाँ निहित हैं–

भले बुरे सब एक सम, जब लग बोलत नाहिं।
जानि परत हैं काग, पिक ऋतु वसन्त के माहि।।

रीतिकाव्य में विचारों की प्रौढ़ता, लोकजीवन के अनुभव, भावों की मिठास तथा कल्पना की रंगीनी आवश्यक है। इन सबके साथ अभिव्यंजनागत चमत्कारों का समन्वय भी अपेक्षित है। वृन्द के काव्य में इन सबका संयोजन और समीकरण देखा जा सकता है। इसी से रीतिकालीन नीतिकाव्य प्रणेताओं में वृन्द को मूर्धन्य माना गया है। वृन्द लोकनीति के आचार्य थे। इन्होंने भावपूर्ण हृदय से मानवीय आचरण तथा लोकव्यवहार का अंकन किया है। इनके नीतिकाव्य में विषय की पर्याप्त व्यापकता है। उनकी सतसई में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि नीतियों से सम्बन्धित उदाहरण देखे जा सकते हैं। धैर्य, पुरुषार्थ, विद्या, सत्य, प्रेम, परोपकार, मैत्री, सन्तोष, धूत, स्वार्थ, सज्जन, दुर्जुन, शत्रु, राजा, दान, समय आदि अनेक विषयों पर वृन्द ने दोहे लिखे हैं। नीतिकथनों में वैविध्य के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(I) जगत् बहुत जन तदपि, मन बिन सज्जन अति दीन।
ससि तारा निसि हैं तऊ, रवि बिन नलिन मलीन।

(II) नीकी पै फीकी लगे बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में रस सिंगार न सुहात।।

वृन्द के काव्य में नीति की उपादेयता तथा अनुभूति की सरसता का सामंजस्य है। वे सामान्य घटनाओं को भी अनुभूति के बल पर आस्वाद्य बना देते हैं। विवाह के समय गाली सबके मन को प्रसन्न कर देती है। कवि वृन्द ने इसे उपयुक्त समय पर वचन के महत्व के तथ्य के साथ जोड़ा है–

फीकी पैं नीकी लगै, कहिए समय विचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यों बिबाह मैं गारि।।

प्रेम में डूबते हुए को प्रारम्भ में ही मना करना चाहिए रोम–रोम में विष व्याप्त हो जाने पर उपाय करने से भला क्या लाभ होगा। इसी तथ्य को व्यक्त करने के लिए वृन्द ने निम्नलिखित दोहे की रचना की है–

प्रेम पगत बरजी न क्यों, अब बरजत बेकाज।
रोम रोम विष रमि गयो, नाहिन बनत इलाज।।

इसी भाँति मनभावन के अभाव में व्यक्ति की दशा दयनीय हो जाती है जिसका वर्णन वृन्द चकवा–चकोर के उदाहरण से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–

मनभावन के मिलन बिनु, यों जिय होत उदास।
ज्यों चकोर की दिन दसा, चकवा चन्द्र प्रकास।।

इस प्रकार वृन्द साधारण घटनाओं को सूक्ष्मता से पकड़ते हैं, उन्हें अनुभूति के रंग में रंग देते हैं तथा घटनाओं की नीतिपरक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उनमें लोकानुभूति है, प्रकृति के अनुभव हैं तथा शास्त्र का ज्ञान है।

18.4 सारांश

अतः वृन्द रीतिकाल के रीतिमुक्त प्रवाह के नीतिकवि हैं। वे लोकजीवन के कलाकार हैं। उनका नीतिकाव्य लोकानुभवों से सम्पन्न है। उनकी सूक्तियाँ जीवनसत्यों का प्रतिदर्शन है। उन्होंने शृंगार नायिका भेद, भक्ति और वीरता के भावों की रचनाएँ भी लिखी हैं पर उनका सर्वाधिक महत्व 'सतसई' की सूक्तियों के कारण है। नीतिकाव्य को सरस काव्य के समान प्रतिष्ठित करने में उनका महत्व रहीम के समान है। रीतिकाल में स्वच्छ और निर्मल शृंगार की दृष्टि से, ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण ओज प्रधान युद्धकाव्य अथवा वीर रस के प्रशस्तिमूलक काव्य की दृष्टि से और लोकजीवन को अंकित करने वाले नीतिकाव्य की दृष्टि से वृन्द का रीतिकाव्य में विशिष्ट स्थान है। रीतिबद्धता की ओर वे प्रवृत्त अवश्य हुए थे, पर रीतिमुक्तता अथवा स्वच्छन्दता में ही उनके काव्य का गौरव है।

18.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने रीति काव्य में वृन्द के योगदान का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए

1) रीतिकाल को कितने भागों में विभक्त किया है?

   क) चार ख) पांच ग) तीन घ) दो

2) कवि वृन्द किस राजा के दरबारी कवि एवं गुरु थे

   क) राजा हरिसिंह ख) महाराजा राजसिंह ग) राजा मानसिंह घ) राजा इन्द्रसिंह

3) 'शृंगारसागर' किसकी रचना है?

   क) मतिराम ख) घनानन्द ग) मोहनलाल मिश्र घ) पद्माकर

4) रीतिमुक्त काव्य में नीतिकाव्य के प्रणेता कौन हैं–

   क) वृन्द ख) सुदन ग) भूषण घ) दीनदयाल गिरि

5) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दीनदयाल गिरि का जन्म समय क्या माना है?

   क) 1805 ख) 1806 ग) 1802 घ) 1809

6) 'राम सतसई' और 'ककहरा' किसकी रचनाएं हैं–

   क) ठाकुर ख) घनानन्द ग) मोहनलाल घ) रामसहाय दास

7) राधा–कृष्ण लीलाओं में शृंगारिकता के साथ और कौन–सी भावना विद्यमान है–

   क) भक्ति भावना ख) मुक्ति भावना ग) श्रद्धा भावना घ) योग भावना

प्र2) रिक्त स्थान भरो :–

1) ..... की रचना कल्याणमल्ल ने की है।
2) कवि बैताल राजा ..... के सभाकवि थे।
3) ..... की विशिष्ट प्रसिद्ध का कारण ''अन्योक्ति कल्पदुम'।
4) वृन्द के काव्य में .....की उपादेयता तथा अनुभूति की सरसता का सामंजस्य है।
5) रीतिकालीन नीतिकाव्य प्रणेताओं में .....को मूर्धन्य माना गया है।
6) दीनदयाल ग्रंथावली का संपादन ..... ने किया।

प्र3) सही / गलत :–

1) 'ककहरा' रचना में नीति–संबंधी उपदेश है। ( )
2) रामसहाय दास जाति से कायस्थ नहीं थे। ( )
3) रहीम खानखाना की उक्तियाँ जीवन की अनुभूतियों से युक्त है। ( )
4) हिन्दी में रीतिकाव्य लिखने वाले सर्वप्रथम लेखक कृपाराम ही हैं। ( )
5) 'आर्यसप्तशती' की रचना बिहारी ने की है। ( )

18.6 कठिन शब्दः–

1) काव्यांग– काव्य के भेद
2) सात्विकता– आध्यात्मिक होना
3) परिपाटी– प्रणाली
4) रक्षिताओं– रक्षा करने वाले
5) अन्तरचेतना– आंतरिक चेतना

18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न.1) रीतिकालीन काव्य में वृन्द के योगदान पर चर्चा करें।

_____

_____

_____

_____

_____

प्रश्न.2) रीतिकालीन नीतिकाव्य में वृन्द का स्थान निर्धारित कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

18.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. तीन 2. महाराजा राजसिंह 3.मोहनलाल मिश्र 4. वृन्द 5. 1802 6. रामसहाय दास 7. भक्ति भावना

रिक्त स्थानः 1. अनंगरंग 2. राजा प्रतापसिंह 3. दीनदयाल 4. नीति 5. वृन्द 6. लाला भगवान दीन

सही या गलतः 1. सही 2. गलत 3. सही 4. सही 5. गलत

18.9 पठनीय पुस्तकें

1. वृन्द ग्रन्थावली– सं. डॉ. जनार्दन राव चेलेर 1971, प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. रीतिकालीन मुक्तक–साहित्य में श्रृंगारेत्तर प्रवृत्तियाँ– डॉ. सुभाष गुप्त
3. वृन्द और उनका साहित्य– डॉ. जनार्दन राव चेलेर
4. रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग– डॉ. अरविन्द पाण्डेय

वृन्द की रस योजना

रूपरेखा

19.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
19.2 प्रस्तावना
19.3 वृन्द की रस योजना
19.4 सारांश
19.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

19.6 कठिन शब्द
19.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
19.8 उत्तर कुंजी
19.9 पठनीय पुस्तकें

19.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपको

वृन्द के काव्य में प्रयुक्त रस योजना से अवगत कराना ।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप रस तथा वृन्द के काव्य में प्रयुक्त रस योजना का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

19.2 प्रस्तावना

रस काव्य की आत्मा है। संस्कृत में कहा गया है कि 'रसात्मकम् वाक्यम् काव्यम्' अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है। रस अन्तःकरण की वह शक्ति है, जिसके कारण इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं, मन कल्याण करता है, स्वप्न की स्मृति रहती है। रस आनंद रूप है और यही आनन्द विशाल का, विराट का अनुभव भी है। इसलिए किसी भी काव्य को सफलता प्रधान करने में रस योजना का विशेष महत्व है।

रीतिकाल में सूक्तिकार एवं नीतिकार के रूप में वृंद का प्रमुख स्थान है। इनकी सूक्तियों से धर्म, राजनीति और जीवन को समझने में मद्द मिलती है। वृन्द का वास्तविक नाम 'वृन्दावन दास' है। वृन्द इनका उपनाम अथवा काव्योचित लघु नाम है। वृन्द दरबारी कवि थे और राजा जसवन्त सिंह के कृपापात्र थे। इन्हें औरंगजेब, अजीमुश्शान, मानसिंह तथा राजसिंह के दरबारों में रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। बादशाह औरंगजेब ने इन्हें 'सच्ची कहने वाला कविराज' की उपाधि दी थी। इनके द्वारा रचित जो रचनाएँ सामने आईं हैं उनके नाम हैं– सम्मेत शिखर छन्द, भावपंचाशिका,

शृंगार–शिक्षा, पवन पचीसी, हितोपदेश सन्धि, वृन्द सतसई, वचनिका, सत्यस्वरूप, यमक सतसई, हितोपदेशाष्टक, भारतकथा, अन्त्याक्षरी या अक्षरादि दोहे, भाषा, हितोपदेश, वचनिका तथा सत्य स्वरूप रूपक।

'सम्मेतशिखर छन्द' कवि वृन्द की प्रथम रचना है। इसका रचनाकाल सन् 1668 है। इसमें जैन धर्म के प्रसिद्ध तीर्थ 'सम्मेत शिखर' का माहात्म्य वर्णित है। इस लघु रचना में छप्पय छन्द का प्रयोग किया गया है। 'भावपंचाशिका' की रचना कवि ने सन् 1686 में की है। इस समय कवि औरंगजेब के दरबार में था। इस रचना में शृंगाररस की सामग्री का विवेचन है। इसमें 22 दोहे तथा 25 सवैये हैं। कहा जाता है कि इस ग्रंथ की रचना कवि ने केवल एक ही रात्रि में की थी 'शृंगार शिक्षा' का रचनाकाल सन् 1693 है। इसमें स्वकीया नायिका के पातिव्रत्य धर्म का अच्छा वर्णन है। यह ग्रन्थ मिर्जा कादरी की कन्या को पातिव्रत्य धर्म की शिक्षा देने के लिए रचा गया था। यह नायिका–भेद सम्बन्धी ग्रन्थ कहा जा सकता है। 'पवन पचीसी' 1693 ई. में पवन से सम्बंधित 25 छप्पय है। यह शृंगार प्रधान रचना है। 'वृन्द सतसई' का रचनाकाल सन् 1704 है। यह कृति कवि की कीर्ति का आधार स्तम्भ है। यह सतसई नीतिकाव्य शृंगार है। इसमें कवि के जीवनानुभवों तथ भारतीय शिष्टाचार की सच्ची झाँकी मिलती है। इसकी रचना वृन्द ने ढाका में रहते हुए औरंगजेब के पुत्र अजीमुश्शान की प्रेरणा से की थी। 'वचनिका' 1704 ई. कन्नौज के राजा रूपसिंह की युद्धवीरता से सम्बन्धित रचना है। इस वीरकाव्य की रचना वृन्द ने किशनगढ़ के राजा मानसिंह की आज्ञा से की थी। 'सत्यस्वरूप' (1707ई.) में औरंगजेब की मृत्यु पर देहली तख्त के लिए शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह), कामबख्श आदि के युद्धों का वर्णन है। यह उच्च कोटि का ऐतिहासिक तथ्यों से ओतप्रोत वीरकाव्य है। 'वचनिका' से यह काव्य काफी बड़ा है। ये दो रचनाएँ कवि की युद्धपरक रचनाएँ हैं और इनमें वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। 'यमक सतसई' में शृंगार प्रधान दोहे हैं। 'हितोपदेशाष्टक' शान्तरस प्रधान है। 'भारत कथा' महाभारत के क्षेत्र यक्ष–युधिष्ठिर–संवाद से सम्बन्धित प्रसंग पर आधारित है।

वृन्द की रचनाओं के संक्षिप्त परिचय के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि वृन्द शृंगार वर्णन, नायिका, भेद, वीर रस और भक्ति भावना के कवि थे, परन्तु उनकी ख्याति का आधार उनकी 'वृन्द सतसई' है, जिससे वे लोक–जीवन के सूक्तिकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

19.3 वृन्द की रस योजना

वर्णन–प्रणाली में व्यंजना का शीर्ष स्थान है। व्यंजना वस्तु की भी संभव है और भाव की भी। वस्तु मूर्त होती है अतः उसके चित्रमय बिम्बात्मक वर्णन से ही काम चल जाता है परन्तु भाव अमूर्त होते हैं, अतः उनको व्यंजित करना पड़ता है। काव्यगत भाव की परिभाषा सामान्य अर्थ से भिन्न होती है। वहाँ भावन कराने के अर्थ में ही 'भाव' शब्द का प्रयोग होता है। भावन कराने वाले विभिन्न तत्व विभावादि कहलाते हैं। काव्यगत ये विभावादि पाठक के मन में वासना रूप में स्थित स्थायीभाव को उद्‌बुद्ध करके उसको एक विशिष्ट पक्वावस्था में ले जाते हैं, जहाँ वह आस्वाद्य हो जाता हैं यही रस है। इससे स्पष्ट है कि जिस रूप में यह आस्वाद्य होता है, उस रूप में यह सहृदय की भावनाओं अथवा वासनाओं का ही परिपाक है।

प्रबन्ध का आयाम सुदीर्घ होने के कारण उसमें रसधारा को प्रवाहित होने के लिए पूर्ण अवकाश मिलता है। इसके विपरीत मुक्तक में तो रस के छींटे ही मिल सकते है। वृन्द की शृंगारी रचनाएँ मुक्तक रूप में लिखी गई हैं।

ऐतिहासिक प्रबन्धों में प्रमुख रूप से वीररस प्रवाहित है। इसके अतिरिक्त युद्ध–प्रसंग में वीभत्स की अभिव्यंजना तो स्वाभाविक ही है। भक्तिपरक स्फुट छंदों में भक्ति–भाव की व्यंजना हुई है। अतः वृन्द के काव्य में मुख्य रूप से शृंगार, वीर और भक्ति रस मुखरित होता है जिसका विश्लेषण इस प्रकार है–

19.3.1 श्रृंगार रस

वृन्द की श्रृंगार भावना अत्यन्त स्वच्छ और मर्यादित है। उनकी 'भावपंचाशिका' तथा 'श्रृंगार शिक्षा' में श्रृंगारिक भावों का अत्यन्त शिष्ट और संयमित रूप मिलता है। 'श्रृंगार शिक्षा' में स्वकीया नायिका के पातिव्रत्य धर्म का चित्रण है। और 'भावपंचाशिका' में भी कामुकतापूर्ण अथवा भद्दे श्रृंगार के वर्णन से कवि दूर ही रहा है। वृन्द ने अन्य रीतिकालीन कवियों की भांति परकीया एवं सामान्य नायिकाओं के श्रृंगार का चित्रण नहीं किया। इस प्रकार उनके काव्यों में वासनात्मक दुर्गन्ध नहीं है। कुत्सित श्रृंगार के सृजन के स्थान पर कवि ने शास्त्रसम्मत श्रृंगार को ही अपने काव्य का वर्ण्य बनाया है। श्रीकृष्ण शुक्ल के शब्दों में ''इनके काव्यग्रन्थों पर वासनासिक्त श्रृंगार के गन्दे छीटें कम पड़ पाये हैं। समकालीन कवियों में इनका श्रृंगारवर्णन यथासाध्य शिष्ट और सुसंस्कृत हुआ है।''

वृन्द की श्रृंगारिक रचनाओं में नायिका के रूपवर्णन, अलंकरण, मिलन तथा वियोग का चित्रण हुआ है। कवि ने स्वकीया के सौन्दर्य और उसके प्रेमपूर्ण हृदय की व्यंजना की है। उनके श्रृंगार–वर्णन में ऋतुवर्णन के उद्दीपन रूप का भी महत्त्व है। श्रृंगार–प्रसाधनों से युक्त नायिका का एक चित्र देखिए–

मोतिन को हिय हार उद्धार है माँग सँवारी है मोतिन् ही तैं।
सेत दुकूल और चन्दन लेप है बैनी की मालति संजुत की तैं।।
वृन्द कहै सब सेत बनाव सु मैं समुझी सबही निज ही तैं।
तैं सुख तैं सखि जीत्यौ सुधाकर जीत ही चाहत चाँदनी जी तैं।।

सेत बनाव में अलंकृत नायिका चाँदनी को जीतना चाहती है। कवि की यह कल्पना अत्यन्त सुष्ठु एवं मोहक है। बिना बनाव–श्रृंगार के ही नायिका का रूप रति के रूप को हरने वाला है। प्रेमपूर्ण हृदय के लिए अपने प्रियतम के समीप जाती नायिका का एक अंकन वृन्द में निम्नलिखित सवैये में किया है–

अति सुन्दर अंग लसै तन सुन्दरी है रति को मनु रूप हरयो।
हृदयेस्वर प्रीतम ताके समीप चली हिय पूरन प्रेम भर्‌यो।
कवि वृन्द तत षिन लायक भूषण हैं तऊ कौन विचार कर्‌यो।
न अंजन अंजित नैन किए न तो हार मनोहर कण्ठ धर्‌यो।।

श्रृंगार के विप्रलम्भ पक्ष के भी बड़े स्वच्छ, मार्मिक एवं स्वाभाविक चित्रण वृन्द ने किये हैं। बसन्तागमन पर प्रियतम घर नहीं आए, विरहिणी की काया अत्यन्त कृश हो गई है। उद्यानों में कूकती कोयलें उसकी विरह–व्यथा को बढ़ाती हैं। विरहिणी का एक मार्मिक चित्रण देखिए–

आयो बसन्त पै आयो न कन्त उदन्त न तन्त न मन्त लहा है।
क्षीन भई अति काम तई तनको तन को न सरूप रहा है।
वृन्द कहैं तिय आतुर ह्वै मनमोहन सो मन मोह महा है।
कूजहु कोकिल गुँजहु भौर प्रकासे ससि यो कहै सो कहा है।।

इस प्रकार वृन्द का श्रृंगारवर्णन स्वच्छ एवं सुष्ठु है। वह सर्वत्र उज्ज्वल तथा निर्मल है। वासनात्मक एवं कामोद्दोपक श्रृंगार के चित्रण से वृन्द यथासम्भव दूर ही रहे हैं।

19.3.2 वीर रस

वृन्द के ऐतिहासिक प्रबन्धों का अंगी रस वीर है। कवि ने अपने चरित्र नायकों में जिन गुणों की प्रतिष्ठा दिखानी

चाही है, वे ही उनकी कृतियों की भावसत्ता का निर्माण करते हैं, अर्थात् स्वामिभक्ति उनका मूल प्रेरक भाव है और इसकी अभिव्यक्ति युद्धोत्साह के रूप में हुई है। 'बचनिका' में औरंगजेब तथा उसके भाइयों के गृहयुद्ध का वर्णन है तथा 'सत्यस्वरूप' में औरंगजेब के पुत्रों का गृहयुद्ध है। पहली रचना में कन्नौज के राजा रूपसिंह की युद्धवीरता तथा आत्मबलिदान का चित्रण है। दूसरे काव्य में राजसिंह के बल–पराक्रम एवं शौर्य का वर्णन है। मोतीलाल मेनारिया ने वृन्द के वीर रस के सम्बन्ध में लिखा है कि– 'कवि ने वीररस का ऐसा मौलिक, ओजपूर्ण एवं लोमहर्षक वर्णन किया है कि उसे पढ़ते ही भुजाएँ फड़कने लगती हैं।'' वृन्द की इन रचनाओं में युद्धों के सजीव चित्रण है तथा वीर रस का सफल परिपाक हुआ है। वृन्द की 'बचनिका' में एक वीर–समाज के द्वारा संघटित उत्साहपूर्ण वातावरण की झाँकी देखने को मिलती है। इस समाज में स्वामिभक्ति और युद्धोत्साह की हम ऐसी ही सामूहिक एवं युगपत् अभिव्यक्ति पाते हैं। धरमत युद्ध के पिछले दिन रूपसिंह अपने सैनिक उमरावों की सभा में अनेक दृष्टान्तों द्वारा स्वामिकार्य निर्वाहार्थ आत्म–बलिदान तक के लिए दृढ़मनस्क करते हुए कहते हैं–

त्रीया पतिव्रत धरम राखि पति अपत उधारै।
इक पतिनी व्रत धरम पुरुष सब काज सुधारै।।
क्षत्री क्षत्री–धरम राखि सरनागत रख्खै।
प्रेम नेम पन पकरि चित्त धीरज रस वख्खै।।
त्यों स्वांमि धरम सेवक धरै जीय लालच तजि सजि लरै।
जीवै त सुनै सुजस्स स्त्रवन झूझि परै सुर सुख करै।।

उमराव लोग भी इस दीक्षा के अनुकूल सामूहिक प्रतिक्रिया दिखलाते हुए सोत्साह कहते हैं–

साहिजहां से स्वांमि रूपराजा से सेवक।
तुमसे स्वांमि सु तहां हमसु सेवक हक लेवक।।
तुमहि हुकम पतिसाह कीयौ तुम करहु तयारी।
हमहि हुकम तुम करहु उमगि किज्जहि असवारी।
इक मनों सिद्धि है अवसि करहु भरोसा कौंन कौं।
संकलप देह हित स्वामि कै दिज्जै बदला लौन कौं।।

इसके अतिरिक्त उस सभा के विभिन्न उमरावों के परस्पर उत्साह–वर्द्धक वचन कहने और अपने नायक के प्रति 'इस वंस में' हुए वीर पूर्वजों की स्मृति दिलाने में महान–से–महान त्याग के लिए भी सन्नद्ध उत्साह की जो एक सामूहिक अभिव्यक्ति मिलती है, उसके द्वारा इस भाव की तीव्रता एवं व्यापकता का पता चलता है–

महाराजा सलांमत। इस वंस मैं। राव सीहा सीह। भए अबीह।।
इउ वंस मैं। राव रायपाल। अरि थल उथाल।। इस वंस मैं।
राव रिन माल। सत्रुन कौ साल।।

भाव–जीवातु शुद्ध काव्य की दृष्टि से देखने पर उक्त वीर–समाज के द्वारा संघटित उत्साहपूर्ण वातावरण के बीच भावना की ऐसी सामूहिक अभिव्यक्ति सर्वथा काव्योचित है। किसी समाज में प्रत्येक वीर–मुख से उत्साह के उद्‌गार निकल कर जिस वातावरण की सृष्टि करते हैं उसके बीच रहकर कायर भी वीर हो जाता है और निश्चय ही वातावरण की प्रभाव–क्षमता व्यक्ति–सीमित क्षेत्र की तुलना में कईं गुणा अधिक होती है।

प्रबन्ध का आयाम विशाल होने के कारण भाव की ऐसी सामूहिक अभिव्यक्ति प्रबन्धाकार रचना में ही सम्भव होती है जो इस विधा की विशेषता को सूचित करता है और दूसरी ओर प्रबन्धकार की विशिष्ट योग्यता को भी।

19.3.3 शान्त रस

शास्त्रों में भक्ति एवं शांत रस को कोई स्वतन्त्र रस नहीं माना गया है, क्योंकि इसका स्थायीभाव शुद्ध 'राग' से भिन्न कोई स्वतन्त्र भाव नहीं है, तथापि आलंबन–भेद से इसका स्वरूप थोड़ा भिन्न हो जाता है। पूज्य में अनुराग–बुद्धि ही भक्ति है– 'पूज्येष्वनु–रागः भक्तिः।' इस भाव का आलंबन कोई पारमार्थिक सत्ता होती है तो वही ईश्वर–भक्ति कहलाती है।

वृन्द ने शान्त रस प्रधान भक्ति काव्य की भी रचना की है। उनकी भक्ति किसी विशेष सम्प्रदाय की भक्ति नहीं है। शिव, गंगा आदि की स्तुति उनकी रचनाओं में मिलती है। घनाक्षरी छन्द में रचित वृन्द की 'हितोपदेशाष्टक' शान्तरस की रचना है। गंगा से कवि की प्रार्थना है–

आवत है जल न्हावत है नर पावत देह हरि हर की जो।
तारनि तीनहु लोक बिहारिनि पाप निवारिनि वंछित दीजो।
वृन्द कहै सु विवेक विचारि के मेरी यहै विनति सुन लीजो।
केसव मोहि करो जिने गंग! कश्पा करि मोहि सदासिव कीजो।

भक्त कवि के रूप में वृन्द ने जो छन्द लिखे हैं उनमें भक्तिभाव की अभिव्यक्ति किस रूप में हुई है, यह द्रष्टव्य है। उनके भक्ति–भाव के प्रमुख आलंबन देवी और राय चतुर्भुज जी हैं। देवी का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

बैनी सुख दैनी, सीस सोहत सुमन मोहैं,
हार हिये वासुकी विराजै सुछ पानी को।
विजय के संग रंग सरस कनक सेती,
चंद तैं लिलाट नीकी सोभा सुखदानी को।।
दिसि औं विदिसी के दुकूल देह, नीके नैन,
तीन लोक देखें बस होत मन मानी को।
'वृंद' कहै कीजिए भजन गुन यहै जानि,
भव कौ सरूप जैसो रूप है भवानी को।।

दीपक के प्रकाश की तरह भक्ति का भाव तो पूरे छन्द के द्वारा व्यंजित होता है, किन्तु उसकी अभिव्यंजना या वर्णन में ही कविकर्म के दर्शन होते हैं। वश्न्द का भक्त ह्रदय जिस प्रकार देवी–पूजा के वर्णन में तन्मय रहता है, उसी प्रकार मीराँ के सेव्य ठाकुर मेड़ता के राय चतुर्भुज की छवि पर मुग्ध भी–

फूलित कमल ऐसे चरन–कमल जुग
फूलन के बागे प्रीति लागे सुख पाइके
अति ही उदार उर घर हिये फूलन के
फूलन के मन्दिर मैं सुन्दर सुभाई के।
'वृन्द' कहै, ए रे अब भ्रमर सरूप ह्वै के,
ऐसे रूप राचि श्री चतुर्भुज राइ के।।

इसमें कवि का हृदय कृष्ण की सौन्दर्य–छवि पर मुग्ध है, और प्रेरक भाव भी सौंदर्य से ही सम्बन्धित है, भक्ति से नहीं। अन्तिम चरण में अपने मन को भ्रमर स्वरूप बनकर कृष्ण की पुष्पांकित कवि पर मुग्ध होने के लिए जो कहा गया है, उससे यही भाव व्यंजित होता है। राय चतुर्भुज की 'मोहनि मूरति' का वृन्द के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कोटि बुद्धि संग्रह करके भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। तुलसीदास जी ने तो सीता के सौन्दर्य के लिए विश्वामित्र की सृष्टि से उपमान जुटाये थे। वृन्द के लिए इतना अकांड तांडव साध्य नहीं है। बस, सौन्दर्य के जितने भी प्रसिद्ध उपमान हैं, उन्हें करोड़ों बार संग्रह करके करोड़ों बार उस छवि पर निछावर किया जा सकता है–

कोटिक काम सुधाकर कोटिक कोटिक बेर
समेट के वारूँ।

कृष्ण के प्रति भक्ति का भाव भक्तिकाल में क्रमशः मन्द पड़ता गया था। यहाँ कृष्ण शृंगार के आलम्बन हो गये थे। यदि भक्ति–भाव कहीं दिखाई भी देता है तो वह लीला–भाव में अन्तर्निहित अथवा परिणत होकर स्वतन्त्र रूप से अनन्य शरणागति, दास्य अथवा समर्पण की भावना को लेकर नहीं। लीला–पुरुष कृष्ण के प्रति वृन्द ने भी लीला भाव ही प्रकट किया है–

प्रात ही मात बिलौवत ही दधि आन मथानी गही सु विवेकी।
बालक हो जु गुपाल रहो यह सक्ति कहाँ तुमको मथबै की।।
खैंबे को माखन दैहौं लला, सुन घोर मथान की बोल हैं केकी।
'वृन्द' कहै मुसकाय हँसे, हरिकै सुध समुद्र छीर मथे की।।

इस छन्द में यशोदा के आश्रय से वात्सल्य–भाव दिखाई देता है, किन्तु कवि के आश्रय से तो लीला–भाव ही कहा जाएगा।

19.4 सारांश

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि वृन्द के काव्य में स्वच्छ और निर्मल शृंगार, ओज प्रधान वीर रस तथा शान्तरस की जो योजना हम पाते हैं उसने वृन्द को रीतिकाव्य में विशेष स्थान दिया है। अतः वृन्द के काव्य में प्रयुक्त रस योजना सफल है जिसने इनके काव्य को उत्कर्षता प्रधान की है।

19.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने वृन्द की रस योजना का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिह्न द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) 'रसात्मकम् वाक्यम् काव्यम्' किसकी पंक्ति है–

क) मम्मट ख) विश्वनाथ ग) भामह घ) दण्डी

2) रीतिकाल में सुक्तिकार एवं नीतिकार के रूप में प्रमुख स्थान किसका है–

क) रामदहिन मिश्र ख) घनानन्द ग) वृंद घ) भूषण

3) वर्णन–प्रणाली में शीर्ष स्थान किसका है–

क) व्यंजना ख) लक्ष्णा ग) भाषा घ) मार्मिकता

4) वृन्द के ऐतिहासिक प्रबन्धों में अंगी रस कौन सा है?

क) रति ख) वीर ग) शांत घ) करुणा

5) 'वचनिका' में किस राजा की युद्धवीरता का वर्णन हे–

क) राजा पद्मसिंह ख) औरंगजेब ग) राजा रूपसिंह घ) छत्रपति शिवाजी

6) वृन्द को 'सच्ची कहने वाला कविराज' की उपाधि किस बादशाह ने दी थी–

क) बादशाह औरंगजेब ख) बादशाह अकबर ग) टांडरमल घ) महाराणा प्रतापसिंह

7) 'भावपंचाषिका' तथा 'श्रृंगार शिक्षा' किसकी रचनाएँ हैं–

क) गिरिराज सिंह ख) कवि बैताल ग) ठाकुर घ) वृन्द

8) किस विद्वान का कथन है ''कवि ने वीररस का ऐसा मौलिक, ओजपूर्ण एवं लोमहर्षक वर्णन किया है कि उसे पढ़ते ही भुजाएँ फड़करने लगती हैं।''

क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ख) मोतीलाल मेनारिया

ग) राहुल सांकृत्यायन घ) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त

9) किस विद्वान का कथन है ''इनके काव्यग्रंथों पर वासनासिक्त श्रृंगार के गन्द्र छीटें कम पड़ गये हैं।''

क) श्रीकृष्ण शुक्ल ख) नामवर सिंह ग) बच्चन सिंह घ) दिनकर

प्र2) रिक्त स्थान भरो :–

1) ..... कवि वृन्द की प्रथम रचना है।

2) 'वृन्द सतसई' का रचनाकाल ..... ई. है।

3) वृन्द की ..... भावना अत्यन्त स्वच्छ और मर्यादित है।

4) वृन्द ने ..... प्रधान भक्ति काव्य की भी रचना की है।

5) ..... शांत रस प्रधान है।

प्र3) सही / गलत :–

1) वृन्द की श्रृंगारिक रचनाएँ प्रबंध रूप में लिखी गयी हैं। ( )

2) वृन्द का वास्तविक नाम 'वृन्दावन दास' है। ( )

3) 'सत्यस्वरूप' में औरंगजेब के पुत्रों का गृहयुद्ध का वर्णन है। ( )

4) 'समेट के वारूँ' घनानन्द की पंक्ति है। ( )

5) लीला–पुरुश कृष्ण के प्रति वृन्द ने भी लीला भाव प्रकट किया है। ( )

19.6 कठिन शब्द

1) परकीया– अपने पति कीक उपेक्षा कर परपुरुष से प्रेम करने वाली नायिका।

2) सन्नद्ध– कसकर, बँधा हुआ।

3) शरणागति– शरण में आना

4) पारमार्थिक– परमार्थ का शुभ फल दिलाने वाला

5) अंतनिर्हित – समाविष्ट

19.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न.1) वृन्द के काव्य की रस योजना पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

_____

प्रश्न.2) वृन्द की रस योजना की सार्थकता पर विचार करें।

_____

_____

_____

_____

_____

19.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. विश्वनाथ 2. वृन्द 3. व्यंजना 4. वीर 5. राजा रूपसिंह 6. बादशाह औरंगजेब 7. वृन्द 8. मोतीलाल मेनारिया 9. श्रीकृष्ण शुक्ल

रिक्त स्थानः 1. सम्मेतशिखर छन्द 2. 1704 3. शृंगार 4. शांत रस 5. हितोपदेशाष्टक

सही या गलतः 1. गलत 2. सही 3. सही 4. गलत 5. सही

19.9 पठनीय पुस्तकें

1. वृन्द ग्रन्थावली– सं. डॉ. जनार्दन राव चेलेर

2. रीतिकालीन मुक्तक–साहित्य में श्रृंगारेतर प्रवृत्तियाँ– डॉ. सुभाष गुप्त 1971, प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. वृन्द और उनका साहित्य– डॉ. जनार्दन राव चेलेर
4. रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग– डॉ. अरविन्द पाण्डेय

वृन्द की काव्यकला

रूपरेखा

20.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम
20.2 प्रस्तावना
20.3 वृन्द की काव्यकला
20.4 सारांश
20.5 स्व–मूल्यांकन
- बहु विकल्पीय प्रश्न
- रिक्त स्थान
- सही या गलत

20.6 कठिन शब्द
20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
20.8 उत्तर कुंजी
20.9 पठनीय पुस्तकें

20.1 उद्देश्य एवं अपेक्षित परिणाम

प्रिय विद्यार्थियो! इस अध्याय का उद्देश्य है आपकोः–

वृन्द की काव्यकला से अवगत कराना ।

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप रीतिकाल के नीतिकार कवि वृन्द की काव्यकला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। यह ज्ञान वृन्द की रचनाशीलता की परख करने में सहायक होगा।

20.2 प्रस्तावना

वस्तु या भाव–दोनों के ही वर्णन के लिए कवि को मुख्यतया चित्र और संगीत का आश्रय लेना पड़ता है। चित्र भाव को आकार प्रदान करता है और संगीत उसको गति प्रदान करता है। काव्य में यह चित्रांकन का कार्य मुख्य रूप से अलंकार करता है और संगीत का उपकारक है छंद। मनुष्य चिरकाल से ही विभिन्न माध्यमों से आत्माभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करता आया है। इस प्रकार अभिव्यक्ति की भी अपनी एक परम्परा बन जाती है। इस अभिव्यक्ति–परम्परा में जब कोई प्रयोग स्थिर रूप धारण कर लेता है तो वही पारिभाषिक अर्थ में काव्यरूप कहलाता है। इस प्रकार कवि की वर्णन–प्रणाली के समाकलन के लिए वस्तुवर्णन एवं भाव–व्यंजना से लेकर काव्यरूपों तक का विचार करना आवश्यक होता है।

20.3 वृन्द की काव्यकला

कला एवं शिल्प की दृष्टि से रीतिकालीन काव्य का महत्त्व निर्विवाद है। वास्तव में रीतिकालीन कवियों ने ही सर्वप्रथम काव्य–कला को उसके शुद्ध एवं परिमार्जित रूप में ग्रहण किया है। इससे पूर्व की आदिकालीन एवं भक्तिकालीन कला सोद्देश्य थी। केवल रीतिकाल के काव्यशिल्प ने ही 'कला कला के लिए' के सिद्धान्त को पहली बार मनसा–वाचा स्वीकार किया और इसके प्रचार, सुधार आदि गौण उद्देश्यों को न केवल नकार ही दिया बल्कि सौन्दर्य को सौन्दर्य–विधान का मुख्य उद्देश्य माना। रीतिकाल के कवियों और आचार्यों ने मुख्यतः कला के स्वतन्त्र महत्त्व को पहचाना और 'कला के लिए कला' की साधना की। किसी भी रचनाकार की काव्यकला की परख उसके काव्य में प्रयुक्त भाव पक्ष और शिल्प पक्ष से की जाती है। इन्हीं दो पक्षों के आधार पर वृन्द की काव्यकला की भी परख की जाएगी।

20.3.1 वृन्द के काव्य में प्रयुक्त भाव पक्ष

वृन्द को सर्वाधिक महत्त्व उनके नीतिकाव्य के कारण प्राप्त है। 'वृन्द सतसई' नीतिप्रधान काव्य का उत्तम निदर्शन है। भारतीय साहित्य में नीतिप्रधान सूक्तियों का विशिष्ट महत्त्व रहा है। संस्कृत के कवियों ने अपनी सूक्तियों में लोकजीवन के प्रौढ़ अनुभवों को गूँथा है। इन सूक्तियों के पीछे उनका गम्भीर अध्ययन तथा लोकानुभव झलकता है। नीतिकाव्य को विद्वानों ने विशेष महत्त्व नहीं दिया, कारण नीति–रचनाओं में नीति के उपदेश होते हैं, काव्यानुभूति की गहराई नहीं होती। हिन्दी का अधिकांश नीतिपरक काव्य उपदेशात्मक पद्य बनकर ही रह गया है पर रहीम और वृन्द जैसे कवियों की रचनाओं में सच्चे अर्थों में नीतिकाव्य मिलता है। उनके दोहे कोरे पद्य न होकर जीवन की अनुभूतियों से ओतप्रोत हैं। वृन्द ने रहीम की भाँति काव्य–विधान के सहारे नीति के विषय को आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। समस्त हिन्दी साहित्य में वृन्द की टक्कर का सुक्तिकार केवल रहीम को ही कहा जा सकता है। वृन्द ने संस्कृत साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था, उन्हें दरबारी जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य मिलता था, उत्तर भारत के भ्रमण के कारण उनके अनुभवों को व्यापकता मिली थी और लोकनीति का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। इन सभी ने वृन्द को एक सफल 'लोकनीति का सूक्तिकार' बनने में सहयोग दिया है।

नीतिकाव्य में विचारों की प्रौढ़ता, लोकजीवन के अनुभव भाषा की मिठास और कल्पना की रंगीनी अवश्यक है। इन सबके साथ अभिव्यंजनागत चमत्कारों का समावेश भी अपेक्षित है। वृन्द के काव्य में इन सबका संयोजन और समीकरण देखा जा सकता है। इसी कारण रीतिकालीन नीतिकाव्य प्रणेताओं में वृन्द को मूर्धन्य माना गया है। वृन्द लोक नीति के आचार्य थे। उन्होंने भावपूर्ण ह्रदय से मानवीय आचरण तथा लोकव्यवहार का अंकन किया है। डॉ. अरविन्द पाण्डेय के शब्दों में– ''इनकी सूक्तियों में सर्वत्र एकरस विद्‌ग्धता है। इनकी भाषा सरल है, मुहावरे लोकोक्तियों की छटा पग–पग पर दिखाई पड़ती है। चामत्कारिक दृष्टान्त को ढूँढने में इन्होंने अद्‌भुत कौशल दिखाया है। उन्होंने साधारण से साधारण घटना में ऐसे आश्चर्यजनक एवं असाधारण दृष्टान्त ढूँढ निकाले हैं कि श्रोता सुनकर चमत्कृत रह जाता है।''

वृन्द के नीतिकाव्य में विषय की पर्याप्त व्यापकता है। इनके नीतिकाव्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि नीतियों से सम्बन्धित उदाहरण मिलते हैं। धैर्य, पुरुषार्थ, विद्या, सत्य, प्रेम, परोपकार, मैत्री, सन्तोष, द्यूत, स्वार्थ, सज्जन, दुर्जन, शत्रु, दान, समय आदि अनेक विषयों पर वृन्द ने दोहे लिखे हैं। शिक्षा के संबंध में वृन्द कहते हैं कि सुन्दर तन या उच्चकुल का व्यक्ति यदि शिक्षा से हीन है तो उसकी उपमा टेसू के फूल के समान है जिसमें कोई सुगंध नहीं है। वह कहते हैं कि यदि किसी के पास विद्या है तो उससे लेने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए तथा जिस व्यक्ति के पास पैसा होता है, उसके पास विद्या नहीं होती है– 'विद्या लच्छीमी पुरुष पै होय नहीं एक ठाएँ।'

वृंद ने उन लोगों को सीख दी है जो किसी चीज को हासिल करने के लिए कोशिश ही नहीं करते या फिर एक बार असफल होने पर निराश होकर प्रयास करना छोड़ देते हैं। ऐसे व्यक्तियों को वश्न्द ने अपने दोहे के माध्यम से अभ्यास के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है–

''करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान।''

अर्थात् किसी भी वस्तु को प्राप्त करने हेतु अभ्यास या साधना करना बहुत आवश्यक है क्योंकि अभ्यास से ही असाध्य एवं कठिन कार्य की सिद्ध होती है। उदाहरण देते हुए वह कहते हैं जिस प्रकार कुएँ से पानी निकालते समय रस्सी का प्रयोग होता है और बार–बार घिसने से पत्थरों पर भी निशान पड़ जाते हैं, ठीक उसी प्रकार बार–बार प्रयास करने से मनुष्य का दिमाग चुस्त होता है तथा साधना द्वारा मंदबुद्धि, मूर्ख भी सुजान अर्थात् समझदार बन जाता है। वृन्द बहुमुखी अनुभूति के धनी थे। उनका सम्पर्क एक ओर विभिन्न राज–दरबारों से था तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न स्तर के लोगों से भी था। इसी से वे निम्न मध्यवर्गीय से लेकर उच्चतर वर्गीय स्तर के हर रंग से परिचित थे। दरबार के रस्म– रिवाजों एवं कारवाइयों तथा शिष्टता एवं कुटिलता से भी वे पूर्णतः अवगत थे परन्तु सबसे अधिक मार्मिक एवं कठिन अनुभूति राजसेवा की थी जिसकी तुलना सर्प–मुख–चुम्बन अथवा सिंह के आलिंगन से ही की जा सकती है–

यो सेवा राजान की दीनी कठिन बताय।

ज्यों चुम्बन ब्याली–बदन, सिंह–मिलन के भाय।।

वृन्द का लोकनिरीक्षण अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक एवं मार्मिक है। इस लोकनिरीक्षण में मुख्य प्रवृति है सशिक्षा की जिसने एक ओर उन्हें नीति के विचार में तथा दूसरी ओर जीवन व जगत के व्यवहारों एवं नियमों के चिन्तन के लिए प्रेरित किया है। 'संसार की परिवर्तनशील' और 'सुख–दुख का चक्र' यह भारतीय मनीषा की शाश्वत अनुभति है। कुछ इस प्रकार का लोकनिरीक्षण कवि को परमार्थ चिन्तन में प्रवृत्त करता है। उसे लगता है–

को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर।

उरझै सुरझै आपही ध्वजा पवन के जोर।।

अतः संतोष ही परम सुख है 'सब सुख है सन्तोष में धरियै मन सन्तोष।' वृन्द की यह चिन्ताधारा भारतीय संस्कारों के लिए नितान्त सहज एवं स्वाभाविक है फिर भी उसकी स्वानुभूति में ही उनका निजत्व है। कवि वृन्द ने अपने दोहों से लोगों को ऐसी महत्वपूर्ण बातें बताई हैं जिन्हें अपनाकर लोग अपनी जीवन शैली में बदलाव लाकर सफलता हासिल कर सकते हैं। अत भाव पक्ष की दृष्टि से वृन्द का काव्य समृद्ध है।

20.3.2 वृन्द के काव्य में प्रयुक्त कला पक्ष

भाषा, अलंकार, छंद, मुहावरे, शैली आदि के धरातल पर काव्य के कला पक्ष की परख की जाती है। इसी धरातल पर वृन्द के कला–पक्ष को आंका जाए तो ज्ञात होगा कि भाव पक्ष की भांति वृंद का कला पक्ष भी सम्पन्न है।

(i) भाषा शैली

काव्यात्मक अभिव्यक्ति का वर्चस्व भाषा है। सामान्यतः भाषा उसे कहते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति बोलकर या लिखकर अपने अभिप्राय को दूसरों के समक्ष प्रकट करता है। रीतिकाव्य की प्रधान काव्य–भाषा ब्रज है क्योंकि अधिकांश आचार्यों

और कवियों ने इसी भाषा में उत्कृष्ट रचनाएँ लिखी हैं। भाषा के सम्बन्ध में वृन्द की त्रैभाषिक नीति परिलक्षित होती है। उनकी मातृभाषा राजस्थानी, साहित्यिक भाषा ब्रज तथा राजकीय भाषा फारसी थी। मुख्य रूप से इन तीन भाषाओं के साथ वृन्द का निकट सम्पर्क था। उन्होंने संस्कृत भाषा और साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था। उनके ऐतिहासिक काव्यों से पता चलता है कि इन्हें प्राकृत व अपभ्रंश का भी अच्छा ज्ञान था। इसके अतिरिक्त, कवि के किसी प्रान्त–विशेष में निवास के कारण उन पर प्रान्तीय भाषा का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। वृंद ने ब्रजभाषा और राजस्थानी (डिंगल) का प्रयोग किया है। प्रधानतयः उनके काव्य की भाषा ब्रज ही है। यद्यपि वृन्द के समय तक खड़ी बोली को साहित्यिक भाषा बनने का गौरव नहीं मिला था, फिर भी मुसलमानों के सम्पर्क से बोलचाल में उसका काफी प्रचार हो चुका था। इसलिए वृन्द की 'बचनिका' का रचनाकाल सं. 1762 है अर्थात् 'भाषा योग वासिष्ठ' से छत्तीस साल पहले लिखी गई है। इसमें खड़ी बोली का जो रूप आया है वह मुसलमान बादशाहों के प्रसंग में होने के कारण स्वभावतः उर्दू से अधिक प्रभावित है। उसमें अरबी–फारसी के अनेक शब्द प्रयुक्त हैं। इस प्रकार वास्तव में उसका स्वरूप तत्सम बहुला हिन्दी की अपेक्षा फारसी बहुला उर्दू के अधिक निकट पड़ता है। इनकी भाषा सर्वत्र सरल और बोधगम्य है। शृंगारपरक सवैयों, शान्तरूप की घनाक्षरियों, वीररस के कवित्तों तथा नीतिपरक दोहों में सर्वत्र इनकी भाषा सहज और सरल है, दुर्बोधता अथवा क्लिष्टता कहीं नहीं। इसी कारण इनकी भाषा प्रसादगुण सम्पन्न है। इनकी सूक्तियों की भाषा तो अत्यन्त सुबोध है। डॉ. श्यामसुन्दर दास के शब्द में, ''भाषा की सरलता, मुहावरों की प्रचुरता तथा कहावतों का बहुत प्रयोग– उनकी सूक्तियों में मिलते हैं।'' भाषा की इतनी सहजता, सरलता और मिठास रीतिकाव्य में अन्यत्र कम ही मिलती है। जो लोग गरीबों की सहायता और दीनों पर दया नहीं करते, उनको सीख देते हुए वृन्द बहुत ही सहज भाषा में दान और दवाई की प्रधानता का वर्णन करते हैं–

दान–दीन को दीजै, मिटै दरिद्र की पीरा
औपध ताको दीजै, जाके रोग शरीर।

इस दोहे के माध्यम से वृन्द सहज शब्दों में यही संदेश दे रहे हैं कि हमें दीन अर्थात् गरीब लोगों की मद्द करनी चाहिए, दीनों को दान देना चाहिए ताकि उनकी गरीबी खत्म हो सके और दवाई सिर्फ उसे देनी चाहिए जिसे औषधि की आवश्यकता हो अर्थात् जो बीमार हो। अतः इनकी भाषा में अभिव्यक्ति की सहजता एवं वाणी की विद्ग्धता विद्यमान है। चमत्कारिक दृष्यों/दृश्यन्तो को ढूँढने में इन्होंने अद्भुत कौशल दिखाया है। साधारण से साधारण घटना में से ऐसे आश्चर्यजनक एवं असाधारण दृष्टान्त ढूँढ निकाले हैं कि श्रोता सुनकर चकित रह जाता है। सभी मुहावरे और लोकोक्तियाँ लक्षणा का आधार लेकर ही चमत्कार की सामर्थ्य प्राप्त करती हैं। वृन्द के काव्य में ऐसे अनेक लाक्षणिक प्रयोगों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। जैसे–

कैसे निबहैं निबल जन कर सबलन सों गैर।
जैसे बसि सागर बिषै कारत मगर सों बैर।।

इसमें 'सागर में रहकर मगर से बैर' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है शक्तिशाली व्यक्ति से शत्रुता करना मृत्यु को आमन्त्रण देना है। इसी लक्ष्यार्थ में ही मुहावरा रुढ़ हो गया है। ऐसे ही मुहावरे का एक और उदाहरण दृष्टव्य है–

अपनी पहुँच बिचारि के करतब करियै वीर।
तेते पाँव पसारियै जैती लांबी सौर।।

इसमें 'तेरे पाँव पसारियै जैती लांबी सौर' मुहावरा है। इसका लक्ष्मार्थ है अपनी सामर्थ्य भर ही कार्य करना चाहिए। इसी लक्ष्यार्थ को मुहावरे का मुख्यार्थ बना लिया है। मुहावरे की भाँति लोकोक्ति का प्रयोग भी लक्ष्यार्थ को व्यक्त करने में किया गया है। जैसे–

फेर नह्वै हैं कपट सों कीजै व्यौपार।
जैसे हाँड़ी काठ की चढ़ै न दूजी बार।।

उपरोक्त पंक्तियों में 'हांड़ी काठ की चढ़ै न ठूजी बार' लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है किसी को एक ही बार धोखा दिया जा सकता है। यही लक्ष्यार्थ, लोकोक्ति का मुख्यार्थ हो गया है। वृन्द ने कुछ ऐसे पदों का प्रयोग किया है जो लक्षणा का नया अर्थ मंडित करते हैं। जैसे–

प्रेम पगत वरजीत क्यौं अब बरजत बेकाज।
रोम–रोम विष रमि रह्यौ नाहिन बनत इलाज।।

इसमें 'विष रमना' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्णार्थ है प्रेम का प्रभाव तन–मन पर छा गया। इस प्रकार कवि ने इस पद को अर्थ का नया आयाम प्रदान कर दिया है। इसी तरह एक अन्य उदाहरण के माध्यम से भी इनकी इस विशेषता को देखा जा सकता है–

अहै अवधि अविवेक की देखि कौन अनखाय।

काठा कनक पिजर पड़े, हँस अनादर भाम।।

इसमें 'काग' तथा 'हंस' लाक्षणिक पद हैं। ये दोनों पद प्रतीक है 'दुर्जन' और 'सज्जन' के। काग व हंस के प्रतीक द्वारा संसार में कभी–कभी मूर्खतावश गुणी पुरुषों का अपमान होने और निर्गुणी का आदर होने की सम्भावना को प्रश्रय मिला है। इनके एकात्म्य का आधार गुण साम्य है। इस प्रकार कवि ने प्रतीकों के माध्यम से ही बिंब को संप्रेषित किया है।

वृन्द–सतसई की सूक्तियों में पर्याप्त मात्रा में दृष्टान्त के रूप में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग हुआ है। ये प्रयोग लक्षणा का आधार लेकर ही यशस्वी होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्योक्तियों में भी लक्षणा होती है। अन्योक्तियों में जो प्रतीक ग्रहण किए जाते हैं उन्हीं के माध्यम से काव्य वस्तु संप्रेषित की जाती है। इन प्रतीकों का प्रयोग उपमान की तरह ही होता है। वृन्द के लाक्षणिक प्रयोग लोक जीवन की विविध झाँकियों को प्रस्तुत करते हैं। लोकोक्ति और मुहावरे वस्तुतः ढले हुए सांचे हैं, जिनमें कवि अपने विचारों को ढालते हैं। इससे प्रायः काव्य सौन्दर्य की वृद्धि नहीं होती है, पर यदि इन्हें जीवन के सहसाथी के रूप में अथवा नए संदर्भ में प्रस्तुत किया जाए तो निश्चित रूप से ये काव्य को रमणीय बनाने में समर्थ होते हैं और साथ ही चमत्कार भी उत्पन्न करते हैं। वृन्द की सूक्तियों में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग काव्य की रमणीयता तथा चमत्कार के विधायक हैं। इनकी कश्तियों में किसी भी व्यवहार तत्व को सहज–सरस अभिव्यक्ति देकर लोकोक्ति का स्वरूप दे दिया गया है। जिसका प्रभाव सामान्य लोक जीवन पर प्रत्यक्ष रूप से देखा गया है।

अलंकार–योजना

अलंकार–प्रयोग की दृष्टि से भी वृन्द को पर्याप्त सफलता मिली है। काव्यगत चमत्कार की दृष्टि से उनके दोहों में अनुप्रास, यमक और श्लेष का प्रयोग यथास्थान मिलता है। उपमा, रूपक, उदाहरण, दृष्टान्त आदि अर्थालंकार भी उनके नीतिकाव्य में मिलते हैं। श्रृंगार और वीरकाव्य में वृन्द ने सांगरूपक, व्यतिरेक, विभावना, परिसंख्या आदि का भी उपयोग किया है। अतः वृन्द के काव्य में अनेक अलंकार का प्रयोग हुआ है किन्तु अलंकार में वृन्द को यदि किसी में विशेष अभिरुचि थी तो वह है यमक। यमक इनको कितना प्रिय है, यह इनकी यमक सतसई से स्पष्ट है। इनकी इतर रचनाओं में भी वैसे अन्य अलंकारों की अपेक्षा अनुपाततः यमक का प्रयोग कुछ अधिक देखा जा सकता है। वृन्द की अलंकार–योजना के निम्नलिखित उदाहरण देखे जा सकते हैं–

1. मो चित लागी चटपटी निपट अटपटी बात।

   जात जात पिय सौं मिलें बिना मिले हित जात।। (यमक)

2. आस पास मुनि मंडली आस–पास तजि दीन।

   आस–पास तन–पास बन ते नर होइ न दीन।। (यमक)

3. च्यारहु ओर धराधर ऊपर मेघ बिना जल वश्रिष्ट भई है। (विभावना)

4. तै मुख ते सखि जीत्यौ सुधाकर जीन की चाहत चाँदनी जी तैं। (प्रतीप)

5. होत बहुत धन होत तऊ, गुनजुत भये उदोत।

   नेह भरे दीपक तऊ, गुन बिन जोति न होत। (श्लेष)

6. नैना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।

   जैसे निरमल आरसी, भली बुरी कहि देत।। (उदाहरण)

7. सबै सहायक सबल कैं, कोउ न निबल सहाय।

   पवन जगावत आग कौ, दीपहिं देत बुझाय।। (अर्थान्तरन्यास)

8. करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

   रसरी आवत जात ते सिल पर होत निसान।। (दश्ष्टान्त)

9. बहुरौ रूप। कैसौ सरुप। जैसौ दुतीया कौ चंद।

   कवि चंद सरभर करै। तहाँ उनेक उपमा कौं धरै।

   वह सोरह कला कौ भरै। यह बहुत्तर कला कौ अनुसरै। (व्यतिरेक)

10. सरसुति के भण्डार की बड़ी अपूरब बात।

    ज्यों खरचौ त्यों त्यों बढ़ै बिन खरचै घटि जात।। (विषम)

कहा जा सकता है कि जैसे रूपक तुलसी का, श्लेष सेनापति का, विरोधाभास धनानन्द का तथा अतिशयोक्ति गंग का, उसी प्रकार यमक वृंद का प्रिय अलंकार है, इसमें संदेह नहीं।

छन्द–योजना

वृन्द ने अपनी रचनाओं में छन्दों का भी बहुविध प्रयोग किया है। दोहा उनका सर्वाधिक प्रिय छन्द है। कवित्त, छप्पय और सवैया के भी उन्होंने बड़े सरस प्रयोग किए हैं। इनके अतिरिक्त चौपाई, गीतिका, सोरठा आदि भी उनके प्रिय छन्द हैं। वृन्द को बहुविध छन्दों का ज्ञान था और काव्यों में उनके वास्तविक प्रयोगों को देखने से इस बात की पुष्टि होती है कि वृन्द को भावानुकूल छन्दों के सम्यक ज्ञान के साथ उन पर पूर्ण अधिकार भी प्राप्त था। इस दृष्टि से उनकी 'बचनिका' विशेष रूप से दृष्टव्य है। एक ही छन्द के प्रयोग करने से रचना में जो एक प्रकार की एकरसता आती है, उसको दूर करने के लिए उन्होंने भावानुकूल विभिन्न छन्दों का प्रयोग करके रचना में पर्याप्त गतिशीलता लाई है किन्तु दूसरी ओर उसे मात्र छन्दों का अजायबघर भी नहीं बनाया है। भावों के वर्णन में ही छन्दों का प्रयोग

हुआ है और शेष इतिवृत्तात्मक स्थलों पर बचनिका प्रयुक्त है। चूँकि इसकी मूल भावधारा उत्साहपरक है, अतएव ओजपूर्ण छन्दों का प्रयोग ही इसमें अधिक हुआ है। नीति–विषयक मुक्तकों के लिए तो दोहा छन्द सर्वाधिक उपयुक्त है। इसका सीमित कलेवर कांता–सम्मित उपदेश की भाँति नीतिपरक उपदेशों के लिए सर्वथा उपयोगी है। दुश्मन को कभी छोटा नहीं मानना चाहिए इसे कवि वृन्द निम्न दोहे में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

अरि छोटो गनिये नहीं जाते होय बिगार।

तश्न समूह कौ छिनक मैं जारत तनक अंगार।।

वैसे वृन्द में सर्वत्र ही छन्दों का सफल प्रयोग मिलता है, किन्तु युद्ध वर्णन में उनको विशेष सफलता मिली है। इसमें विभिन्न छन्दों का प्रयोग करके उसे पर्याप्त सजीव बनाया है; उदाहरणार्थ– बचनिका में रूपसिंह के युद्ध–वर्णन के लिए पहले वे नगय छन्द का प्रयोग करते हैं, फिर क्रमशः भूजंगी, हीर, अमृतध्वनि आदि।

नगय–

उमंड़ि मंडि मेघ की घटन कटक्क आईयं,

छुटंत नालि सौर जोर धूम व्योम छाईयं।

झपक्कि ज्वाल जाल डाल वीज ज्यौ झपीक्कयं,

धरा धरी धुवे धरा धरा धरा धसीक्कयं।।

भुजंगी–

लरैं धीर औरंग के मीर लौहें
छुहैं हाथ तैं लौह छोहैं छछो हैं।
फिरंगान के ज्वान जंगी फिरंगी,
सजै सीस टोपी कलंगी सुरंगी।।

हीर–

वीर लरहिं धीर धरहिं तीर तरहिं छोरहीं,
भीर परहिं भीर करहिं मीर मरहिं कोरही।
सेल चलहिं झेल झलहिं खेल खलहिं मारहीं
भेल भिलहिं मेल मिलहिं ठेलि दलहिं पारहीं।।
युद–वर्णन के लिए पद्धटिका छन्द का भी यथेष्ट प्रयोग किया गया है, जैसे–
महि रचे दुहूं दिसि मोरचे। खल दलन दल निहचल खचे।
गज सुतर असि नर गज्जए। सब साज कटि तटि सज्जये।।

वृन्द का छन्द प्रयोग भावानुकूल होने के साथ–साथ नियमतः शुद्ध भी है। छन्द में न केवल मात्राओं की संख्या निश्चित होती है। अपितु उनका क्रम भी निश्चित होता है।

शब्द–संग्रह का वर्गीकरण

वृन्द की भाषा में तत्सम, अर्द्धधतत्सम एवं तद्भव रूपों की संख्या क्रमशः अधिकतर दिखायी देती है किन्तु अरबी, फारसी और देशज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं–

(I) तत्सम – अभिनव, विभावरी, भवितत्यता, पयोधर, जलवृष्टि आदि।

(II) अर्द्ध तत्सम एवं तद्भव– अदीत, पौरस, भरतार, पारथ, मरजाद आदि।

(III) अरबी– जालिम, महरबान, नूर, सलामत, हकीकत आदि।

(IV) फारसी– कारवान, सिरताज, लसकर, जेरदस्त, जहान आदि।

(v) देशी– चगत्ता, झकचौरी, गुदराना, सगाई, नलुवा आदि।

20.4 सारांश

वृन्द की रचना में अभिव्यक्ति–क्षमता का उत्तरोत्तर विकास दिखाई देता है। वृन्द के नीति–काव्य में नीति विषयों की विविधता है, अनुभूति की गहराई तथा व्यापकता है, घटनाओं की सूक्ष्म पकड़ है, लोकानुभव तथा शास्त्रज्ञान है, लाक्षिणक प्रयोग तथा अलंकार है, भाषा की सहजता एवं सरलता है। अतः हम कह सकते हैं कि अभिव्यंजना की दृष्टि से वृंद एक सिद्धहस्त कलाकार हैं। उन्होंने जिस किसी भी प्रसंग को लिया, उसे एक सजग कलाकार की भाँति पूर्ण एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया है।

20.5 स्व–मूल्यांकन

प्रिय विद्यार्थियों !

इस अध्याय में आपने वृन्द की काव्यकला की काव्य कला के अंतर्गत उनके कलापक्ष एवं भावपक्ष का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों द्वारा, सही या गलत चिन्ह द्वारा देकर एवं रिक्त स्थान भरकर इस अध्याय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन करें। यह स्व–मूल्यांकन आपके अध्ययन को सार्थक करेगा। यदि आप इस मूल्यांकन में असमर्थ हैं तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं। आप इस अध्याय को पुनः पढ़ सकते हैं तथा उत्तर कुंजी की सहायता भी ले सकते हैं।

प्र1) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1) 'वृन्द सतसई' कैसी रचना है–

क) नीतिप्रधान ख) नायिकाप्रधान ग) भक्तिप्रधान घ) भाषाप्रधान

2) किस विद्वान का कथन है– ''इनकी सूक्तियों में सर्वत्र एकरस विद्ग्धता है।''

क) डॉ. रामदहिन मिश्र ख) डॉ. अरविन्द पाण्डेय ग) डॉ. भगीरथ मिश्र घ) नामवर सिंह

3) वृन्द ने किस भाषा का प्रयोग किया है–

क) राजस्थानी और ब्रज ख) ब्रज और अवधी ग) भोजपुरी और मगही घ) संस्कृत और हिन्दी

4) वृन्द ने किसकी भाँति काव्य–विधान के सहारे नीति के विशय को आकर्षक और प्रभावषाली ढंग से प्रस्तुत किया है–

क) रसखान ख) रहीम ग) टोडरमल घ) बिहारी

5) वृन्द का सर्वाधिक प्रिय छन्द कौन–सा है–

क) सोरठा ख) सवैया ग) दोहा घ) चौपाई

6) वृन्द की सूक्तियों में किसका प्रयोग मिलता है–

क) मुहावरे ख) लोकोक्तियों ग) विदेशी शब्द घ) मुहावरे और लोकोक्तियाँ

7) वृन्द की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का वर्चस्व क्या है?

क) छन्द ख) अलंकार ग) भाषा घ) रीति

प्र2) रिक्त स्थान भरोः–

1) वृन्द बहुमुखी अनुभूति के ..... थे।
2) वृन्द के ..... में विनय की पर्याप्त व्यापकता है।
3) 'वचनिका' का रचनाकाल ..... में हुई।
4) ..... प्रयोग की दृष्टि से वृन्द को सफलता मिली है।
5) भाषा के संबंध में वृन्द की ..... परिलक्षित होती है।

प्र3) सही / गलतः–

1) वृन्द लोकनीति के आचार्य थे। ( )
2) वृन्द ने संस्कृत साहित्य का गंभीर अध्ययन नहीं किया था। ( )
3) वृन्द का लोकनिरीक्षण अत्यंत सूक्ष्म, व्यापक एवं मार्मिक है। ( )
4) वृन्द ने नीति विशयक मुक्तकों के लिए दोहा छंद का प्रयोग किया है। ( )
5) 'भाषा योग वाशिष्ट' वृन्द की रचना है। ( )

20.6 कठिन शब्दः–

1) समाकलन – जमा खाते में रकम लिखना
2) अभिरूचि – झुकाव
3) मूर्धन्य – सिर पर रखने योग्य
4) परमार्थ – परोपकार
5) परिमार्जित – परिष्कृत

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न.1) वृन्द की काव्य–कला पर प्रकाश डालें।

प्रश्न.2) वृन्द के भाव–पक्ष पर चर्चा करें।

प्रश्न.3) वृन्द के कला–पक्ष को स्पष्ट करें।

प्रश्न.4) वृन्द की अलंकार योजना पर प्रकाश डालें।

प्रश्न.5) वृन्द की भाषागत विशेषताओं पर चर्चा करें।

20.8 उत्तर कुंजी

बहुविकल्पीयः 1. नीतिप्रधान 2. डॉ. अरविन्द पाण्डेय 3. राजस्थानी और ब्रज 4. रहीम 5. दोहा 6. मुहावरे और लोकोक्तियों 7. भाषा

रिक्त स्थानः 1. धनी 2. नीतिकाव्य 3. 1762 4. अलंकार 5. त्रैभाषिक नीति

सही या गलतः 1. गलत 2. सही 3. सही 4. सही 5. गलत

20.9 पठनीय पुस्तकें

1. वृन्द ग्रन्थावली– सं. डॉ. जनार्दन राव चेलेर 1971, प्रकाशक; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. रीतिकालीन मुक्तक–साहित्य में श्रृंगारेतर प्रवृत्तियाँ– डॉ. सुभाष गुप्त
3. वृन्द और उनका साहित्य– डॉ. जनार्दन राव चेलेर
4. रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग– डॉ. अरविन्द पाण्डेय